वासिष्ठसार

भाषावार्तिक.

॥ श्रीः ॥

वासिष्ठसार ।

(भाषा वार्तिक)

जम्बुदेशाधिपति श्री १०८ श्रीरणवीरसिंहजीकी आज्ञानुसार पण्डित-शिवशंकरजीने बनाया.

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.

संवत् १९९३, शके १८५८.

1993

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, बम्बई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ वासिष्ठसारग्रंथकी विषयानुक्रमणिका ।

इति वासिष्ठसारानुक्रमणिका संपूर्णा ।

॥ श्रीः ॥

अथ वासिष्ठसार.

श्रीगणेशाय नमः।

मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणम् ।

दोहा--गणपति गुरु गिरिजासधव, गिरिधर गिरा मनाइ ॥
वरणों चरित वसिष्ठ जो, प्रश्नोत्तर हरषाइ ॥ १ ॥ वालमीक भरद्वाजसों, रघुनंदनहि वसिष्ठ ॥ वर्णित है अध्यात्मप्रद, ब्रह्मज्ञानको इष्ट ॥ २ ॥ आदिकाव्य वालमीकमुनि, विरचित लक्षश्लोक ॥ अधिकहि हैं तातें सबहिं, होत नहीं अवलोक ॥ ३ ॥

सोरठा--याको मथ संक्षेप, सार बन सब मनुजहित ॥
मिटहिं अजाविक्षेप, सुगम अथ आनंदप्रद ॥ ४ ॥

दोहा--नगरबिसोलीमें भये, पंडित जतीसराम ।
तिनके शिष्यजु जानिए, विद्यासद्गुणधाम ॥ ५ ॥

सवैया--नाम गुपालसराम कहैं पुरमंडल धाम रहैं निहकामा ॥
ग्रंथ वसिष्ठ विचार करें नित संग्रहसार वसिष्ठसुनामा ॥
नूतनही रच बोध हुवै सब लोकहुंको सुमरै हिय धामा ॥
सप्तसहस्र सलोक किये सब अर्थ लहैं नर पूरणकामा ॥ ६ ॥

दोहा--जंबुसतीसरतिवतमुख, देशनको अधिईश । श्रवण कियो संग्रह सकल, १०८श्रीरणवीर नरेश ॥ ७ ॥ ज्यों विश्वंभर विश्वगत, पालक सब जग जोइ । त्यौं भूपति रणवीर हरि, पालहि निजजन

सोइ ॥८॥ सुन वसिष्ठ संग्रह सुगम, ब्रह्मज्ञानसुख पाइ । शिवशंकरजीसों कही, वार्तिक रचों बनाइ ॥ ९ ॥

सोरठा—श्रीहरियश अभिधान, ब्रह्मनिष्ठ पंडित विमल ॥ तिनकी शासन मान, वार्तिक कियो वसिष्ठ रच ॥ १० ॥ मुनिवर वचन निगूढ, अर्थ न समझो जात है ॥ तद्यपि करों अगूढ, शिवशंकरपरसादते ॥ ११ ॥

दोहा—सब लोकहिं उपकारहित, भाषा सुगम बनाइ ॥
वासिष्ठसार वार्तिक रच्यो, सबहीके मनभाइ ॥ १२ ॥

अडिल—संवत् नवत्रिकअंकइंदुमति वैक्रमी ॥ शैशिरऋतुतपमाहि अरंभ्यो अनुक्रमी ॥ हुवो संपूरण मुद्रित जनहितकारी ॥ जाहि पुढें अरु श्रवण करत भवतारही ॥ १३ ॥

टीका—वाल्मीकिजीनेभरद्वाजके प्रति जो वसिष्ठारामजीका संवाद सुनाया है तिसका सार लेकरके शुभ करनेहारा संग्रह करा है॥१॥ तिसमें भरद्वाजका प्रश्न है हे गुरुजी ! मुक्तका क्या लक्षण है ? अरु स्वरूप क्या है ? मुक्ति किस प्रकारकर होती है ? सो मेरे प्रति कहो ऐसा प्रश्न सुन वाल्मीकिमुनि भरद्वाजप्रति कहते भये ॥२॥ पहिले मंगलाचरण करते हैं कि, जौनसा प्रभु मेरेको स्वर्गविषें; पृथिवीविषें आकाशविषें बाहिर अरु भीतर सर्वत्र प्रकाशमान होता है अरु स्वयंप्रकाशरूपहै तिस सर्व स्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करताहूं ॥३॥ हे भरद्वाज ! यह जगत्का भ्रम आकाशके नीले रंगकी नांई मिथ्याही फुरा है इसका जो फेर नहीं फुरना ऐसा जो बिसरना है तिसको मैं बहुत श्रेष्ठ मानताहूं॥४॥हे शिष्य ! यह नेत्रोंकरके प्रत्यक्ष देखीदा जो जगत् है सो सत्य नहीं है ऐसा ज्ञानकरके मनसे दृश्य पदार्थका दृढ परित्याग सिद्ध होवे तो परमनिर्वाणके आनंदकी प्राप्ति

उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥ जो मनसे दृश्यपदार्थका दृढपरित्याग नहीं होवे तो अनेकशास्त्ररूपी कुहाविषे भ्रमण करनेहारे जो तुम हो अपने स्वरूपके ज्ञान विना आपही अज्ञानी हो तुमको अनेक कल्पों-करकेभी आनंदकी प्राप्ति नहीं होगी ॥६॥ हे शिष्य ! सर्व प्रकार-करके अंतःकरणते वासनाका दृढ परित्याग जो है सोई मोक्ष कही दी है वही आनंदप्राप्तिका निर्मल मार्ग है॥७॥सो वासना दो प्रकारकी कही हैएक शुद्ध वासना है अरुएक मलीन वासना है तिनमें मलीन वासना जन्ममरणका कारण है अरु शुद्ध वासना जन्ममरणका नाश करती है ॥ ८ ॥ अज्ञानही दृढस्वरूप है जिसका दृढ अहंकारको प्रवृत्त करती है फिर जन्मको करनेहारीहैपण्डित लोगोंने वह मलीन वासना कह दी है ॥९॥ जौनसी दूसरे जन्मके अंकुरको त्यागकर दग्ध भये हुए बीजकी नाईं स्थित भई है देहके निर्वाहके लिये धारण करी दी है,जानिया है परमात्माका स्वरूप जिस करके सो शुद्ध वास-ना कहदी है ॥ १० ॥ हे शिष्य ! जौनसे शुद्ध वासनावाले पुरुष फिर जन्मके क्लेशको नहीं भोगते हैं परमात्माके स्वरूपको जान-नेहारे हैं जीवन्मुक्त कहे हैं अरु उदारबुद्धि हैं ॥ ११ ॥

भरद्वाज उवाच–हे गुरुजी ! वसिष्ठजीने श्रीरामचंद्रके प्रति जिस प्रकारका उपदेश किया है तिस उपदेशको तुम मेरे प्रति कहो तुम दयारूपी अमृतके समुद्र हो ॥ १२ ॥ श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं,हे शिष्य ! जिस समय विश्वामित्रजी अपने यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीरामचंद्रजीको लेजानेको राजा दशरथके पास आये हैं तिस समय मैं श्रीराजा रामचंद्रजीके सेवकोंको पूछताभया रामचंद्र-जी कहां हैं अरु क्या करते हैं? तब श्रीरामचंद्रजीके सेवक राजा रामचंद्रजीका वैराग्य कहते भये ॥१३॥ हे राजन् ! श्रीरामचंद्रजी

अपने दिनके भोजनादि व्यवहारके हमारे यत्न करके बहुत विनती सायंकालविषे प्रसन्नवदन होयकरके किसी समयमें करते हैं अथवा किसी समयमें नहींभी करते हैं ऐसे विरक्त जैसे जानीदे हैं॥१४॥ स्नानविषे देवताकी पूजाविषें अरु दानविषें भोजनादिके विषें दुःखी मन जैसे जानीदे हैं हमारी विनती करकेभी तृप्तपर्यंत भोजन नहीं करते हैं खान पानसेभी विरक्त जानते हैं॥१५॥ हे राजन्! चंचल जो मंदिरों महलों विषें स्त्रियां है सो रामचन्द्रजीको झुलावोंने वास्ते झूलना करती हैं तिन्हके साथभी क्रीडा नहीं करते हैं जैसे वर्षाकी धारासाथ पपीहा खेलताहै तैसे भोगपदार्थोंमें प्रीति नहीं करते हैं ऐसा विरक्त है ॥१६॥ हे राजन्! मणिगणों करके खचित मुकुटकंकणादिकभूषणोंकी सामग्री रामचंद्रजीको प्रीति नहीं करती हैं जैसे नक्षत्र तारागण स्वर्गतें अपने गिरनेको नहीं प्रीति करते ॥१७॥ पृथिवीके भोगोंको तुच्छ मानते हैंहे राजन् ! क्रीडा करतियां स्त्रियोंके देखनेसे वहते हुए पुष्पोंकी सुगंधीवाले पवनोंविषें शोभायमान कुंजभवनोंविषें रामचंद्रजी अत्यंत खेदको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ जौनसा राजालोगोंकेभोगने योग्य पदार्थ हैं अत्यंत स्वादवाला है अत्यंत सुंदर है मनको हरनेहारा है तिसको देखकर मानों आंसू जलकरके नेत्र भर गये हैं ऐसे रामचंद्रजी उसी पदार्थ करके खेदको प्राप्त होते हैं॥१९॥ हे राजन्! श्रीरामचंद्रजी नृत्य विलासोंविषें नगरकी वेश्याको देखकरके इस प्रकार निंदित करते हैं यह स्त्रियां क्या हैं अत्यंत क्लेशको देनेहारियां हैं इन्हकी शोभा कैसी है कुछ भी नहीं है यह नरकका स्थान है॥ २० ॥ हे राजन्! श्रीरामचंद्रजी जो हैं सो उत्तमभोजनको उत्तमशय्याको उत्तम हाथी घोडा रथकी सवारियोंको उत्तम विलास स्नानकी सामग्रीको उत्तम बिछौनोंको विक्षिप्त पुरुषकी नांई पसंद

नहीं करते हैं ॥२१॥ मेरेको संपदा करके सुख क्या है ? विपदा-करके दुःख क्या है ? गृहकरके अनेक प्रकारके उत्तम चेष्टाकरके क्या प्रयोजन है? यह सबही असत्य हैं ऐसे कहिकरके चुप्प होय रहे हैं ॥२२॥ हे राजन्! रामचंद्रजी हासविलासोंविषे प्रसन्न नहीं होते हैं अरु भोगपदार्थविषे मग्न नहीं होते हैं कार्य करनेविषें उद्यम नहीं करते हैं केवल मौनकोही धारण करते हैं ॥२३॥ हे राजन्! सुंदर चंचल हेमलताकी नाईं अलकां जिन्हकी अरु अनेक भावों-करके चंचल हैं नेत्र जिन्हके ऐसी स्त्रियां रामचंद्रजीको आनंद नहीं करती हैं जैसे हरणियां वनके वृक्षोंको विकार नहीं करती हैं ॥२४॥ हे राजन्! रामचंद्रजी एकांतस्थानविषें, इष्टदेशोंविषें, नदीतीरों विषें, वनोंविषें, शून्यस्थानों विषें प्रीति धरता है जीवों विषें बिकाय गया है मानो ऐसी दया करता है ॥२५॥ हे राजन्! रामचंद्रजी वस्त्रविषें, जलपानादिकविषें, दानविषें विरक्त होकर सर्वत्याग करनेवाले ब्रह्म-निष्ठ तपस्वीके पीछे अपने चित्तकी शांतिवास्ते सेवा करने जाता है ॥२६॥ हे राजन्! रामचंद्रजी अकेला एकांतनिर्जनस्थानविषें स्थित होता है एकाग्र बुद्धिकरके हँसताभी नहीं है गायनभी नहीं करता है रोदनभी नहीं करता है एकाग्रवृत्ति धारण करता है॥२७॥ हे राजन्! रामचंद्रजी पद्मासन बाँधकरके स्थित होते हैं वैराग्य करके योग्यपदार्थोंके भोगसे जड होकरके अंतःकरण शून्य हैं और कैसे हैं वामें हाथविषें मुखको स्थापन करके चिंताकरके केवल मौन धारण करके स्थित होते हैं ॥ २८ ॥ हे राजन्! रामचंद्र देहके अभिमानको नहीं करता है राजा होनेकी भी वांछा नहीं करता है सुखदुःखादि वृत्तियोंविषें हर्ष शोक नहीं करता है॥२९॥ हे राजन्! रामचंद्रजी दिन दिन प्रति पीले वर्णको प्राप्त होता है अरु दिन २ प्रति वैराग्यको प्राप्त होता है. शरदृतुके अंतमें वृक्ष

पत्र पुष्प फलोंकरके रहित होता है तैसे विषयभोगकी वृत्तितें रहित भया है अरु निर्वासन भया है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! रामचंद्र अपने पास बैठेहुए प्रीतिवाले सुहृज्जनोंको ऐसे शिक्षा करता है.हे भाई ! तू भोगोंविषें मनको मत कर यह भोग देखनेमात्रही सुंदर हैं अंतकालमें शोक दुःखको देनेहारे हैं ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! रामचंद्रजी अनेक प्रकारके ऐश्वर्य भूषणकर शोभायमान भई कथा प्रसंगसे सभामें प्राप्त भई स्त्रियोंविषें आत्मनाशको नहीं प्राप्त भयको देखता है स्त्रीप्रसंगकरके आत्माका विस्मरण होता है ॥३२॥ हे राजन् ! रामचंद्र संसारके कार्यमें आसक्त भये लोकनको ऐसे कहता है यह लोकोंने परमानंदकी प्राप्तिके साधन विना कामभोगकी अनेक चेष्टाकरके वृथा आयुष्य गवाँई है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! रामचंद्र राज्यप्राप्तिसे विरक्तमन है तुमचक्रवर्ती राजा बनो ऐसे कहते अपने सेवकको बकवाद करते विक्षिप्त पुरुषको जैसे लोक हँसता है ऐसे हँसता है अरु आदर नहीं करता है ॥३४॥ हे राजन् ! श्रीरामचंद्रजी किसीके कहे हुए वचनको नहीं श्रवण करता है आगे आप प्राप्त भयको देखताभी नहीं है जौनसे संसारमें उत्तम पदार्थ है तिन्हमेंसर्वत्र अनादर करता है जैसे सोवते पुरुषको पदार्थका ज्ञान नहीं होता है ऐसे रामचंद्रजीको वैराग्यकरके कुछभी नहीं भासता है ॥३५॥ जो श्रीरामचद्रंजी आकाशविषें कमलको देखे अथवा आकाशमें वृक्षोंके महावनको देखे तोभी यह मायाका विलासऐसाहीहैऐसेमनमेंविचार करके आश्चर्यको नहीं मानता है॥३६॥ हे राजन् ! श्रीरामचंद्रजी सुंदर स्त्रियोंके बीच स्थित होता है तोभीकामदेवके बाण श्रीरामचद्रंजीके मनको वेध नहीं करते हैं जैसे पत्थरकी शिलामेंवर्षाजलकी धारा नहीं प्रवेश करती है॥३७॥ हे राजन् ! रामचंद्र ऐसा विचार करके अपना सर्वस्व आर्थीजनोंको देने चाहता है यहधन आपदाका

मुख्य निवास है हे मन ! तू धनकी वांछाको क्यों करता है यह बाकी कछु नहीं रहेगा धनका त्यागना उत्तम है॥३८॥हे राजन् ! श्रीरामचंद्र इस प्रकारके श्लोकोंको गायन करते हैं यह आपदा है यह संपदा है यह मनकी कल्पनासे मोह उदय भया है सच्चा नहीं है ॥ ३९॥ हे राजन् ! रामचंद्र वैराग्यकरके ऐसा कहता है यह लोक दुःखको प्राप्त हो ऐसा पुकारता है मैं मरा हूं मैं अनाथ हूं तथापि वैराग्यको प्राप्त नहीं होता है यह आश्चर्य है ॥ ४० ॥ हे राजन् ! रामचंद्र अपनेको उपदेश करनेको आए राजाओंको अथवा ब्राह्मणोंको आगे देखकर मूर्खकी तरह आदर नहीं करताहै भली तरह जानताभी नहीं है ऐसी एकाग्रताको प्राप्त भया है ॥४१॥ हे राजन् ! श्रीरामचंद्र यह निश्चय करके स्थिरचित्त भया है जो यह जगत्‌नाम करके इंद्रजाल विस्तारको प्राप्त भया है सो सत्य नहीं है झूठाही उदय भया है ॥४२॥ हे राजन् । रामचंद्रको शत्रुमें अपने आपेमें राज्यमें मातामें संपदाकरके विपदाकरके बाहिरके पदार्थोंमें आदर अनादर कोई नहीं है ॥४३॥ हे राजन् ! रामचंद्रजी अंतःकरणमें यह निश्चय करता है मेरेको धन करके माता करके राज्यकरके और जगत्‌की चेष्टा करके क्या अर्थ है ? और प्राणत्याग करनेकोभी तत्पर भया है ॥४४॥ हे राजन् ! श्रीरामचंद्रजी भोगोंमें और जीवनकी आशामें राज्यमें मित्रमें पितामें और मातामें उदासीनताको धरता है जैसे पराये घरमें उदासीनता होती है श्रीरामचंद्रजीने ऐसी उदासीनता करी है॥४५॥हे राजन् ! रामचंद्रजीका ऐसा स्वभाव भया है अब श्रीराचन्द्रजीको संपूर्ण ऐश्वर्यसहित जितना संसारके पदार्थोंका जाल है सो नागफांसीके समान भासता है ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त राजा दशरथने रामजीको सभामें बुलाया तो सभामें

आये श्रीरामचन्द्रजीको विश्वामित्रजीने प्रश्न किया, हे रामचंद्रजी! तुमने खेदकी अवस्था क्यों धारण करी है ? तो श्रीरामचन्द्रजी अपने विचारको विश्वामित्र प्रति कहते हैं ॥ ४७ ॥

श्रीरामचंद्र उवाच–हेमुने! यह संसारमें सुख क्या है? संसारकी उत्पत्तिका विस्तार क्या है? इसका नाम क्या है ? लोग मरणकेलिये जन्म लेता है और जन्मके लिये मरता है॥४८॥हे मुने! यह जगत्के भाव केवल अपनी मनकी कल्पना करके आपसमें मिलते हैं कैसे हैं लोहकी शिलासमान आपसे भिन्न भिन्न हैं ॥४९॥ हे मुने ! झूठी मनकी कल्पना करके हम लोग खेंच गये हैं जैसे रेतीमें सूर्यकी किरणोंकी चमककरके जलकी भ्रांति होती है तो मृगजलकी तृष्णा करके दौडकर प्राप्त होते हैं ॥५०॥ हे मुने ! मेरेको राज्यकरके क्या सुख है ? और भोगोंकरके हर्ष क्या है मैं कौन हूं मेरेको यह कौन वस्तु प्राप्त भई है ? जो मिथ्या पदार्थ है सो मिथ्या ही है इन्ह पदार्थोंमें किसको कौन नामकरके कौन फल प्राप्त भया है ॥ ५१ ॥ हे मुने! ऐसे विचार करते मेरेको जगत्के सब भावोंमें विरक्ति आई है जैसे मुसाफरको निर्जलदेशमें विरक्ति होती है ॥५२॥ हे मुने ! यह लोक जड हैं प्राणरूपी पवनोंकरके वृथा श्वास शब्द करते हैं जैसे वनमें पवनकरके पोले बांस शब्द करते हैं ॥५३॥ हे मुने ! यह संसारका दुःख कैसे शांत होय ऐसी चिंता करके मैं तपित हूं जैसे पुराने वृक्ष अपने कोटरमें प्राप्त भई उग्र अग्निकरके दग्ध होता है ॥५४॥ हे मुने ! यह संसारके दुःखरूपी पत्थरोंकरके मेरा हृदय भरा है मैं अपने लोकोंकी लज्जाके भयसे अश्रु प्रगट करके रोदन नहीं करता हूं ॥५५॥ हे मुने ! यह धन जो है सो चितासमूहके चक्र फिरते हैं गृह जो है सो आपदारूप स्त्रियोंके उत्पत्तिस्थान है मेरेको आनंद नहीं करते हैं ॥ ५६ ॥ हे मुने ! यह लोक अपने

परायेमें तबलग कोमल वृत्ति करके वर्त्तमान है जबलग लक्ष्मीके मदकरके कठोर नहीं भया है जैसे पवनके वेगकरके ओस उड जाती है ऐसे लक्ष्मीके मदकरके शीलता उड जाती है ॥ ५७ ॥ हे मुने ! लोक विद्यामें पंडित होवे और वीर होवे या उपकारी होवे अथवा शीलवंत होवे तोभी लक्ष्मीका मद सबको मलीन कर देता है जैसे गरदकी मुठीकरके मणि मलीन होती है ॥ ५८॥ हे मुने ! पुरुष संपादावाला होकर जिसमें अन्याय और बल और व्यसन और पाप नहीं होवे और लोक जिसकी निंदा नहीं करे और जो पुरुष शूर वीर होवे अपनी स्तुति नहीं कहे और जो राजा होकर न्याय करनेमें समदर्शी होवे ये तीन पुरुष संसारमें दुर्लभ हैं ॥५९॥ हे मुने ! यह लक्ष्मी देखनेमें सुंदर है चित्तवृत्तिको खेंच लेती है और कृपणोंके आधीन रहती है क्षणमात्रमें नष्ट होती है सर्पिणीके समान चित्तवृत्तिको घेर लेती है जैसे फलपुष्पोंकरके युक्त लता पासके वृक्षको घेर लेती है ॥ ६० ॥ हे मुने ! आयुष्य नये दलके अग्रभागमें स्थित जलबिंदुके समान चंचल है । जैसे कोई विक्षिप्त पुरुष अकस्मात घरको त्यागकर चला जाता है तैसे आयुष्य शरीरको अकस्मात् त्यागकर जाता है ॥ ६१ ॥ हे मुने ! विषयरूपी सर्पोंके प्रसंगकरके जिन पुरुषोंके चित्त शिथिल हो गये हैं जिन पुरुषोंको आत्माका विवेक दृढ नहीं भया है तिनका जीव दुःखोंका कारण है ॥ ६२ ॥ हे मुने ! हमने देहका स्वरूप जान लिया है निश्चय मान लिया है अब संसाररूपी घटामें बिजुलीके समान चंचल ऐसी आयुष्यमें आनंद नहीं मानते हैं ॥ ६३ ॥ हे मुने ! जो पुरुष पवनके रोकनेको योग्य माने आकाशके खंडनको योग्य मानें तरंगोंके पकडनेको योग्य माने सो पुरुष आयुष्यकी स्थिरताको योग्य माने ॥ ६४ ॥ हे मुने ! जिस जीवनकरके परमा-

त्मावस्तुकी प्राप्ति होवे जिस करके फेर शोक नहीं करना बने वही जीवन परम आनंदकी प्राप्तिका स्थान है सो उत्तम जीवन कहा है ॥ ६५ ॥ हे मुने ! वृक्षभी जीवते हैं मृगपक्षीभी जीवते हैं जिसका मन अपने संकल्प विकल्परूपी मननव्यापारसे रहित होकर स्थिर होय गया है सोही जीवता है ॥६६॥ हे मुने ! जगत्में जीव जन्मे हैं तिनका जीवना सफल है जो यहां फिर जन्म नहीं लेते हैं और सबही आवागमनके गये हैं ॥६७॥ हे मुने ! निर्विवेकी पुरुषोंको शास्त्रका पठन भार है राग द्वेषवालेको तत्त्वज्ञान भार करता है जिसको शांति नहीं है तिसको मनकी कल्पना भार करती है। जिसको आत्मज्ञान नहीं है तिसको देह अपना भार है उसको मोक्षसुख प्राप्त नहीं होता है॥६८॥हे मुने ! सुंदर रूप और आयुष्य और बुद्धि और अहंकार और इच्छा किये हुए मनोरथ जो हैं यह सबही दुर्बुद्धिपुरुषको दुःख देनेवाले हैं जैसे भार उठानेवालेको आपही उठाया हुआ भार दुःख देता है ॥ ६९ ॥ हे मुने ! जो दीर्घ दुःख है और अत्यंत उग्र दुःख है और भारी दुःख है सो सबही अहंकारसे प्रगट भये हैं जैसे खदिरवृक्षसे अंगारे प्रगट होते हैं ॥ ७० ॥ हे मुने ! अहंकारके वशते जो जो मैंने भोगा है और जो होम किया है अरु जो जो कर्म किया है सो सो सबही मिथ्या है, अहंकारसे रहित होनाही सत्यपदार्थको प्राप्त करता है ॥ ७१॥ हे मुने ! सो अहंकार चिरकालका उग्र वैरी है तिसको धारकर मैं भोजन नहीं करता हूं और जलपान नहीं करता हूं भोगोंको कैसे भोग करूं ॥ ७२ ॥ हे मुने ! पुत्र और मित्र और स्त्रियां जगत्का विस्तार आत्मज्ञान विना अहंकारनाम वैरीने फैलाया है ॥७३ ॥ हे मुनि ! अहंकारकरके यत्न करके जो जो किया है सो सो सर्व आपदाका स्थान है अरु असत्य है अतःकरणमें उपाधिभूत है उत्तम

गुणोंसे रहित है. हे मुने ! अहंकारको त्यागकर जो मुझको कर्त्तव्य है सो उपदेश तुम मेरेको करो॥७४॥ हे मुने ! यह चित्तकी शुभ-वृत्तियां अनेक कल्पनारूप शय्यामें लीन भई हैं और अबलग सावधान नहीं होती हैं इसी कारण मैं संतापको प्राप्त भया हूं॥७५॥ हे मुने ! समुद्रके पान करनेसे और सुमेरुपर्वतके उठावनेसे अरु अग्निके भक्षण करनेसे भी चित्तका रोकना बडा कठिन है तिससे चित्त यत्नकरके रोकने योग्य है ॥ ७६ ॥ हे मुने ! चित्त जगतके पदार्थोंका कारण है और चित्तके होनेसे त्रैलोक्य बना है अरु चित्तके क्षीण भयेते त्रैलोक्य क्षीण होता है चित्त यत्नकरके जीतने योग्य है ॥७७॥ हे मुने। अनेक जगत्के सुख चित्तसे प्रगट होते हैं और विवेकबलसे चित्त शीत भयेते सुखदुःख सब शांत होते हैं ॥ ७८ ॥ हे मुने ! तृष्णा नामवाली विषज्वालाकरके मैं दग्ध भया हूं जैसे तृष्णारूपी ज्वालाका संताप शांत होवे सो मेरेको अमृतके सिंचन करके भी नहीं बनता है॥७९॥ हे मुने ! अपनी आत्मपदवी प्राप्त होनेको हमारी बुद्धि समर्थ नहीं है हम लोक-चिंताके जालमें मोहित भये हैं जैसे जालमें पक्षी फँस जाता है ॥८०॥ हे मुने ! यह लोक चिंता त्याग करके दुःखको त्याग करता है तृष्णारूपी विषूचिकाको दूर करनेको चिंता त्याग करना ही महामंत्र कहा है॥ ८१ ॥ हे मुने ! यह तृष्णा रोग पीडाकी स्त्री है सो गंभीरमनवाले पुरुषकोभी अपने वश कर लेती है जैसे सूर्यकी किरण कमलको अपने सन्मुख कर लेती है॥८२॥ हे मुने! तरवारकी धारा और वज्रकी ज्वाला और तपेहुए लोहेकी चिनगारी जैसे तीक्ष्ण है तैसे हृदयमें स्थित भई तृष्णा तीक्ष्ण है ॥ ८३ ॥ हे मुने ! यह तृष्णा एकही है त्रैलोक्यको निशानेकी तरह बेध करती है देहमें स्थित है तोभी लखी नहीं जाती है संसारसमुद्रसे ऐसे प्रगट

भई है जैसे क्षीरसमुद्रसे मदिरा प्रगट भई है ॥८४॥ हे मुने! यह कलेवरही अहंकाररूपी पुरुषका घर है सो चाहिये नष्ट होवे,चाहिये रहे मेरेको इसकरके कोई काम नहीं है ॥ ८५ ॥ हे मुने ! यह देहरूपी घर कैसा है मल करके युक्त ऐसे विषसमूहके भांडोंके संग्रहवाला है और अज्ञानरूपी खारे द्रव्यकरके भरा है सो मेरेको प्रिय नहीं है ॥८६॥ जिह्वारूपी वा नदीने रोका मुखरूपी द्वार करके भयानक दंतादिक हड्डियाँ प्रत्यक्षही देख परती हैं देहरूपी घर मेरेको प्रिय नहीं है॥८८॥नखरूपी झोपडी नाम कीडोंका घर है कुत्तेको भोंकनेके सदृश ये शब्दवाला है ऐसा देहरूपी घर मेरेको प्रिय नहीं है ॥८७॥ समस्त रोगोंका स्थान है त्रिवलियां और सपेद केशोंका नगर है समस्त दुःखरूपी शत्रुनके घेरनेका घर है ऐसा देहरूपी घर मेरेको प्रिय नहीं है ॥ ८९ ॥ हे मुने ! मरणके समयमें जौनसे देह गेह इंद्रिय धनादिक जीवके साथ नहीं होते हैं सो सबही कृतघ्न हैं तिनहूमें बुद्धिमान् पुरुषोंको क्या विश्वास है ॥ ९० ॥ हे मुने ! यह देह वृद्धावस्थामें वृद्ध होता है और मरणसमयमें मृत होता है और भोगवान्‌को और दरिद्रको देह एकसमान है ॥९१॥ हे मुने ! जौनसे देहमें दृढ विश्वास करते हैं और जौनसे जगत्‌की स्थितिमें नित्यता मानते हैं सो पुरुष मोहरूपी मदिराकरके मतवाले हैं तिन्हको वार वार धिक्कार है ॥९२॥ हे मुने ! देहका मैं नहीं मेरा देह नहीं ना यह मेरा है ना मैं इसका हों ऐसे निश्चयवाले जो हैं सो उत्तम पुरुष हैं. हे मुने ! जिसने बिजुलीमें शरद्दतुके बदलेमें गंधर्वनगरमें स्थिरता मानी है सो देहको भी नित्य माने ॥९३॥ हे मुने! चंचल है स्वरूप जिसका अनेक कार्य भार तिसके तरंग हैं ऐसे संसारसमुद्रमें जन्म पायकरके बालक अवस्था केवल दुःख देनेवाली है ॥९४॥ हे मुने ! जौनसी चिंता बालकअवस्थामें हृदयको पीडा

करती हैं सो चिंता मरनेमेंभी नहीं है।न वृद्धावस्थामें है न रोगपी-
डामें हैं न आपदामें हैं न यौवनमें हैं॥९५॥ हे मुने!जौनसेबालक-
अवस्थाको सुंदर मानते हैं सो मूढ हैं और व्यर्थ बुद्धि है तिन्हका
चित्त नष्ट भया है उन्हको धिःकार है॥९६॥ हे मुने!मन स्वभावसे
चंचल है बालपना उसतेभी चंचलहैसो दोनों जबमिले तो चंचल-
तासे कौन बचावनेवाला है॥९७॥हे मुने!स्त्रियोंके नेत्रोंने और बि-
जुलीके पुंजोंने और अग्निकी ज्वालापुंजोंने और तरंगोंने बालपनाते
चंचलता लीनी है॥९८॥ हे मुने ! बालपनामें गुरुते भय होता है
और मातापितातै भय होता है लोकोंते भय होता है और बडे बाल-
कतें भय होता है और बालपना भयका घर है॥९९॥हे मुने ! महा-
नरकोंका बीज है सदैव भय देनेहारा है ऐसे यौवनकरके जौनसे नहीं
नष्ट भये हैं सो और किसीकरके नहीं नष्ट होते हैं॥१००॥हे मुने !
हृदयविषे अंधेरा करनेहारी है ऐसी यौवनकी जो अज्ञानकी रात्रि
है तिसते भयानक रूपवाला शिवभी डरता है॥१॥हे मुने ! बुद्धि
निर्मलभी है विशालभी है जितनी कहे तितनी यौवन करके मलीन
होती है जैसे वर्षाऋतुमें नदी मलीनजल होती है ॥२॥ हे मुने !
सो स्त्री सुंदर है सो कुचभारे है सो उत्तम विलास है सो सुंदर-
मुख है ऐसी चिंताकरके यौवनमें मन जीर्ण होता है॥३॥हे मुने !
यौवन जैसे जैसे चढता जाता है तैसे २ कामवासना आत्मविचा-
रके नाशवास्ते विस्तारको प्राप्त होती है ॥४॥ हे मुने ! तबलग
रागद्वेषरूपी पिशाच वर्तमान होते हैं जबलग यौवनरूपी रात्रि
संपूर्ण अस्त नहीं होती है ॥ ५ ॥ हे मुने ! जौनसा विनयकरके
शोभायमान है और उत्तम लोकोंका आश्रय है दयाकरके उज्ज्वल
भया और गुणोंकरके युक्त है ऐसा यौवन दुर्लभ है जैसे आकाश-
विषे वन दुर्लभ है ॥६॥ हे मुने ! स्त्री मांसकी पुतली है अंगोंका

पिंजर बना है नाडी और अस्थियाँ इन्हकरके रचना करी है ऐसी स्त्रीके शरीरमें सुंदर वस्तु क्या है ॥ ७ ॥ हे मुने ! कामीपुरुषको प्रश्न है हे भाई ! त्वचा, मांस, कफ, रक्त, जल और नेत्र इन्हको भिन्नभिन्न करके देखले स्त्रीमें क्या सुंदरता है तू क्यों वृथा मोहित भया है ॥८॥हे मुने ! यह पुरुषरूपी हाथी है सो स्त्रीरूपी मानस-सरोवरमें लीन भये हैं तीक्ष्ण शमरूपी अंकुशोंकरकेभी सावधान नहीं होते हैं॥९॥हे मुने ! यह स्त्री केशरूपी शिखा धारण करती है स्पर्श करनेको महाकठिन है देखनेमेंही प्रिय है पापरूपी अग्निकी ज्वाला है पुरुषको तृणकी समान दग्ध करती है ॥१०॥ ११ ॥ हे मुने!यह स्त्रियां कैसी हैं दूरसेही प्रज्वलित भई हैं ऐसे नरकरूपी अग्नि प्रचंड करनेकी घोर समिधा हैं ॥१२॥हे मुने ! यह संसार-में जन्मरूपी सरोवर है तिनमें पुरुषरूपी मछली हैं सो चित्तरूपी कीचडमें फँस करके भ्रमते हैं तिनके पकडनेके वास्ते कामवासना-रूपी डोरी बनी है और स्त्रियां लोहेके कुंडेके समान बनी हैं ॥१३ ॥ हे मुने ! यह स्त्रियां संपूर्ण दोषरूपी रत्नोंकी पिटारियां हैं और दुःखोंकी संगली हैं इसकरके मेरेको क्या प्रयोजन है ॥ १४ ॥ हे मुने ! जिसके स्त्री है तिसको भोगोंकी इच्छा होती है स्त्रीरहित पुरुषको भोगोंका कहाँ ठिकाना है स्त्रीको त्याग करके जगत्का त्याग होता है फिर जगत्को त्याग करके सुखी होता है ॥१५॥ हे मुने ! यह भोग देखने मात्र सुंदर है और तरे नहीं जाते हैं और चंचल हैं मरण, रोग वृद्धावस्था इनके भयतें मैं भोगोंका यत्न नहीं करता हूं और प्रीतिभी नहीं करता हूं और शांतिको पाय-करके परमपदवीको प्राप्त होऊंगा ॥ १६ ॥ हे मुने ! बालपनको तत्काल जवानी ग्रसती है युवाको जरा ग्रसती है इनकी आपसमें बडी कठोरताको तुम देखो ॥१७ ॥ हे मुने ! वृद्धपुरुषको अपने

चाकर और पुत्र और स्त्रियां और बांधव और सुहृद् विक्षिप्तपुरुषकी नाईं सबही हँसते हैं अनादर करते हैं ॥ १८ ॥ हे मुने! वृद्धपुरुषको एक तृष्णा बढती है सो तृष्णा कैसी है अदीनता दोषकरके भरी है और अपार है और हृदयको संतापके देनेहारी है संपूर्ण आपदाको अकेली आप साहाय्य करनेहारी है ॥१९॥ हे मुने! अब मुझको क्या करना है परलोकमें मेरेको बहुत कष्ट प्राप्त होवेगा वृद्धावस्थामें ऐसा भय आयकर प्राप्त होता है कैसा है जिसको दूर करनेका कोई उपाय नहीं है ॥ २० ॥ हे मुने! मैं कौन हूं मेरेको कोई नहीं मानता है मैं अब कछु नहीं कर सकता हूं चुपकेसे बैठा है ऐसी दीनता वृद्धपुरुषको प्रगट होती है॥२१॥ हे मुने! अब मेरेको स्वादवाला भोजन अपने घरते किस समयमें कैसे प्राप्त होवे इस प्रकार करके वृद्धावस्था दिन रात्रिमें चित्तको दाह करती रहती है॥२२॥ हे मुने! वृद्धावस्था मरणरूपी राजाकी सेना चली आती है वह कैसी है धौले केशही चमर हैं जिसके अनेक चिन्ता और रोग रूपके निशान हैं ॥ २३ ॥ हे मुने! वृद्धावस्थारूपी ओसकरके शीतल भया है ऐसे देहरूपी मंदिरमें इंद्रियाँ रूठी बालक चलनेको समर्थ नहीं होते हैं ॥२४॥ हे मुने! वृद्धावस्थारूपी चूनाका लेप करके सपेद भये देहरूपी महिलके अंदर शिथिलता और पीडा और आपदा यह तीन नायिका सुख करके निवास करती हैं ॥२५॥ हे मुने! वृद्धावस्था करके जो जीवना है सो दुष्ट जीवना है ऐसे जीवन करके क्या जीवना है वृद्धावस्था जगत्में किसी पुरुषमें नहीं जीति है कैसी है संपूर्ण परलोककी वासनाको दूर कर जड करती है॥२६॥ हे मुने! यह जरा तृष्णाको और रेनुको और इंद्रको सुमेरुको पत्रको समुद्रको सबको जीर्ण करके निगल लेती है और अपने उदरको सब पदार्थोंकरके भर लेती

है ॥२७॥ हे मुने! इस जगत्में ऐसा पदार्थ कोई नहीं है जिसको सर्वभक्षी जो काल है सो ग्रास नहीं करता है जैसे वडवानल जो अग्नि है सो समुद्रके जलको नाश करती है और भस्म कर देती है ॥२८॥ हे मुने! यह काल भगवान् महात्मा ब्रह्मादिकोंको भी क्षणमात्रभी नहीं देखता है और यह काल अनेक प्रकारके विश्वको ग्रस लेता है और कालही विश्वरूपताको प्राप्त भया है ॥ २९ ॥ हे मुने! यह जो काल है सो भूतरूपी जो मच्छर है तिनका उदुंबर वृक्ष बना है और वह कैसा है भूतरूपी मच्छर क्षणमात्रमें नाश होनेवाले हैं तिनकरके भरे हुए जो अनेक ब्रह्मांड हैं तिन्हका ऊंबल वृक्ष बना है ॥३०॥ हे मुने! जिन गुणों करके लोकरूपी रत्नमाला पूर्ण होती है और काल तिसीको अपने अंगकी शोभावास्ते सर्वभूतोंका वारंवार संहार करता है ॥३१॥ हे मुने! दिशाभी शून्य होती है और देशभी उलट पलट होते हैं पर्वतभी चूर्ण होते हैं यह सब कालकी गति है हमारे शरीरोंकी कौन गिनती है ॥ ३२ ॥ हे मुने! कालकरके स्वर्गभी नष्ट होता है और आकाशभी लीन होता है और पृथ्वीभी क्षीण होती है हम लोगोंमें कौनसी स्थिरता है ॥ ३३ ॥ हे मुने! काल करके समुद्रभी शुष्क हो जाते हैं और तारामंडलभी गिर जाता है योगसिद्ध भी नाशको प्राप्त होते हैं और हमारी क्या गिनती है ॥ ३४ ॥ हे मुने! दैत्य दानवभी चूर्ण होते हैं और कालकरके ध्रुव अपनी ध्रुव पदवीसे गिरता है और अमर हुए भी मर जाते हैं तब हमारी क्या गति है ॥ ३५ ॥ हे मुने! कालने इन्द्रभी मुखोंकरके ग्रहण करा है यमभी फांसियोंकरके बांधा है और पवनभी चलनेसे रहित होता है उस कालमें हम क्या वस्तु है॥ ३६ ॥ हे मुने! कालसे चंद्रमाभी आकाशमें लीन होता है और सूर्यभी खंडित होता है और अग्निभी मग्न होती है तिसते

हमारी क्या गिनती है ॥ ३७ ॥ हे मुने ! कालतें ब्रह्माभी संहारको प्राप्त होता है और विष्णुभी प्रलयको प्राप्त होता है और शिवभी अभावको प्राप्त होता है हमारी क्या संख्या है ॥ ३८ ॥ हे मुने! यह जगत्का स्वरूप सुंदरभी है तोभी इसमें एक और दुःख है और ऐसा कोई आनन्दको करनेवाला अखंड पदार्थ नहीं जिस करके चित्त विश्रामको प्राप्त होवे ॥ ३९ ॥ हे मुने ! बालकपन खेलनेमेंही जाता है और यौवनमें मनरूपी हरण स्त्रीरूपी कंदरामें जाकर जर्जर होता है और वृद्धावस्थाकरके शरीर जीर्ण होता है लोक वृथा दुःख भोगता है ॥४०॥ हे मुने ! यह देह वृद्धावस्थारूपी तुषार करके सूख गई है और ऐसी देहरूपी कमलनीको छोड जीवरूपी भ्रमर क्षणमात्रमें चला गया है तो यह संसाररूपी लोकका सरोवर शुष्य हो गया है॥४१॥ हे मुने ! जब जब यह पुराना होता है तब तब मृत्यु शरीरमें अति प्रीति करता है और वृद्धावस्थारूपी बेल नये पत्रोंकरके बढती है और देहरूपी बेल मनुष्योंकी शुष्क हो जाती है॥४२॥ हे मुने! तृष्णा नदी उग्रवेगवाली है अनेक पदार्थोंको बहायकर ले जाती है तटविषें संतोषरूपी वृक्षोंको ढाइकर वहती है ॥ ४३ ॥ हे मुने ! यह देहरूपी नौका है और यह त्वचा चर्मकरके मढी है संसारसमुद्रमें डोलती है और पंचप्राण पवनोंकरके थरथराती है और इन्द्रियांरूपी मगरोंने डुबाय दीनी है॥४४॥ हे मुने ! यह मनरूपीमृग है सो तृष्णारूपी लताओंके वचनमें फिरता है, अनेक कामनारूपी शाखाके सैकडों गढ्ढोंमें भ्रमते हैं और कालक्षपना करते हैं सो किस फलको प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥ हे मुने ! ऐसे जो महात्मापुरुष संसारमें दुर्लभ हैं वह कैसे हैं जो अत्यंत कष्टमें खेदकरके और मोहकरके रहित हैं और सुखकी प्राप्तिविषें हर्षको और गर्वको नहीं धारण करते हैं और वह कैसे हैं स्त्रियोंकरके जिनका अंतःकरण

नहीं जीता गया है ॥ ४६ ॥ हे मुने ! जौनसे पुरुष रणरूपी समुद्रको तर जाते हैं कैसा है हाथियोंकी घटाही भारी तरंग हैं उनको मैं शूर वीर नहीं मानता हूं और जौनसे मन है तरंग जिसका ऐसे देह और इंद्रियोंके समुद्रको तरे तिसको मैं शूर वीर मानता हूं ॥ ४७ ॥ हे मुने ! ऐसी किसीकीभी कोई क्रिया नहीं देखी है वह कैसे हैं जिसमें आदिसे लेकर फलपर्यंत क्लेश नहीं है और जिसमें दुष्ट आशा करके चित्तकी वृत्ति नहीं मारी है और जिसको प्राप्त होय कर लोक विश्रामको प्राप्त होते हैं ॥४८॥ हे मुने ! ऐसे पुरुष जगत्में दुर्लभ हैं जौनसे कीर्तिकरके पुरुष जगत्‌को पूर्ण करते हैं और प्रतापों करके चारों दिशाओंको पूर्ण करते हैं और संपदा करसे घरको पूर्ण करते हैं अपने पराक्रमकरके लक्ष्मी उपार्जन करते हैं और अखंड है धैर्य जिनका॥४९॥ हे मुने ! चाहे यह पुरुष पर्वतोंके किलोंमें रहे चाहे वज्रके बने घरके अंदर रहे तो भी संपूर्ण अपदा और जो प्राप्त होनी है सो जहां तहांही आपही वेगकरके बहुत जलदी आय प्राप्त होती है॥५०॥हे मुने ! वृद्धावस्थाकरके युक्त जो पुरुष है सो बडे विषादकरके युक्त होता है और बडे दुःखकी अवस्थाको प्राप्त भया है और देहकी अंतकालकी अवस्थामें और अपने पीछे धर्मकरके रहित जोभाव किये हैं तिनको स्मरण करता है अंतःकरणमें दग्ध होता है ॥ ५१ ॥ हे मुने ! धर्म अर्थ काम इनकी प्राप्तिने किया है मोक्षमार्गका विघ्न जिन्होंने ऐसी क्रिया करने करके पहिले वृथा दिनोंको व्यतीत करके यह जो पुरुषों का चित्त है सो कैसा है मयूरके परोंके सदृश चंचल है और अब किस उपायकरके विश्रामको प्राप्त होवे ॥५२॥ हे मुने ! यह लोक अपने कर्मोंके फलोंकरके आपही वंचनाको प्राप्त होता है और कैसे हैं क्रियाफल आगे आयकर प्राप्त भये हैं और तोभी प्राप्त नहीं भये

नदीके भारी तरंगोंके समान चंचल हैं और दैववशते प्राप्त भये हैं और उलटे हैं लोक सुखको चाहते तोभी कर्मफल दुःख देते हैं॥५३॥ हे मुने ! कार्य किये हैं और यह करने हैं यह हमारी भावनामें हैं यह हमारे कार्य हमको निरंतर भले हैं इस प्रकार स्त्रियोंके साथ वार्ता करते लोकके चित्तको वृद्धावस्थापर्यंत अनेक कार्य जीर्ण करते हैं ॥ ५४ ॥ हे मुने ! जैसे वृक्षोंके पत्र पुराने समय करके गिरते हैं और फिर इकट्ठे होकर नये पत्र प्रकट होते हैं और फिर गिर पडते हैं ऐसे विवेकरहित जो लोक हैं सो अनेक दिनोंकर उत्पन्न होकर आपसमें मिलकर कितने दिनोंकर नाशको प्राप्त होते हैं ॥५५॥ हे मुने ! दिनमें इधर उधर चारों तरफ फिरके रात्रमें घरको प्रवेश करके विवेकी लोकोंका समागम विना और शुभ कर्मोंविना कौनसे सुख करके लोक निद्राको प्राप्त होते हैं ॥५६॥ हे मुने ! अपने बलकरके सब शत्रु नष्ट कर दिये हैं और चारों तरफसे संपदा प्राप्त भई है, जबलग यह लोकके सुखोंको पुरुष भोगता है इतनेमें मृत्यु अकस्मात् शिरके ऊपर आयकरके गरजती है॥५७॥हे मुने ! यह जितना जीवोंका समूह निरंतर संसारमें चला आता है और निरंतरही चलाभी जाता है अत्यंत चंचल है जैसे समुद्रमें अनेक प्रकारके तरंगोंकी माला उदय होती है और क्षणमें लीन होती है ॥ ५८ ॥ हे मुने ! यह स्त्रियां जगत्‌में सुंदरताकरके मनको हर लेती हैं और प्राणोंके हरनेको तत्पर भई हैं नवदलोंकी तरह रक्तही वस्त्र जिन्हके हैं और चंचल भ्रमरोंकी तरह श्याम और चंचलही हैं नेत्र जिन्हके सो स्त्रियां पुरुषोंको मोहित करनेके लिये विषवृक्षोंकी लता उत्पन्न भई हैं ॥५९॥हे मुने !यह जगत्‌में पुरुषोंको स्त्री पुत्रादि व्यवहारकी जो माया है सो तीर्थोंके मेलोंके समागम जैसी है लोक अपने आप वृथा और पाससे आय मिलते हैं औरएक

स्थानमें इकट्ठे होनेका सम्बन्ध है जिन्हका फेर अपने अपने सबही चले जाते हैं और तैसेही कर्मयोगकरके संसारमें समागम होता है और अपने अपने कर्मयोग करके वियोगभी होताहै॥६०॥ हे मुने! ऐसी कौन लोकविषे दृष्टि है जिन्हमें माया नहीं देखी दीहै और ऐसा कौन भोग है जिन्हमें दुःख और अग्निका दाह नहीं है ऐसी कौन प्रजा है जौनसी क्षणभंगुर नहीं है और ऐसी कौन क्रिया है जिन्हमें माया नहीं है ॥ ६१ ॥ हे मुने ! कल्पपर्यंत है और आयुष्य जिन्हकी ऐसे जो ब्रह्मादिक हैं सोभी अपने कल्पादिक कालकी संख्या पूरी होनेसे कालके वश होते हैं इसीसे हे मुने ! कालके जालमें बडे छोटे सब एक सरीखे नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ हे मुने ! पर्वत सर्वत्र पत्थरोंके बने हैं पृथ्वी सर्वत्र मृत्तिकाकी बनी है वृक्ष सर्वत्र काष्ठके हैं और देह सर्वत्र मांसकी है और इस जगत्में अपूर्व पदार्थ कोई नहीं है और विकारसे रहितभी कोई नहीं है सब पदार्थ विकारवाले हैं ॥ ६३ ॥ हे मुने ! जौनसा यह कुछ स्थावर और जंगम जगत्में दिखता है सो सम्पूर्ण स्थिर नहीं है वह स्वप्नके समागम सरीखा है ॥६४॥ हे मुने ! संसारमें जौनसा स्थान सूखे समुद्र जैसा महा डुंघा दिखता है सो अस्थान दूसरे दिन बादलोंकी घटाकरके युक्त ऊंचा पर्वत जैसा बन जाता है६५॥ जौनसा पर्वत वनों करके युक्त है सो आकाशपर्यंत ऊंचा दिखता है और वह पर्वत दिनों करके पृथिवीके समान होता है अथवा कूवा बनता है॥६६॥ जौनसा अंग आज सुंदर वस्त्रों करके छादन करीदा है और अनेक माला भूषणोंकरके शोभायमान होता है सो शरीर दूसरे दिनमें नग्न होय करके दूर देशोंमें खराब होवेगा॥६७॥ और जौनसा पुरुष आज बडा तेजवाला है और पृथिवीमंडलमें राज्य

करता है और सोई पुरुष दिनों करके भस्मकी ढेरी होती है॥६८॥और जौनसे स्थानमें आज नगर दिखता है अनेक लोक शोभायमान हैं फिर उसी स्थानमें दिनोंकरके निर्जनवन सरीखा उजार होता है ॥ ६९ ॥ और जौनसा स्थानमें आकाशपर्यंत ऊंची भयानक झाडी देखी हैं तहां पताका करके छादित भई महा नगरी दिखती है ॥७०॥ और जौनसी लता पत्र और पुष्पोंकरके शोभायमान जलकी नहरोंकरके युक्त सुंदर बनी देखी है सो दिनों करके मारवाडकी पृथिवीके तुल्य होती है ॥७१॥ जलाशयका स्थान सूखा मैदान होता है और सूखा मैदान स्थान जलमय होताहै हे मुने ! काष्ठ जल और तृण करकेसहित संपूर्ण जगत् दिनों करके उलटा पलटा होता है॥७२॥हे मुने ! वह पिछले संपदावाले बडे दिन सो पीछे किया उत्तम संपदा और वह पीछे किया उत्तम क्रिया यह सबही अब जैसे हमारेको कथामात्र स्मरण होती हैं तैसेही हमभी कथामात्र स्मरणमें होवेंगे ॥७३॥ पुरुष पशुभावको प्राप्त होते हैं और पशु पक्षी मनुष्यभावको प्राप्त होते हैं और देवता जोहैं सो मनुष्य और पशु पक्षी होते हैं।हे मुने! यहां जगत्में स्थिरताको कौन प्राप्त भयो है ॥७४॥ हे मुने ! ब्रह्मा और विष्णु और रुद्र और सबही भूतजाती जो हैं सो नाशकोही प्राप्त होती हैं जैसे समुद्रके जल नाश होनेको वड़वा नामी अग्निको जाइ प्राप्त होती है ॥७५॥ हे मुने ! स्वर्ग और पृथिवी और पवन और आकाश और पर्वत और नदियां औरदिशा यह सबही नाशरूपी वडवाअग्निको प्रज्वलित करनेको सुक्की लकडी है॥७६॥ हे मुने ! यह संसारमें आपदा क्षणमात्रमें प्राप्त होती हैऔर संपदा प्राप्त होतीहै और क्षणमात्रमें मृत्युभी प्राप्त होता है,क्षणमात्रमें जन्मभी प्राप्त होता है,हे मुने!वह कौनसा पदार्थ हैजो क्षणमें नाश और क्षणमें उत्पन्न नहीं होता है॥७७॥हे मुने !

यह संपूर्ण पदार्थ तबलग चेष्टा करते हैं जबलग नाशरूपी राक्षस स्मरणको नहीं प्राप्त भया है ॥ ७८॥ हे मुने ! यह जगत्में घडेका वस्त्र होता देखिया है और वस्त्रका घडा होता देखिया है सो जगत्में नहीं देखिया है उलटा पलटा नहीं होताहै ॥७९॥हे मुने ! यह मन क्षणमें आनंदको प्राप्त होता है और क्षणमात्रमें व्याकुलताको प्राप्त होता है और क्षणमात्रमें सौम्यताको प्राप्त होता है और क्षणमें उग्रताको प्राप्त होता है नटवियोंसरोखा अनेक स्वरूपवाला है॥८०॥ हे मुने ! यह संसाररूपी महावृक्षने अनेक प्राणिरूपी फल प्रति दिन गिरते हैं और वह कैसे हैं अपने अपने कर्मफलते इकट्ठेभी पकते हैं औरभिन्नभिन्नभी पकते हैं औरकालरूपीपवनके वेगसे अपने अपने स्थानसे गिराये हैं ॥८१॥ हे मुने ! इस प्रकारके दोषरूपी वनकी अग्निकरके मेरा चित्त दग्ध भयाहै और तिसमें भोगोंकी आशा नहीं फुरती है जैसे निर्जल देशमें जलपानकी आशा नहीं फुरती है ॥८२॥ हे मुने ! जनोंके चित्तमें दुर्जनता बढती है और स्वजनता क्षीणताको प्राप्त होती है और अत्यंत कठोर है दिन दिन प्रति कठोरताको धरता है ॥८३॥ हे मुने ! मेरेको सुंदर बागबगीचे आनंदको नहीं करते हैं और स्त्रियां सुखको नहीं देती हैं और द्रव्यको आशा मेरेकी हर्ष नहीं करती है और मैं अपने मनकरके आपही शांतिको धरता हूं ॥ ८४ ॥ हे मुने ! मैं वैराग्य करके मरणकी इच्छा नहीं करता हूं अरु जीवनेको नहीं चाहता हूं जैसे मैं स्थित होयसे ही स्थित होता हूं और मैं चिंताज्वरकरके रहित भया हूं ॥ ८५॥ हे मुने ! मेरेको राज्य करके क्या प्रयोजन है और भोगोंकरके क्या प्रयोजन है और द्रव्योंकरके क्या है ? और उद्यमोंकरके क्या है यह सब अहंकारवशते हैं सो अहंकार मेरा अब नष्ट भया है॥८६॥हे मुने !

जो अब निर्मल बुद्धि करके चित्तकी चिकित्सा नहीं करूं तो फिर चित्तकी चिकित्साका समय कहां मिलना है ॥ ८७ ॥ हे मुने ! विषको हम विष नहीं मानते हैं और इंद्रियोंके विषयोंको विष मानते हैं और विषयरूपी विष जन्म जन्मको मारते हैं विष इस एक देहकोही मारता है ॥ ८८ ॥ हे मुने ! ज्ञानी पुरुषोंको सुख बंधन नहीं करते हैं और दुःखभी बंधन नहीं करते हैं और मित्रभी बंधन नहीं करते हैं बांधवभी बंधन नहीं करते हैं॥८९॥हे मुने!देहको छेदन करनेवास्ते करपत्र शस्त्रकरके छेदनकी पीडाको सहिनेको मैं समर्थ हूं परंतु संसारके व्यवहारसे उत्पन्न भये हैं एसे विषयरूपी शस्त्रोंकरके नाशको समर्थ नहीं होता हूं ॥९०॥ हे मुने ! अब मेरा मन भ्रमता जैसा है और मेरेको भय प्राप्त भया है और अंग मेरे सब कंपायमान होते हैं जैसे पुराने पत्र वृक्षसे गिरते हैं॥९१॥हे मुने! मेरेको यह आश्चर्य है क्या आश्चर्य है तुच्छ है अकस्मात् उपाधि विनाही मनतेही भ्रम उदय भया है और हे मुने! ऐसा कौन स्थित होनेका स्थान है जहां शोक भय नहीं प्राप्त होतेहैं॥९२॥ हे मुने! जनकराजासे लेकर भले लोक भये हैं सोभी संसारके व्यवहारोंमें रहे हैं और वह उत्तम जनोंकी गिनतीमें कैसे भये हैं॥९३॥हे मुने! तुमभी कौनसी उत्तम दृष्टिका आश्रय करके संसारमलसे रहित भये हो और महात्मा होयकर जीवन्मुक्त भये हो और अपनी इच्छा करके विचरते हो ॥ ९४ ॥ हे मुने ! ऐसा पदार्थ तुच्छभी पृथिवीमें नहीं और स्वर्गविषे भी नहीं है और देवतोंके विषेभी नहीं है जिसको तुम सरीखे उत्तम बुद्धिवाले संतजन अपनी संगती करके उत्तमताको नहीं प्राप्त करते हैं॥९५॥हे मुने ! तुम धैर्यवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो संसाररूपी अग्निमें विचरण करते हो तौभी संसारके संतापको किस युक्तिकरके नहीं पाते हो जैसे पारा अग्निमें दग्ध

नहीं होता है तिस युक्तिको तुम मेरे प्रति कहो ॥ ९६॥ हे मुने! साधुपुरुष निश्चय करके जिस उपाय करके दुःखसे रहित भये हैं तिसको तुम जानते हो तो मेरा मोह निवृत्त करनेकेवास्ते मेरे प्रति कहो॥९७॥अथवा हे मुने! ऐसी युक्ति कोई नहीं है अथवा मेरेको प्रकट करके सुनावता भी कोई नहीं है और मैं आपभी उत्तम विश्रामको प्राप्त नहीं होता हूं तो मैं सब भावनाको त्याग करता हूं और अहंकारसे रहित भया हूं॥९८॥हे मुने!ना तो मैं भोजन करूं और ना तो मैं जलपान करूं और ना तो मैं शस्त्र धारण करूं और स्नान दान भोजनादि व्यवहारको नहीं करता हूं॥९९॥ हे मुने! केवल अकेला ही रहूंगा और निशंक होयकर ममताको त्याग करके ममतासे रहित होयकर मौनको धारण करता हूं जैसे चित्रविषे लिखी हुई पुतली होती है तैसेही स्थित होता हूं॥२००॥हे मुने!ना तो मैं इस देहका हूं और ना मेरा और कोई जैसे तेलविना दीपक शांत होता है तैसे सब कुछ त्याग करके इस देहको त्याग करता हूं और शांतिसुखको प्राप्त होता हूं ॥ २०१ ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच॥हे भरद्वाज! श्रीरामचंद्र इतना वचन कहिकर चुपकर जातेभये वह श्रीरामचंद्रजी कैसे हैं निर्मल पूर्णमासीके चंद्रमाकी न्याई है स्वरूप जिन्हका और बडे उत्तम विचारके प्रकाश करके शोभायमान है चित्त जिसका ऐसे विश्वामित्रजीके आगे मौनधारण करके बैठ जाते भये जैसे घने बादलोंकी घटाओंको देखकर बहुत बोलनेका श्रमसे खेदको प्राप्त भाया ऐसा जो मोर है सो चुप हो जाता है॥ १॥आकाशमें बदलोंकी घटामें स्थित भये जो सिद्ध हैं सो श्रीरामचंद्रजीके मुखारविंदसे प्रकट भया हुआ वचनरूपी अमृतको पान करके अनेक प्रकारोंके पुष्पोंकी वर्षा करके राजा दशरथकी सभाको पूर्ण करके वचन कहते भये ॥

सिद्धा ऊचुः ॥ हम ब्रह्माजीके दिनके आदिसे चारोंतरफ भ्रमते रहे हैं परंतु आज श्रीरामचंद्रजीके मुखारविंदसे प्रकट भया कर्णों विषे अमृतका आनंद करनेहारा अपूर्व वचन सुना है ॥ २ ॥ रघुकुलके चन्द्रमा ऐसे श्रीरामचन्द्रजीने जो उत्तम वैराग्य करके कहह्या है सो ऐसा वचन बृहस्पतिजीसेभी नहीं कहह्या जाता है ॥ ३ ॥ अहो आज हमारे बडे पुण्य उदय हुवे हैं यह जो श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दसे प्रगट भया उत्तम वचन हमने सुनियां है यह वचन बुद्धिको आनंदको करनेवाला है ॥ ४ ॥ फिर यह वचन कैसा है जो शांति प्राप्तिके करनेको अमृतसेभी उत्तम है और अति सुन्दर है जो श्रीराचन्द्रजीने कहा है इस वचनके सुनने करके हम परमबोधके आनंदको प्राप्त भये हैं ॥ ५ ॥ और आकाशमें जो विचरनेवाले देवता सो राजा दशरथकी सभामें बैठे हुवे जो मुनि हैं सो श्रीरामचन्द्रजीको वचन कहते भये अहो आज हमारे बडे भाग्य उदय हुवे हैं सो उत्तम गुणोंकरके जो विराजमान ऐसे जो श्रीरामचन्द्रजीने परम उदार बानी कही है वह बानी कैसी वैराग्य रसकरके भरी हुई है ॥ ६ ॥ तदनंतर आकाशसे उतरकर सभामें आकर देवता और मुनि निश्चय करके कहने योग्य बोधवाला प्रगट श्रीरामचन्द्रजीके वचन किसको विस्मय नहीं करता है और अर्थ जिसका स्पष्ट है पद और अक्षर जिसके सबको इष्ट है और तुष्टिके करनेवाला है ॥ ८ ॥ और उदार है और सबको प्रिय है उत्तम लोगोंके योग्य है, व्याकुल नहीं है और प्रकटभी है तो भी सैकडों पुरुषोंमें किसी बुद्धिवाले पुरुषको सर्व प्रकारके चमत्कार करनेवाला है ॥९॥ हे रामचंद्रजी ! तेरे विना ऐसी उत्तम बानी किसीकोभी नहीं प्रकट होती है वह कैसी है इष्ट अर्थको समर्पणकरनेमें

एकांत करके चतुर है और विवेकरूपी फलको देनेवाली है॥१०॥ हे रामचंद्रजी ! जौनसे यशके निधि जो पुरुष हैं उन्हकी बुद्धिरूपी लता तुम्हारे वचनको श्रवण करके प्रकाशमान होती है और यत्नकरके सारकी प्रातिभी होती है ॥ ११ ॥ सभामें स्थित भये सबके प्रति यह वचन कहते हैं श्रीरामचन्द्रजीके समान कोई पुरुष नहीं है फिर कैसे हैं श्रीरामचन्द्रजी उदार बुद्धिवाले हैं और विवेकवाले हैं और यही हमारी बुद्धि है और श्रीरामचन्द्रजीके समान तीन लोकमें कोई भया नहीं है और न आगेको ऐसा होवैगा ॥ १२ ॥ जो श्रीरामचंद्रजीके मनका मनोरथ सिद्ध नहीं होवे तो सबही हम लोग और मुनि लोग नष्टबुद्धि हैं और वे कैसे हैं श्रीरामचन्द्रजी सब लोगको चमत्कार करेनेवाले हैं और मुनिलोगभी सबको चमत्कार करनेहारे हैं ॥ १३ ॥

इति श्रीवासिष्ठसारे मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणम् ।

प्रथम विश्वामित्रजीके वचन श्रीरामचंद्रजी प्रति ॥

हे रामचंद्रजी ! शुकदेवने अपने पिता व्यासदेवजीको प्रश्न किया है हे पिताजी!मेरेको मोक्षमार्गका उपदेश करो जिस करके मैं संसारके दुखोंसे रहित हो जाओं श्रीव्यासदेवजी शुकदेवको कहते भये. हे शुकदेव! यह संसार अपने मनके विकल्पसे प्रकट भया है यह इसका निश्चय है क्या है यह संसार सारसे रहित है अरु स्वभावकरके दग्ध है सो अपने मनके विकलपका क्षय भये संत जिस

प्रकारसे क्षीण होता है तिस प्रकारको तुमको राजा जनक कहेगा ॥१॥तदनंतर श्रीशुकदेवजी पिताकी आज्ञा लेकरके राजा जनकके पास जाते भये, राजा जनक शुकदेवजीको नमस्कार करके पूजा करना भया और शुकदेवजीको आगमनकारण पूछता भया तो शुकदेवजी मोक्षमार्गके उपायका प्रश्न राजा जनकको करते भये तो राजा जनक शुकदेवजीको वचन कहता भया हे शुकदेव ! चैतन्यस्वरूप एक आत्मा पुरुष है और वह कैसा है निर्लेप है और असंग है और तिसते भिन्न और कुछ नहीं है वह पुरुष अपने संकल्पवशते बंधको प्राप्त भया है और संकलपसे रहित होवे तो मुक्त होता ॥ २ ॥ हे बाल ! तूं संसार तरनेको महावीर है और जिस कारणतें तेरी बुद्धि भोगरूपी दीर्घरोगोंसे विरक्त भई है वैराग्यकरके संसार मुक्ति होती है और क्या श्रवण करनेको चाहता है॥३॥हे शुकदेव ! जैसी ज्ञान करके पूर्णता है तेरेको भई है ऐसी पूर्णता तुम्हारे पिता व्यासदेवजीको नहीं भई है वह कैसे हैं व्यासदेवजी सर्व प्रकारके ज्ञानके निधि हैं औ चिरकालसे तप करनेमें स्थित हैं और अनेक प्रकारके ज्ञान करके मुक्ति नहीं होती है और मुक्तके लिये चित्तकी एकाग्रता करने योग्य है ॥ ४ ॥ हे रामजी ! राजा जनकने इस प्रकारका उपदेश किया तो शुकदेव परमात्मा वस्तुविषे एकाग्रताको धारण करते भये ॥ ५ ॥ और वह कैसे हैं शोक भय और खेद करके रहित भये हैं निस्पृह होते भये संशयरहित होयकर समाधि करनेवास्ते सुमेरुपर्वतको चले जाते भये ॥ ६ ॥ तहां जाय कर निर्विकल्पसमाधिकरके दशहजार वर्ष स्थित होइ करके चित्तकी शांति होती है ॥ ७ ॥ हे रामचंद्रजी ! सो शुकदेव मनकी कल्पनारूपी कलंकसे रहित होते भये शुद्ध अंतःकरणवाले होते भये निर्मल

और पवित्र ऐसे परमात्माकी पदवीमें एकताको प्राप्त होते भये कैसे जैसे जलका एक किणका समुद्रके जलमें एक रूप होता है ॥८॥ विश्वामित्र श्रीरामचंद्रजीको कहते हैं जाना है परमात्माका तत्व जिस करके ऐसे मनका निश्चय करके यही लक्षण है वह क्या है संपूर्ण भोगोंके समूहोंको फेर चित्त नहीं चले ॥ ९ ॥ भोगवासना करके संसारका बंधन दृढ होता है भोगवासना शांत होने करके जगत्में बंधन शांत होता है ॥१०॥ हे रामचंद्रजी ! वासनाकी जो शांति है सोही ज्ञानी पंडितोंने मोक्ष कह्या है और पदार्थोंकी वासनाकी दृढताही बंधन कह्या है ॥ ११ ॥ भोगोंकी इच्छा त्यागकर कितने लोक यश वास्ते भोगोंका त्याग करते हैं सो दंभी है तिसते हे रामचंद्रजी! यशकी इच्छा विनाभी जिसको भोगोंविषें रुचि नहीं होती है सो जीवन्मुक्त कह्या है ॥१२॥ विश्वामित्रजी वसिष्ठजीको कहते हैं हे वसिष्ठजी ! सोही ज्ञान है सोही शास्त्रोंका अर्थ है वही ज्ञानका अखंड निश्चय है जौनसा वैराग्यकरके मुक्त भले शिष्यको उपदेश करे है ॥ १३ ॥ हे मुने ! वैराग्यसे रहित दुष्ट शिष्यको जो कुछ उपदेश करे है सो अपवित्र होता है जैसे कपिला गौका दुग्ध कुत्तेके चमडेमें अपवित्र होता है॥१४॥हे मुने ! जौनसे राग और भय क्रोधसेरहित भयेहैं औरअभिमानरहितहैं पापरहितहैं ऐसे तुम्हारे सरीखेउत्तम पुरुष जो उपदेश करते हैंऔर तिसमें श्रवण करनेवालेकी बुद्धि विश्रामको प्राप्त होती है और सबही संशय दूर होते हैं ॥१५॥ श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीको कहते हैं हे रामजी ! परमात्मारूप सूर्यके प्रकाशमें जौनसे त्रैलोक्यरूपी रेणुके किणके और पूर्व कालमें उत्पन्न होइ होइ कर लीन भये हैं सोअब संख्यामें नहींआवते हैं॥ १६॥ जौनसी अबकी त्रैलोक्यगणोंकी कोटी वर्तमान है सोभी किसीसेभी गिनी नहीं जाती॥१७॥जौनसी आगे परमात्मारूपी समुद्रमें जगत्के

सृष्टिरूप तरंग उत्पन्न होवेंगे और तिन्हकी संख्याकी कोई वार्त्ताभी नहीं है ॥ १८॥ हे रामचंद्रजी ! जैसे संकल्पकी रचना मिथ्या है और मनोरथके विलास मिथ्या हैं और जैसे इंद्रजालकी माया मिथ्या है और जैसे पूर्वकी कथाके अर्थ नाम मात्र है और दुष्ट पवनवेग करके और पृथिवीका चलना मिथ्या है जैसे बालकको पिशाचका त्रास क्षणमात्र होता है और आकाशमें मुक्तामणिकी माला भासतीहै जैसे बेडीके चलनेमें किनारेके वृक्षोंका चलना मिथ्याही भासता है और जैसे स्वप्नके ज्ञानमें नगरादि भान मिथ्या होता है जैसे आकाश पुष्पोंका फुरना मिथ्या होता है तैसेही इस पुरुषको जगत्की उत्पत्ती होनेका फुरना मिथ्या है और मृतहोनाभी मिथ्या है ॥ १९-२१ ॥ हे रामजी ! जब यह पुरुष मृत होता है जगतमें जन्मके अनुभवको प्राप्त होता है फिर अपने स्वरूपका स्मरण भूल जाता है तो जगत्का फुरना दृढ होता है फिर जीवरूपी आकाशमें यह लोक हैंऐसा अनुभव दृढ होताहै फिर जन्मकी इच्छा दृढ होती है फिर मरनेका अनुभव होताहै तो परलोककी कल्पना करता है और परलोकमें अनेक पुरुषोंकी कल्पना होतीहै तिन्ह पुरुषोंमेंभी और पुरुषोंकी कल्पना होती है॥२२॥हे रामजी!पुरुषके फुरनेमें यह अनेक संसार भासते हैं जैसे केलेकी स्तंभके अंदर अनेक त्वचाके आवरण होते हैं॥२४॥हे रामजी ! जौनसे मृत होतेहैं तिन्हको पृथिवी आदि महाभूतोंकी गिनती नहीं है और जगत्के क्रमभी नहीं हैं तदपि इनको जगत्का भ्रम दृढ रहते हैं॥२५॥हे रामजी!यह अविद्या अनंत है और अनेक प्रकारके विस्तारवालीहै और जड बुद्धिवाले पुरुषोंको महादुस्तर नदीहै और वह कैसी है अनेक प्रकारके जगत्की सृष्टिरूपी तरंगोंकरके युक्त है ॥२६ ॥ हे रामजी!परमार्थरूपी विशाल समुद्रमें जगत्की सृष्टिके तरंग वारंवार प्रवृत्त होते

है कितने पहिले सरीखे हैं और जैसे हैं ॥२७॥ कितने उत्पत्ति करके मनकरके और क्रमकरके गुणोंकरके समान हैं और कितने आधे गुण वाले हैं कितने और प्रकारके हैं ॥२८॥ हे रामजी! कालरूपी समुद्रसे सृष्टिरूप तरंग तिसी प्रकारकरके अथवा और प्रकारकरके वारंवार प्रवृत्त होते हैं॥२९॥ हे रामजी ! जौनसा ज्ञान विचारवला पुरुष है सो अंतःकररणकरके स्थित होता है उसके मनके विकल्प शांत होते हैं और स्वरूपके सारको जाननेवाला है शांतिरूप अमृत करके तृप्त होता है सो अविद्याके बंधनमे मुक्त होता है॥३०॥हे रामचंद्रजी! पुरुष संदेहरूपी देहसे मुक्त भये हैं ऐसे बोधरूपी पुरुषोंको आत्मा परमात्मामें संदेहनहीं होताहै और भेदभी नहीं होता है जसे समुद्रके जलका और तरंगका भेद नहींहोता है॥३१॥हे रामचंद्रजी ! यह संसारमें भले प्रकारकरके किये अपने पौरुष करके सर्व जीवों करके सर्व पदार्थ प्राप्त होतेहैं॥३२॥हे रामचंद्रजी!भले सत्पुरुषोंने उपदेश किया जो मार्गहैतिसकरके जौनसा देहको और मनको वरतावताहैवहीपौरुषहै तिस विना मनका इंद्रियोंका वरतावताहै और सोहीविक्षिप्तपुरुषकी चेष्टा है॥३३॥हे रामजी! जो पुरुष जिस अर्थको चाहता हैसो पुरुष तिस अर्थके लिये उद्यम करताहै तो उस अर्थको पुरुष अवश्यमेव प्राप्त होता है और जो उद्यम नहीं करे तो नहीं प्राप्त होता है ॥३४॥हे रामचंद्रजी ! यह जगतमें कोई एक जीव अपने उद्यमके यत्न करके त्रैलोक्यके ऐश्वर्य करके उत्तम इंद्रकी पदवीको प्राप्त होता भया ॥३५॥ हे रामचंद्रजी ! कोई एक चैतन्यका प्रतिबिंब अपने पौरुषके यत्न करके कमलके आसन ऊपर बैठकरके ब्रह्माकी पदवीको प्राप्त होता भया॥३६॥ हेरामचंद्रजी!कोई एक पुरुष अपने उत्तम पुरुषार्थ करके और गरुडके ऊपर चढकरके पुरुषोंमें

उत्तम ऐसा विष्णुरूप भया है॥ ३७॥ हे रामचंद्रजी ! एक कोई पुरुष यह संसारमें पौरुष करके यत्न करके एक शरीरमें आधा स्त्री-रूप और आधा पुरुषरूप होताहै या वह कैसा है अर्धचंद्र है मस्तकका भूषण जिसका ऐसे अर्धनारीश्वररूप भया है॥३८॥हे रामजी! तिस पौरुषके दो प्रकार तुम जानो और पूर्वजन्मका किया औरएक इस जन्मका है तिहूमें पूर्वजन्मका पौरुष इस जन्मका पुरुषार्थ करके जीतेया जाता है॥ ३९॥ हे रामचंद्रजी ! यत्नवाले दृढ अभ्यासों करके बुद्धिकरके और उद्यम करके युक्त ऐसे पौरुषकरके पर्वतभी गिराये जाते हैं और पूर्वजन्मके पौरुषके गिरावनेमें क्या आश्चर्य है॥ ४० ॥ हे रामजी ! इस जन्मका पौरुषभी दो प्रकारा है और एक शास्त्रसे रहित है और एक शास्त्रकी विधि करके सहित है और तिहूमें शास्त्रकी विधिरहित जो पुरुषार्थ है सो अनर्थकोप्राप्तकरता है और शास्त्रकी विधिसहित जो पुरुषाथ है सो परमार्थको प्राप्त करता है॥ ४१॥ हे रामजी! इस जन्मका पुरुषार्थ और पूर्वजन्मका पुरुषार्थ यह दोनों आपसमें युद्ध करते हैं जैसे दोनों भैंसे आप-समें युद्ध करते हैं और वह कैसे हैं ? एक बलकरके पूर्ण हैं और एक निर्बल है तिहूमें बलवान्करके दुर्बल शांत होता है॥ ४२ ॥ तिसतें परम पौरुषको धारकर दंतोंकर दंतोंको दबाइकर हे रामचंद्रजी! यह जन्मका शुभ पुरुषार्थ करके और अशुभरूपकरके उदय भये हुये पूर्वजन्मकी पुरुषार्थको यत्न करके जीतने योग्य हैं॥ ४३॥ हे रामचंद्रजी ! पूर्वजन्मका पुरुषार्थ मेरेको प्रेरण करता है ऐसी बुद्धि यह जन्मके पुरुषार्थ करके दूर करने योग्य है जिस कारणतें सो बुद्धि यह जन्मके प्रत्यक्ष पुरुषाथसे दुर्बल है ॥४४॥हे रामचंद्रजी ! उद्यमको त्यागकरके और उद्यमसे रहित है सो मनुष्यरूपकरके गधा बने

है ऐसे प्रारब्ध माननेवालोंके बरोबर नहीं होने योग्य है और शास्त्र-करके किया जो उद्यम है सो यह जन्ममें और अगले लोकमें दोनोंमें सिद्धि कर देता है ॥४५॥ हे रामजी ! उद्यमरूपी यत्नको धारण करके यह संसाररूपी गर्भसे बल करक आपही निकलने योग्यहै जैसे सिंह अपने बलकरके अपने शत्रूनके बंधनसे निकस जाताहै ॥ ४६ ॥ हे रामचंद्रजी ! प्रारब्धको मानकरके थोडे अन्न पानको पाइकरके और आयुष्य वृथा भस्म नहीं करने योग्य है और उद्य-मकरके रहित जो पुरुष हैं सो नरकके कीडे होते हैं ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! शुभ पौरुषकरके शुभफल प्राप्त होताहै और अशुभपौरुष करके अशुभ फल प्राप्त होताहै प्रारब्ध कछु नहीं करता है॥४८॥ हे रामजी!जौनसे पुरुष कहते हैं प्रारब्ध मेरेको प्रेरण करताहै ऐसे कहनेवालेका मुख देखकरके लक्ष्मी फिर जातीहै, जौन उद्यम नहीं करते हैं तिनके मुख दग्ध हो गये हैं और उन्हकी दृष्टि श्रेष्ठ नहीं दीखती है ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! बालक अवस्थासे भले प्रकार अभ्यास किये जो शास्त्र सत्संगादिक उत्तम गुण हैं तिन्हकरके यत्न करनेसे अपना इच्छित उत्तम अर्थ प्राप्त होता है प्रारब्ध व्यर्थ है ॥ ५० ॥ हे रामचंद्रजी ! यह जगत्में महा अनर्थको करनेवाला आलस्य नहीं होवै तो बहुत धनवाला बहुत शास्त्र पढनेवाला कौन पुरुष नहीं होवे और आलस्यकरके समुद्रपर्यंत संपूर्ण पृथ्वीसेभी प्रालब्धको माननेवाले निर्धन हैं ऐसे जो मनुष्यरूपी पशु हैं और उद्यमसे रहित हैं तिनकरके भरी है ॥५१॥ हे रामचंद्रजी ! पहि-ले दिनोंमें दुष्ट कर्म अपराध किया है सो आजके शुभ कर्म करके शुभ हो जाता है और तैसेही पूर्वजन्मका अशुभ प्रारब्ध कर्म इस जन्मका शुभ कर्म करके शुभ होता है जैसे रोग पहिले होता है सो दुःख देता है और औषधी पीछे करते हैं उस औषधकरके रोग

और दुःख दूर होते हैं ॥ ५२ ॥ हे रामजी ! जौनसे पुरुष शुभ कर्मकरके अशुभ प्रारब्धको नहीं दूर करता है जो पुरुष अज्ञानी है वह सुखदुःखोंके अधीन है और पुरुषार्थवाला पुरुष स्वतंत्र होता है ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! जौनसा पुरुष ईश्वरकी प्रेरणाकरके स्वर्गको अथवा नरकको जावेगा तो वह सदैव पराधीन रहेगा और पशुरूपही रहेगा ॥५४ ॥ हे रामजी ! जौनसा पुरुष उद्यम करके उदार आचारवाला है सो पुरुष जगत्के मोहसे मुक्त होता है और जैसे सिंह अपने बलकरके पिंजरेसे निकल जाता है ॥ ५५॥ जौनसा पुरुष कहता है कि मेरेको कोई प्रेरणा करता है तो मैं कार्य करता हूँ ऐसे अनर्थकी दुष्ट कल्पनामें स्थित भया है और उद्यमको त्याग करता है सो नीच पुरुष है तिसका दूरसे त्याग करना योग्य है ॥५६॥ हे रामजी ! संसारके हजारों कार्योंके व्यवहार आवते जाते हैं तिसमें सुखदुःखों गुरु शास्त्रकी आज्ञासे हर्ष शोकको त्याग करके व्यवहार करने योग्य है॥५७॥ हे रामजी ! यह जीव जन्ममरणरूपी रोगको जानकरके तिस शांतिके वास्ते ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुसेवा करके अपना पौरुषरूपी उत्तम औषध करके मोक्षको प्राप्त होवे ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! यह पुरुष रोगादिकोंसे रहित मनुष्यदेहको पाइकरके तैसे समाधान करे उद्यम करे जैसे फेर जन्मको नहीं प्राप्त होवे ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! जौनसा पुरुष पुरुषार्थकरके प्रारब्धको जीतने चाहता है सो पुरुष इसलोकमें परलोकमें संपूर्ण वांछाकी सिद्धिको पावता है ॥ ६० ॥ हे रामजी ! जौनसा अपने पुरुषार्थको त्यागकरके प्रारब्धके अधीन होइ रहा है सो अपने धर्मको अर्थको कामको नाशकरता है और आत्महत्याके दोषको प्राप्त होता है॥६१॥हे रामजी ! पुरुषार्थके तीन रूप हैं सो कौन रूप हैं एक बुद्धिकी सावधानता और मनकी सावधानता तीसरी

इंद्रियोंकी सावधानता इन्ह तीनोंकी सावधानतासे कर्म फलका उदय होता है ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! पुरुषार्थकी सिद्धि तीन प्रकारें करके होती है, एक शास्त्रके वचन करके और सद्गुरुके उपदेशते और अपने निश्चय करके ॥ ६३ ॥ हे रामचंद्रजी ! अशुभ कर्मोंविषे प्रवृत्त भये अपने चित्तको शुभ कर्मोंविषे प्रवृत्त करे और शुभ कर्मोंको यत्न करके करे, सर्व शास्त्रोंका यही निश्चय है ॥ ६४ ॥ हे रामजी । शुभबुद्धि करके शुभ शास्त्रका अभ्यास आदि गुण प्राप्त होते हैं और शुभशास्त्र अभ्यास आदि गुणों-करके शुभ बुद्धि उदय होती दोनों आपसमें बढते हैं वह कैसे जैसे वर्षाकालविषे कमल और जल आपसमें बढते हैं ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! जौनसा दृढ अहंकार करके पूर्वजन्ममें जो कर्म किये हैं सोही दैव नामकरके कहे हैं ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! जो पूर्व-जन्मके कर्म हैं सोही दैव कहे हैं और दैव किसको कहते हैं कर्मकोही दैव कहते हैं और कर्म किसको कहते हैं जो मनकी चेष्टा है तिसको कर्म कहते हैं सो मन पुरुष स्वरूप और प्रारब्ध इन्हसे भिन्न नहीं है यह हमारा निश्चय है ॥ ६७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका प्रश्न ॥ हे गुरुजी ! जो पूर्वजन्मकी वासनाका समूह है सो मेरेको मायाकरके जैसे प्रेरणा करता है तैसेही मैं प्रवृत्त होता हूँ मैं पराधीन हूँ और जो तुम मेरेको उप-देश करो तिसको मैं करूं ॥ ६८ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं ॥ हे रामचंद्रजी ! मैं तेरेको इस कारणते कहता हूँ तूं वासनाको त्याग प्रारब्धको दूर कर अपने पौरुष करके यत्नकरके अखंड आनंदको प्राप्त होवेगा ॥ ६९ ॥ हे रामजी ! यह वासनारूपी नदी दो मार्गकरके वहतीहै—शुभ मार्गकरके और अशुभ मार्गकरके तिसते अपने पौरुषके यत्न करके शुभ मार्गमें युक्त करने

योग्य है ॥७०॥ हे रामजी ! इसका यही उपाय है अशुभ कर्मोंसे प्रवृत्त भये अपने मनको पौरुषरूपी यत्नके बल करके शुभ मार्गोंसे प्रवृत्तकर तेरेको वैराग्यके विचारका बल प्राप्त भया है॥७१॥हे रामजी! जबलग तेरेको दृढ तत्त्वज्ञान नहीं भया है तबलग तैंने परमात्माका स्वरूप जाना नहीं । तबलग तू गुरोंके वचन करके और शास्त्रोंके प्रमाणकरके जो निर्णय किया है तिसको आचरण कर ॥ ७२ ॥ हे रामजी ! शुभ कर्म करने करके तेरे अंतःकरणकी मलिनता शुद्ध होवेगी निश्चय करके आत्मतत्त्वको जब तू जानेगा तब तैंने शुभ कर्मोंकी वासनाभी त्याग देनी ॥७३॥ हे रामजी ! यह शुभ कर्म करनेवाला मार्ग उत्तम पुरुषोंने सेवित है उत्तम बुद्धि करके इसको तू सेवन कर जब तेरा अंतःकरण शुभ कर्मोंकरके वासनारहित होता तो तू शुभ कर्मोंको त्यागकरके शोकसे रहित आत्मस्वरूपको प्राप्त होवेगा ॥ ७४॥ हे रामजी ! सृष्टिके आदिमें ब्रह्माकी इच्छासे मैं प्रकट होता भया तब मैं संसारके दुःखकी शांति वास्ते पिताको प्रश्न करता भया पिता मेरेको ज्ञान उपदेश करके वचन कहता भया ॥ ७५ ॥ हे पुत्र ! अब तू पृथिवी लोकमें जंबूद्वीप है तिसमें भारतखंडके लोकोंके अनुग्रहके कारण करके चला आता ॥७६॥ तहां जाय करके तुमने उत्तम बुद्धि करके कर्मकाण्ड करनेवाले पुरुषनको कर्मकांड उपदेश करना और आपभी कर्मकांडमें प्रवृत्ति करनी ॥७७॥ हे पुत्र ! जौनसे विरक्त चित्तवाले पुरुष हैं महाबुद्धिवाले विचार करके उपदेश करके विरक्त पुरुषोंको तुमने ज्ञानके आनंदको प्राप्त करने ॥ ७८ ॥ हे रामजी ! कमलसे प्रगट भये ऐसे पिता ब्रह्माजीके इतना उपदेश करके मैं पृथिवी लोकमें प्राप्त भया हूँ जबलग यह भूतोंकी सृष्टि रहेगी तबलग पृथिवी लोकमें हमारी स्थिति है ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! पृथ्वीलोकमें मेरेको कार्य करना कोई नहीं है, पिताकी आज्ञा करके लोकोंके उपकारके

लिये मैंने यहां रहना है इस कारण करके मैं स्थित भया हूं निरंतर शांतवृत्ति करके अहंकाररहित बुद्धिकरके व्यवहारके कार्य करताभी हूँ तबभी अंतःकरण करके नहीं करता हूं ॥८०॥ हे रामजी! जनकादिक राजा भये हैं सो भी संपूर्ण विद्यामें राजाकी नाईं उत्तम हैं और अत्यंत गोप्य उपदेशोंमें राजाकी नाईं गुप्त है ऐसा आत्मज्ञानको जानकरके परम दुःखी शांतिको प्राप्त होते भये ॥ ८१ ॥ हे रामजी! यह तुमको उत्तम वैराग्य प्रगटभया है। कैसा है सत्पुरुषोंको चमत्कार करनेहारा है और दुःखादि निमित्त विना भया है और अपने विवेकसे उत्पन्न है इस कारणते यह सात्त्विक वैराग्य है ॥८२॥ हे रामजी! दुःखको प्राप्त होइ करके और मलीनता देखकरके सबको वैराग्य होता है सत्पुरुषोंको विवेक करके उत्तम वैराग्य होता है ॥ ८३ ॥ हे रामजी ! विवेक करके संसारकी रचनाको अनित्य विचार करके जौनसे वैराग्यको प्राप्त होते हैं सो उत्तम पुरुष हैं ॥८४॥ हे रामजी! परमात्मा परमेश्वरके प्रसादते तुम्हारे सरीखे पुरुषकी विरलेकी शुभबुद्धि विवेकको प्राप्त होती है ॥८५॥ हे रामचन्द्रजी ! ऐसी उत्तम बुद्धि जीवोंको होनी कठिन है और बहुत उत्तम कर्मकरके बडे तप करके बडे नियम करके महादान करके और चिरकाल तीर्थ यात्रातें और विवेकते दुष्ट कर्मका क्षय होते संते परमार्थके विचार करनेमें जीवोंको अकस्मात् बुद्धि प्रवृत्त होती है ॥८६॥ हे रामचंद्रजी! शीत वात आदिक संसारके दुःख जो हैं सो संतजनोंविषें ज्ञानकी युक्ति विना कैसे सहिमें आवते हैं॥८७॥ हे रामचन्द्रजी! दुःखकी चिंता क्षणमें आयकरके अपने अपने समयमें मूढ नरको दाह करती है जैसे अग्निकी ज्वाला तृणको दाह करती है ॥ ८८ ॥ हे रामजी! उत्तम है बुद्धि जिसकी और जानिया है आत्मतत्त्व जिसने भले प्रकार करके ज्ञान दृष्टिवाले पुरुषको संसारकी चिंता दाह

नहीं करती है जैसे वर्षा जिसके ऊपर अखंड होती है ऐसे वनको अग्निकी ज्वाला दाह नहीं करती है ॥८९॥ हे रामजी ! इस कारणतें बुद्धिमान् पुरुषने तत्त्व जाननेको प्रमाण करके कहनेवाला संशयरहित है और बुद्धि जिसकी ऐसा जो तत्त्वज्ञानी सत् पुरुष प्रीति करके पूछने योग्य है ॥ ९० ॥ हे रामजी ! प्रमाण करके युक्त उत्तम है और दया करके युक्त है चित्त जिसका ऐसे सत्य पुरुषको जौनसा अर्थ पूछेआ है तिसके उपदेश वचन करके ग्रहण करने योग्य है जैसे वस्त्र तरके केसरका रंग ग्रहण किया जाता है ॥ ९१ ॥ हे रामजी ! जौनसा प्रमाण करके कहनेवालेके कहनेमें जो पुरुष नहीं स्थित होता है तिसते दूसरा नीच पुरुष कोई नहीं है॥९२॥हे रामजी ! पूर्व वाक्यका पिछले वाक्यका संबंध करनेमें समर्थ बुद्धिवाले प्रति प्रश्नका उत्तर तत्त्वज्ञानी पुरुषने कहने योग्य है पशुसमान जड बुद्धि नीच पुरुषको नहीं कहने योग्य है ॥९३॥ हे रामजी ! जो जो मैं तेरे प्रति कहता हूं सो सो तेरे ग्रहण करने योग्य है और यत्न करके अपने हृदयमें धारण योग्य है और जो तेरेको धारणा करनेकी इच्छा नहीं होवे तो तैंने मेरेको वृथा नहीं पूछना ॥ ९४ ॥ हे रामजी ! मन बहुत चंचल है संसाररूपी वनका वानर है इस मनको यत्न करके सावधान करके परमार्थकी बानी श्रवण करने योग्य है ॥९५॥ हे रामचंद्रजी ! निरंतर सत्पुरुषोंकी संगतिकरके विवेक प्रकट होता है और विवेक कल्पवृक्ष है भोग और मोक्ष यह दोनों विवेकवृक्षके फल हैं ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! मोक्षरूपी मंदिरके चार द्वारपाल हैं वह कौन हैं शम और विचार और संतोष और सत्संग ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! यह चारों यत्न करके सेवने अथवा तीन सेवने अथवा दो सेवने अथवा एक सेवना यह द्वार मोक्षरूपी राजमंदिरके द्वारको उघाड देते हैं ॥ ९८ ॥ हे

रामजी ! अथवा सर्व प्रकार यत्न करके प्राण त्यागको निश्चय करके एक द्वारपालको सेवन एकके वश भये संते चारोंही अपने वश होते हैं॥ ९९॥ हे रामजी ! जौनसे संसारमें दुःख हैं जौनसी तृष्णा है और जौनसी असाध्य व्याधि है और चिंता है शांत भये चित्तोंमें नाशको प्राप्त होती है जैसे सूर्यके मध्यमें अंधकार नष्ट होता है ॥ १०० ॥ हे रामजी ! जैसे उग्र प्राणी और सौम्य प्राणी अपनी माताके दर्शनमें शीतल स्वभाव होते हैं और माताका विश्वास करते हैं तैसे सर्वभूत शांतवृत्ति पुरुषोंमें विश्वासको प्राप्त होते हैं॥ १ ॥ हे रामजी ! ऐसा सुख अमृत पान करके नहीं होता है और लक्ष्मीका आलिंगन करकेभी ऐसा आनंद नहीं होता है जैसा आनंद अंतःकरणकी शांति करके होता है ॥ २॥ हे रामचंद्रजी ! शांतवृत्ति पुरुषको पिशाचभी नहीं द्वेष करता है और राक्षस और दैत्य और शत्रु और व्याघ्र और सर्प शांतिवाले पुरुषसे द्वेष नहीं करते हैं ॥ ३ ॥ हे रामचंद्रजी ! जौनसा पुरुष शुभ अशुभ शब्दको श्रवण करके और कोमल कठोरको स्पर्श करके स्वादवाला स्वादरहित भोजन करके सुंदर और नहीं सुंदररूपको देख करके हर्षको नहीं प्राप्त होता है सो शांतवृत्ति कहिया है ॥४॥ हे रामजी ! जिसका मन मरणसमयमें युद्धसमयमें उत्सव समयमें चंद्रबिंबकी नाईं शीतल है और व्याकुल नहीं है सो पुरुष शांतिवृत्ति कहिया है ॥ ५ ॥ हे रामचंद्रजी ! जिसकी दृष्टि अमृतके प्रवाहके न्यांई सर्व लोकके प्रति प्रीतियुक्त प्रवृत्त होती है सो पुरुष शांतवृत्ति कहिया है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! तपस्वी गणोंसे बहुत ज्ञानवालेविषें यज्ञ करनेवाले विषें राजों विषें और बलवानोंविषें गुणवालों विषें शांतवृत्ति पुरुष महिमा करके विराजमान होता है ॥७॥

हे रामचंद्रजी ! शमरूपी अमृत ऐसा है गुप्तभी नहीं रहिता है यह बडा भारी बल है इसको धारण करके सत्पुरुष लोक परम पदवीको प्राप्त होते भये तिस कारणते तुमभी शांति क्रमको पालन कर तेरेको मोक्षकी प्राप्ति होवेगी ॥ ८ ॥ हे रामचंद्रजी ! विचारतें बुद्धि तीक्ष्ण होती है परमपदको देखती है संसाररूपी दीर्घ रोगकी शांतिवास्ते विचार उत्तम औषध है ॥९॥ हे रामचंद्रजी ! अज्ञानी पुरुषोंको अपने मनके मोह करके संसाररूपी वेताल है सो प्राणोंको हर लेता है जैसे रात्रिमें आकाशमें देखिया वेताल प्राण हर लेता है यह संसाररूपी वेताल विचार करके लीन होता है॥१०॥ हे रामजी ! जगत्के सबही भाव अविचार करके सुंदर हैं और असत्य हैं सो विचार करके नष्ट होता है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! पुरुषके अपने मनके मोह करके कल्पित किया है संसाररूपी चिरकालका वेताल है बहुत दुःखको देनेहारा है सो विचार करके लीन होता है ॥ १२ ॥ हे रामजी ! मनमें ऐसा ज्ञान जो होवै मैं कौन हौं यह संसार दोष कैसे प्राप्त भये हैं ऐसे ज्ञानको विचार कहते हैं ॥१३॥ हे रामचंद्रजी ! ऐसा विचार करने योग्य है मैं कौन हूँ यह संसार किसका है बुद्धिमान् पुरुष आपदामेंभी यत्न करके आपही उपायसहित चिंता न करने योग्य है ॥ १४ ॥ हे रामचंद्रजी ! विचारूपी नेत्र बहुत अंधकारमें नष्ट नहीं होता है बहुत तेजों विषें बढता नहीं है अंतराल भये संतेभी देखता है यह विचार उत्तम नेत्र है ॥१५॥ हे रामचंद्रजी ! कीचडमें मीडक होना चंगा है मलमें कीडा होना चंगा है अंधेरी गुहामें सर्प होना चंगा है विचाररहित होना चंगा नहीं है॥१६॥ हे रामचंद्रजी ! यह विचार दृष्टि शांत वृत्तिवाले तुमकोभी शोभित कर कैसी है पृथ्वीमें कर्मोंकी सफलताको करती है उत्तमताको निश्चय करके प्रकट करती है अखंड स्वरूप परमात्मा-

का दर्शन करनेहारी है ॥१७॥ हे रामचंद्रजी ! संतोष परम कल्याण करता है और संतोष परम सुख है संतोषवाला पुरुष परम विश्रामको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ हे रामचंद्रजी ! जौनसे संतोषरूपी अमृत पान करके तृप्त भये हैं और शांतवृत्ति भये हैं तिन्हको यह भोगोंकी संपदा विषरूपी भासती है ॥ १९ ॥ जौनसा नहीं प्राप्त भयेमें वांछासे रहित है प्राप्त भयेमें प्रसन्न रहित है खेद भयेतें जिसको खेद नहीं देखेआ है सो यह लोकमें संतुष्ट किया है॥२०॥ हे रामचंद्रजी ! आशाकी विवशता करके चित्त जिसका व्याकुल भया है संतोषसे रहित है ऐसे चित्तमें ज्ञानका प्रतिबिंब नहीं होता है जैसे मलीन शीशेमें मुखका प्रतिबिंब नहीं होता है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! संतोष करके तिन्ह पुरुषोंके मन पुष्ट भये हैं तिन्हको संपूर्ण संपदा आपही प्राप्त होती है जैसे चाकर राजाकी आपही सेवा करते हैं ॥ २२ ॥ हे रामजी ! सुखदुःखमें संतोष करके समदृष्टि करके शोभायमान है सो पुरुषोंमें राजा है तिसको आकाशमें चलनेवाले देवता और मुनि प्रणाम करते हैं ॥२३ ॥ हे रामजी ! हे महाबुद्धे ! सत्संग जो है सो संसारके तरनेमें पुरुषोंको विशेष करके सर्वत्र उपकार करता है ॥ २४ ॥ हे रामजी ! सत्संग होनेसे शून्यता गुणों करके पूर्णता होती है और मृत्यु महा उत्सवरूप होता है और आपदा संपदारूप होती है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! जौनसा पुरुष सत्संगरूपी गंगा करके स्नान करता है, कैसी है गंगाजी शीतल है और आनंदके करनेहारी है और निर्मल है और पवित्र करनेहारी है तिस पुरुषको दान करके और तीर्थों करके तप करने करके और यज्ञ करने करके क्या अर्थ है॥२६॥हे रामचंद्रजी ! यह जगत्में सबतें साधुजनका समागम भले प्रकार करके उत्तम है और कैसा है आपदारूप कमलनी सुखावनेको बर्फरूप है

मोहरूपी धूरको उडावनेको पवनरूपी है तिसते सत्संग साधुजनोंका सबते अधिकही उत्तम है ॥२७॥ हे रामजी ! साधुजन कैसे होते हैं जिन्हकी संशयरूपी ग्रंथि सब छिन्न भई हैं वह आत्माके स्वरूपको जाननेहारे हैं और सर्व जनों करके मान्य हैं और प्रकार करके सेवने योग्य हैं और संसारसमुद्रके तरनेको उपायभूत हैं ॥ २८॥ हे रामचंद्रजी! सो पुरुष नरकरूपी अग्निकी सूकीसमिधा बने हैं जिन्ह पुरुषोंने नरकरूपी अग्निको शांत करनेको बादलरूपी संतजनका आदर कर सेवा नहीं करी है ॥२९॥ हे रामजी ! संतोष और सज्जनोंका समागम और विचार और शम यह चारसंसारसमुद्र तरनेके लिये उपाय हैं॥३०॥ हे रामजी! संतोष परम लाभ है और सत्संग परम गति है और विचार परम ज्ञानहै और शम परमसुखहै॥३१॥ हे रामजी! यह चार संसारके भेदनेके लिये उपाय हैं जिन्ह पुरुषोंने यह चारों सेवे हैं सो पुरुष मोहजालके संसारसमुद्रसे तरे हैं॥ ३२॥ हे रामजी! यह चारोंमें निर्मल उदयवाले एकका अभ्यासकिये संते चारोंही बुद्धिमान् पुरुषको सबही अभ्यास हो जाते हैं ॥३३॥ हे रामजी ! तुम यह चार उपायकी अखंड संपदायुक्त हो तिसकारणतें मनके मोहको हरनेहारा मेरे कहे हुए इसवचनकाश्रवणकरो॥३४॥ हे रामजी !जिसका पुण्यरूपी कल्पवृक्ष फल देनेकोतैयारभयाहोय तो तिस जीवको मुक्ति लिये ऐसा वचन श्रवणकरनेकोउद्यतहोता है॥३५॥हे रामजी ! पवित्र वचनोंका पात्र उत्तम पुरुष होता है कैसे हैं वचन उदार हैं श्रवण करनेहारेको ज्ञान देनेहारा है और नीच पुरुष उत्तम वचन श्रवण करनेका पात्र नहीं होता है ॥ ३६ ॥ हे रामजी !यह मोक्षोपाय नाम संहिता साररूपीअर्थकी मैंने रचना करी है और ३२००० श्लोक इसका परिमाण है जाननेहारेको निर्वाण सुखको देती है॥३७॥हे रामजी!जैसे जिस पुरुषकी निद्रा दूर भई है तिसपुरुषको प्रकाशकी इच्छा नहीं हैतोभी दीपकप्रज्वलित भये संते

स्वभाव करके प्रकाश होताहै तैसेही इस संहिताके अभ्यास करनेहारा पुरुष निर्वाण सुखकी इच्छा नहींभी करे तौभी इस संहिता करके निर्वाण सुख स्वभावतें होता है ॥३८॥ हे रामजी ! इस संहितामें युक्ति करके युक्त दृष्टांतोंकरके सार अर्थ करके युक्त वाक्य भिन्न भिन्नरचना किये हैं और इसमें प्रकरण छःकिये हैं॥३९॥हे रामजी!इसमें प्रथम वैराग्य प्रकरण है जिस करके वैराग्य बढता है कैसे जैसे जलका सिंचन करनेसे निर्जल देशके वृक्षोंकोभी पत्रादिक होते हैं ॥४०॥ हे रामजी!वैराग्य प्रकरणका एक हजार पंचशत १५०० श्लोकपरिमाणहै जिसके विचार करने करके हृदयमें ज्ञान प्रकाशमान होता है जैसे शाणमें घसी भई मणी प्रकाशमान होती है ॥४१॥हे रामजी ! दूसरा मुमुक्षुव्यवहार प्रकरण है जिसका एक सहस्र १००० श्लोक परिमाण है युक्तिवाले ग्रंथ करके सुंदर है जिसमें मोक्ष चाहनेवाले मनुष्योंका स्वभाव वर्णन किया है ॥४२॥ हे रामजी ! इसतें उपरांत उत्पत्ति प्रकरण तीसरा किया है जिसका प्रमाण सातहजार श्लोक किया है विज्ञानको करनेहारा जिसमें जगत्में देखनेसे पुरुष देखने योग्य है पदार्थोंकी संपदा वर्णन करी है जिसमें हम और तुम और इतर पुरुष यह नामरूपका भेद बना है॥४३॥हे रामजी ! यह जगत्की संपदा कैसी है और उत्पन्न नहीं जैसी उदयको प्राप्त भई कहता है ॥४४॥हे रामजी!उत्पत्ति प्रकरणको श्रवण किये संते श्रवण करनेहारा संपूर्ण जगत्को अपने हृदयमें जान लेता है॥४५॥हे रामजी!जगत् कैसा है हम तुम ऐसे भेद करके सहितही विस्तारको प्राप्त भया है अनेक लोक आकाश पर्वतों करके युक्त है सामग्रीका समूहके पिंडसे रहित है जैसे घडा मृत्तिकाके पिंडका प्रत्यक्ष बनता है तैसे नहीं उत्पन्न भया है जैसे पृथिवी आदिमें पर्वतादि मर्यादा होती है तैसे इसमें पर्वतादि मर्यादा नहीं है यह निर्मर्याद है॥४६॥ पृथिवी आदि भूतोंकी रचनासे रहित है और पृथिवी

आदिकोंका नाश भयेभी नष्ट नहीं होता है जैसे मनके संकल्पमें नगर मिथ्या फुरण होता है॥४७॥हे रामजी ! फेर कैसा है जगत् स्वप्नमें देखे पदार्थोंकी न्यांई भासता है मनोरथोंकी न्यांई विस्तारको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! फेर कैसा है सत्य पदार्थोंकी शून्यता देखनेसे गंधर्व नगरकी न्यांई भासता है एक चंद्रमामें दो चंद्रमाकी भ्रांतिकी न्यांई भासता है रेतीमें सूर्यकी किरणोंसे चमकती भई जलकी भ्रांति जैसा है॥४९॥हे रामजी ! फेर कैसा है बेडीके चलनेसे पर्वतके चलनेकी भ्रांति जैसा है सत्य लाभसे रहित है चित्तकी भ्रांतिसे पिशाच दर्शनकी भ्रांति जैसी है और बीजसे रहित है तोभी भासता है ॥ ५० ॥ हे रामजी ! फेर कैसा है जगत् कथाके अर्थके आभासकी न्यांई है और आकाशमें मुक्तामणिके आभास सरीखा है जैसे सुवर्णमें भूषणकी कल्पना होती है तिसके तुल्य है और जलमें तरंगोंकी कल्पना जैसा है ॥५१॥ हे रामजी ! जैसे आकाशमें नील रंगकी कल्पना असत्य होती है तैसे कल्पनामात्र है जैसे स्वप्नमें अथवा आकाशमें चित्तकी कल्पनाका फुरणा है और कैसा है चित्र आश्रय रहित है फुरणे मात्र सुंदर है। फेर कैसा है कर्त्तासे रहित है और चिरकालतक भासता है ॥५२॥ फेर वह कैसा है जगत् चित्रमें लिखे आखेआ जो अग्नि है सो दीहसे और प्रकाशते रहित है तोभी अग्निका नाम रूपको धारता है तैसे यह असत्यरूप है तौभी जगत्के नाम शब्दको रूपको और अर्थको धारता है ॥ ५३॥ हे रामजी ! फेर कैसा है जगत् तरंगोंमें नील कमलोंकी आभा जैसा देखिया है जैसे नृत्यशालामें नृत्य विलास दृश्यमान होता है और तिसके समान क्षणमात्र पुराना रूप है ॥५४॥ हे रामजी ! शांत भया है अज्ञानरूपी अंधकार जिससे ऐसा अज्ञानरूपी शरदका आकाश है। फेर कैसा है स्तंभमें पुतली सरीखा चित्रित किया है चित्त-

रूपी दिवालमें उदय भया है मानो कीचडते रचना किया है और चैतन्यता युक्तभी है और अचेतनभी है ऐसा जगत् उत्पत्ति प्रकरणमें वर्णित किया है ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! तिसते उपरांत चौथा स्थितिप्रकरण कल्पित किया है और उस ग्रन्थके श्लोकोंका तीन हजार परिमाण है और उसमें अनेक दृष्टांत कथा संयुक्त हैं ॥ ५६ ॥ हे रामचंद्रजी ! यह जगत् इस प्रकारके अहंभावकी स्थितिको प्राप्त भया है और देखनेहारा पुरुष देखने योग्य पदार्थोंका क्रम करके वृद्ध भया है यह इसमें वार्णित किया है ॥ ५७॥ हे रामजी ! और यह जगद्रूपी महावृक्ष दशदिशाका मंडलमें प्रकाशमान है इस प्रकार करके वृद्धिको प्राप्त भया है और इस स्थितिप्रकरणमें वर्णित किया है ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! तिसते उपरांत पंचम उपशांतिप्रकरण कहिआ है उसके श्लोकोंका परिमाण पांच हजार ५००० हैं और युक्ति विस्तारकरके सुन्दर है यह जगत् है और यह हम हैं यह तुम हो सो पुरुष है ऐसी जो जगत्की भ्रांति उदय भई है सो इस प्रकार करके शांत होती है और उपशांति प्रकरणमें श्लोकोंका संग्रह करके कहता है ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्ति क्रम करके भ्रांति क्षीण भई है तौभी सत्ताके लेश करके शेष रहती है जैसे चित्रमें लिखने मात्र स्वरूपकरके शेष रहती है ॥६०॥ हे रामजी ! सो भ्रांति विरोधवाले अंशकरके शांत होती है परंतु तो भी विरोधरहित शांत अंश करके शेष रहती है तिसमें तुम्हारेको नव दृष्टांत कहते हैं ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! उपशम होने संत ज्ञानी पुरुषको अज्ञानकी सप्त भूमिकाका जय करते जैसे जैसे भूमिकाका क्रम करके जय होता जाता है तैसे तैसे भ्रांति शांत होती है अंशकरके शेष रहती है सोभी शांति होती जाती है पहिले संस्कारमात्र लक्षित होती है फेर अलक्षित रूप संस्कारमात्र शेष रहती है सप्तमी भूमिकामें निःशेष नष्ट होती है तो

जीवन्मुक्ति और निर्वाणकी प्राप्ति होती है इसमें दृष्टांत है ॥६२॥ हे रामजी! किसी पुरुषको संकल्पमें नगरी फुरी है और तिसके पास दूसरे पुरुषको स्वप्नमें नगरी दृश्यमान भई है फेर नगरीमें युद्धका कोलाहल शब्द भया फेर धन संपदा प्राप्त भई तिस नगरीकी शोभा स्वप्न देखनेवालेको प्रत्यक्ष दृश्य है संकल्पवालेको किंचिन्मात्र दृश्य है और संकल्प शांत भये संते स्वप्न नष्ट भये संते जैसे सो नगरीकी शोभा शांत होती है तैसेही जगत्की भ्रांति शांत होती है ॥६३॥ हे रामजी! जैसे संकल्पकरके मतवाले हाथीकी न्यांई भारी बादल कल्पना किया है उसका गर्जनाभी कल्पना करी है और संकल्प शांत भये संते बादलभी गर्जना शब्दभी शांत होता है तैसे उपशांति करके भ्रांति शांत होती है जैसे स्वप्न करके नगर कल्पना किया है संकल्प शांत भये संते नगरकी कल्पना शांत होती है तैसे भ्रांति शांत होती है ॥ ६४ ॥ हे रामजी! आगे होना जो नगर तिसमें जो बगीचा और तिसमें जो प्रकट भई वंध्या स्त्री तिसके अंगसे उत्पन्न भई कन्या तिसकी जिह्वा करके कहिआ आगे होनेवाली कथाका अर्थ अनुभवके तुल्य ऐसी जो जगत्की भ्रांति सो शांत होती है ॥ ६५ ॥ हे रामजी! नहीं लिखिया ऐसा जो चित्र तिसका चित्र करनेका विस्तार दिवाल विना स्थान होई यह सब असंभवित है और तैसे भ्रांति शांत होती है जिसकी रचना विस्मृत होय गई है ऐसा जो नगर जैसे संभावनामें नहीं होय तैसे भ्रांति शांत होती है ॥ ६६ ॥ हे रामजी! सर्व ऋतु करके सर्व कालमें होनेसे पुष्प फलोंवाले वृक्षों करके संयुक्त और जिसकी उत्पत्ति नहीं है और ऐसा जो बना है तिसका स्वरूप जैसे देखनेमें संभावनामें नहीं आवे तैसे भ्रांति शांत होती है और आगे होना जो पुष्पवाले वृक्षोंका वन तिसका स्वरूप करके बनी जो वसंत ऋतुकी

रचना सो जैसे मिथ्या होती है तैसे भ्रांति शांत होती है ॥६७॥ हे रामजी ! अंदरमें लीन होय गया है तरंगोंका समूह जिसका ऐसी शांत भई जो नदी तिसके समान जगत्की भ्रांति शांत होती है सो उपशम प्रकरणमें कही है ॥ ६८॥ हे रामजी! तिसते उपरांत निर्वाण प्रकरण छठा कहिआ है और शेषग्रंथ १४५०० चौदह हजार पंचशत प्रमाण श्लोक हैं और जिसके ज्ञानका महा अर्थ जो मोक्ष है तिसको देनेवाला है ॥ ६९॥ तिसको जाने संते महाकल्याण होता है और निर्वाण शांतिका आनंद प्राप्त होता है जिसते यह पुरुष पूर्णात्माही होता है जिस निर्वाण प्रकरणको जान करके यह पुरुष और करके चेताया नहीं जाता है ऐसा चैतन्य स्वरूप होता है और स्वयंप्रकाश होता है ज्ञानस्वरूप होता है और निर्विकार होता है और आकाशकी न्यांई निर्मल होता जिस पुरुषको संपूर्ण जगत्के भ्रम शांत होते हैं ॥७०॥ हे रामजी ! तिस पुरुषका जगत्में आवना जाना शांत होता है और कृतकृत्य होकर स्थित होता है और संपूर्ण जगत्की रचनाको चूरण करनेको वज्रके स्तंभकी न्यांई लय करनेवाला होता है और आकाशकी न्यांई असंग होता है ॥७१॥ हे रामजी ! तिस पुरुषके अंतःकरणमें संपूर्ण जगत्की रचनाका जाल अनेक प्रकारकी संख्याके प्रमाण सहित लीन होता है सो पुरुष अपने स्वरूपमेंही अत्यंत तृप्त होता है॥७२॥हे रामजी ! तिस पुरुषको कार्य कारणका भेदज्ञान नहीं होता है और कर्त्ताकी कर्मकी ज्ञानदृष्टि नहीं होती है और ग्रहणका करना और त्यागना यह दृष्टिभी नहीं होती है ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! सो पुरुष फेर कैसा होता है और देह करके युक्त है तौभी देहके अभिमानसे रहित होता है और संसारमें वर्त्तमान है तौभी संसारके बंधनसे रहित होता है और चैतन्य स्वरूप है तौभी जिस पुरुषके उदरमें

बहुत पत्थर भरे होय और अत्यंत स्थूल होय अपने देहके चलनेकी सामर्थ्य जिसको नहीं होवे तिस पुरुषकी न्याईं संसार कर्मोंकी चेष्टासे रहित होता है ॥७४॥ हे रामजी ! तिस पुरुषको संसारकी दुष्ट लीला प्रतिबंध हो जाती है और आशारूपी विषूचिका रोग क्षीण होता है और अहंकाररूपी वेताल नष्ट होता है और देहधारी है तौभी देहके धर्मसे रहित होता है ॥७५॥ हे रामजी ! तिस पुरुषके एक रोमके अग्रभागमें यह संपूर्ण जगत्की संपदा सूक्ष्मरूप स्थित होती है और जैसे सुमेरु पर्वत लक्ष योजन है तिसमें भ्रमरी सूक्ष्मरूप करके दृष्ट होती है ॥७६॥ हे रामजी ! सो पुरुष स्वरूप करके परमाणुके भी परमाणुसे सूक्ष्मरूप होता है और जिसके चैतन्य स्वरूप आकाशमें हजारों जगतकी लक्ष्मियां दृष्ट होती हैं और अपने स्वरूपमें धारण करके अपने स्वरूपमें देखता है ॥ ७७ ॥ हे रामजी ! यह हमारा कहिया वेदांतशास्त्र सुखवाला बोध करनेवाला है और अलंकार करके शोभायुक्त है और उत्तम काव्य है शांतिरस शृंगार आदि रसोंकरके युक्त है, अत्यंत सुंदर दृष्टांतों करके हमने सिद्ध किया है ॥ ७८ ॥ हे रामजी ! यह शास्त्र कैसा है थोडे पद पदार्थोंके ज्ञान करकेभी आपही सुखसे बोधको प्राप्त कर देता है जो पुरुष इसके अर्थको आप नहीं जाने तिस पुरुषने इसका श्रवण वेदांत शास्त्रोंको जाननेहारे पंडितसे श्रवण करने योग्य है ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! यह शास्त्र कैसा है तिसको श्रवण किये संते माने संते और जाने संते मोक्षकी प्राप्ति निमित्त तप और ध्यान और जपादिक कोईभी योग्यताको प्राप्त नहीं होता है, केवल इसके श्रवण मनन किये संते मोक्षकी प्राप्ति निश्चय करके होती है ॥ ८० ॥ हे रामजी ! इस शास्त्रके दृढ अभ्यास करनेसे बार बार विचार करनेसे अपूर्व पंडिताई होती है और चित्तमें संस्कार सहित ज्ञान होता है ॥८१॥ हे रामजी ! इस शास्त्र

करके दीनता और दरिद्रतासे लेकर दोष दृष्टि जो है विघ्नोंके करने-वाली है तौभी मुमुक्षु पुरुषके मरनेको वेध नहीं करती है जैसे कवच-धारण करनेवाले पुरुषको बाण वेध नहीं करते हैं ॥८२॥ हे रामजी ! संसारकी भय करनेवाली भीति जो है सो अपने सन्मुख आये प्राप्त भयेकोभी हृदयमें खेद नहीं करती है जैसे आगे स्थित भये पर्व-तको बाण जलधारा भेद नहीं कर सकती है॥८३॥ हे रामजी ! इस शास्त्रका श्रवण करनेसे पुरुषको समुद्रकी न्याईं गंभीरता होती है और सुमेरु पर्वतकी न्याईं स्थिरता होती है और चंद्रमाकी न्याईं अंतःकरणमें शीतलता होती है ॥ ८४ ॥ हे रामजी ! जैसे चित्रमें लिखिया सर्प देखनेवालेको भय नहीं देता है तैसे शास्त्रविचार कर-नेवाले पुरुषको प्रत्यक्ष देखा संसाररूपी सर्पभी भयको नहीं देता ॥ ८५ ॥ हे रामजी ! पुष्पके सूंघनेमें देर होती है इस शास्त्रके विचार करनेवालेको आत्माकी प्राप्तिमें देर नहीं होती है ॥८६॥ हे रामजी ! पुष्पके पत्रको तोडनेमें कुछ अंगोंकरके खेद करने बनता है इस शास्त्रके विचार करनेवालेको परमात्माकी प्राप्तिमें खेद नहीं करने बनता है ॥ ८७ ॥ हे रामजी ! इस शास्त्रका विचार करनेवाला पुरुष सुखकरके आसनमें बैठे पद्मासनादि आसनका नियमके बंधनसे रहित होता है और अपनी इच्छा करने विना दैव-योगकरके जो मिले तिसको भोजन करे तिस पुरुषको तप और व्रतादिकोंका नियम कोई नहीं होता है और भोगभी आचारसे सेवे तो विरुद्धकर्मोंका त्याग आपही हो जाता है ॥ ८८ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष जैसा मिले तैसा सत्संग करे इस शास्त्रको अथवा और वेदांतशास्त्रको श्रवण करे विचारणा करे तिस पुरुषको ज्ञानकरके महाबोध होता है जिस करके संसारकी शांति होती है, जिस करके माताके गर्भके यंत्रकी पीडाको

नहीं प्राप्त होता है ॥८९॥ हे रामजी ! जौनसे पुरुष ऐसे सुखवाले मोक्षको उपायमेंभी भयको प्राप्त होते हैं और पापकरके भोगरसोंमें आसक्त भये हैं सो पुरुष माताके मलमें कीडा होते हैं जिन्हका नाम मुखसे उच्चारण नहीं करना सो पुरुष नीच हैं॥९०॥ हे रामजी!यह पुरुष अपने कल्याणके वास्ते पहिले सत्संग करके युक्ति करके अपनी बुद्धिको सुधारे तिसते उपरांत महात्मा पुरुषोंके लक्षणोंकरके महात्मा पुरुषोंकी वृत्तिको धारण करे॥९१॥ हे रामजी!शम और दम इत्यादि महा पुरुषोंके लक्षण हैं सो भले प्रकार कर ज्ञान विना सिद्ध नहीं होते हैं॥९२॥ हे रामजी! ज्ञानमें शमादि गुण होते हैं शमादि गुणोंसे ज्ञान होता है और ज्ञान और शमादि गुण आपसमें शोभाको प्राप्त होते हैं जैसे कमल और सरोवर आपसमें शोभित होते हैं॥९३॥ हे रामजी ! सत्पुरुषोंके आचारसे ज्ञान बढता है और ज्ञान करके सत्पुरुषोंका आचार बढता है ज्ञान और सत्पुरुषोंका आचार दोनों मिलकरके आपसमें बढते हैं ॥९४॥ हे रामजी ! मैंने यह दोनोंही समान सेवे हैं इन दोनोंमें एक विना दूसरा सिद्ध नहीं होता है ॥९५॥ हे रामजी ! जसे कोई स्त्री अपने खेतसे पशु और पक्षियाको दूर निकालतीहै और गीत गायन करती है और गीतके आनंदमें प्रीतिवाली है और पशुओंको दूर करने साथही गीताका आनंद करती है तैसे चतुर पुरुषने ज्ञान करके सत्पुरुषोंके आचारकरके आत्मपदकी प्राप्ति सिद्ध किया है ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! जिसने आत्मस्वरूप जानिया है सो आपही अवश्य होयकर परमपदको प्राप्त होता है जो इस पुरुषने मनकी सावधानता करके उत्तम अखंड वस्तु जानिया है सो वस्तु ज्ञानके वशतें दूर नहीं होता है ॥ ९७ ॥

इति श्रीवासिष्ठसारे मोक्षोपाये मुमुक्षूव्यवहारप्रकरणं द्वितीयं समाप्तम् ॥ २ ॥

॥ श्रीः ॥

वासिष्ठसार ।

अथ उत्पत्तिप्रकरणम् ।

तृतीय प्रकरणमें–

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति जगतकी उत्पत्ति कहते भये । जगत् और जीव उत्पत्ति और प्रलय यह सब अज्ञानसे कल्पना मात्र भासता है स्वप्नकी नाईं मिथ्या ही प्रतीत होता है और ज्ञान भये संते सबही एक अद्वितीय आत्मस्वरूप ब्रह्महीभासता है इस अर्थको श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीको पहिले संक्षेप करके श्रवण करावते हैं॥१॥हे रामजी!ब्रह्महो तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्योंका विचारसे भई एक अखंडाकारवृत्ति करके वृद्ध भये आत्मप्रकाशों करके अपने तत्त्वको साक्षात्कार करके आपही वास्तव नित्यमुक्त पूर्ण स्वरूप करके भासता है, अपनी मुक्तिमें महावाक्यविचारसे भई एकाग्रवृत्ति विना और उपायकी इच्छा नहीं करता है सो कैसे जिस कारणते यह देह इंद्रिय आदि कार्यरूप करके आकाशादि कारणरूप करके दृश्यमान बंधरूप जो विश्व है सो जीवरूपी ब्रह्मविषे ही स्वप्नकी नांई प्रकट भया भासता है स्वप्नकी बंधनकी निवृत्ति जाग्रत होनेसे अन्य उपायको नहीं चाहती है तैसेही आत्मस्वरूपका अज्ञान करके ब्रह्मही स्वप्नकी नाईं जीवरूपकरके संसारबंधको प्राप्त भया है सो महावाक्य विचारते आत्मस्वरूपका ज्ञान विना अपना बंध दूर करनेको और उपायको नहीं चाहता है जो कोई हमारे जैसे अधिकारी हैं सोभी ब्रह्मरूप हैं ब्रह्मसेही प्रकट भये और वेदांतवाक्योंका श्रवण मनन निदिध्यासन करके ब्रह्मको जानता है सो अहंब्रह्म इस प्रकारसे जीवताहीनित्य

शुद्ध बुद्ध परिपूर्ण अद्वितीय नित्यमुक्त परब्रह्म होता है॥२॥ हे रामजी! मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणसे उपरांत अब तेरे प्रति उत्पत्ति प्रकरण हम कहते हैं और तिसको तुम सावधान होयकर श्रवण करो ॥३॥ हे रामजी ! यह संसारबंध दृश्य पदार्थकी सत्य भावनासे होताहै दृश्य पदार्थकी असत्य भावनासे नहीं होता है, जिस प्रकारकरके दृश्य पदार्थकी सत्य भावना नहीं होवै तिसको तुम क्रमसे श्रवण करो ॥४॥ हे रामजी ! जौनसा यह स्थावर जंगम संपूर्ण जगत् दृश्यमान है सो जैसे सुषुप्ति अवस्थामें स्वप्नालीन होता है तैसे कल्पके अंतकालमें प्रलयको प्राप्त होता है ॥५॥ हे रामजी ! प्रलयते उपरांत किंचित् सत्तामात्र वस्तुवोंकी शेष रहती है निश्चल है और गंभीर है,ना तो वह तेज है और ना वह अंधकार है सर्वत्र एकरूपी व्याप्त है, जिसका रूप नहीं है सो केवल सत्तामात्र ब्रह्म है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! सो अविनाशी है आत्मा है और परब्रह्म है और सत्यहै इत्यादि नाम तिसके पंडितोंने व्यवहारवास्ते कल्पना किये हैं ॥७॥ हे रामजी ! सो अद्वितीय सत्ता मात्र परमात्माने एक हों ऐसे फुरनेको प्राप्त होता है तो तुच्छरूप जीवभावको प्राप्त होता है ॥८॥ हे रामजी ! तिसते सो जीवशब्दके अर्थकी कल्पना करके व्याकुलभावको प्राप्त होता तो मनकी कल्पनाकरके युक्तरूप होता है तो मनन व्यापारको प्राप्त होता है ॥९॥ हेरामजी ! तिस मनन व्यापारके फुरनेसे तिस परमात्मासे मन प्रकट होता है कैसा है परमात्मा निश्चल है और मन कैसा है चंचलरूप है परमात्मासे मन कैसे प्रकट होता है जैसे समुद्रसे तरंग प्रकट होता है और समुद्र अचल है तरंग उसके चंचल हैं ॥१०॥ हे रामजी! सो मन स्वतंत्र होय करके शीघ्रही संकल्प करता है तो संकल्पकरके ही इस प्रकारकी जगद्रूप इंद्रजालकी संपदा विस्तारकरके विस्तारण कर दिया

है ॥११॥ हे रामजी ! जैसे भूषण शब्दका अर्थ सुवर्णसे भिन्न नहीं होता है और सुवर्ण शब्द भूषणसे भिन्न नहीं दृष्ट होता है तैसेही जगत् शब्दका अर्थ परमात्माविषें भिन्न दृष्ट नहीं होता है॥१२॥ हे रामचंद्रजी ! जगद्रूपी इंद्रजालकी लक्ष्मी मनकरकेही विस्तारको प्राप्त कर दिया है वह कैसी है सत्य नहीं है और असत्यभी नहीं है प्रत्यक्ष देखनेसे सत्य है और नाश होनेकरके असत्य है जैसी नदी करके लहरी चलती है ॥१३॥ हे रामजी ! सो मनसे विस्तारको प्राप्त भई जगत् नाम इंद्रजालकी लक्ष्मी है तिसका नाम अविद्या है संसार नाम है और बंधनभी नाम है और मायाभी नाम है और मोहभी नाम है महा अंधकार इत्यादि नाम तिसके सर्व शास्त्रवेत्ता पंडितोंने कल्पना किये हैं॥१४॥हे रामजी ! द्रष्टा आत्मा है और दृश्य जगत्है इन्हका आपसमें संबंध जो है सो बंधन कहिया है सो आत्मा दृश्यकी सत्ता होनेसे बद्ध भया है दृश्यपदार्थका अभाव भये संते मुक्त होता है॥१५॥ हे रामजी ! जगत् है तुम हो सम इत्यादि कथन मात्र दृश्य है और मिथ्याही किया है जबलग यह सत्य भासता है तबलग मोक्ष नहीं होता है॥१६॥हे रामजी ! यह जगत् दृश्यरूप करके सत्य होवे तो किसीकोभी शांत नहीं होवे जिस कारणसे असत्य पदार्थकी सत्ता नहीं होती है और सत्य पदार्थका अभाव नहीं होता है॥१७॥ हे रामजी ! तिससे यह जगत् दृश्य है असत्य है कोई कहे मैंने जानिया है और तपकरके और ध्यान करके और जपकरके त्यागिया है-ऐसे जो कहिना है सो कांजी करके तृप्त होनेकी न्यांई मिथ्या और जैसे कांजी करके तृप्ति बल नहीं होती है तैसे तपादिकों करके दृश्यका त्याग नहीं होता है ॥१८॥ हे रामजी ! जबलग दृश्य भासता है तबलग परमाणुके भी अंदर चैतन्यरूपी दर्पणमें प्रतिबिंबित होता है जो कोई समाधि

चढावता है वह कहता है मैंने दृश्य दूर किया है और मैं अब समाधिमें स्थित हौं.हे रामचंद्रजी ! इसका यही बीज है जो समाधिमें संसारकी स्मृति होनी तिसते समाधिमेंभी दृश्य दूर नहीं होता है ॥ १९ ॥ हे रामजी ! तिस दृश्यका फुरना होत संते निर्विकल्प समाधि करके भी अखण्ड दृश्य पदार्थका सुषुप्ति जैसे लय नहीं होता है और तुरीयपद भी नहीं प्राप्त होता है॥२०॥हे रामजी ! जो दृश्य पदार्थ मनसे शांत होवे तो समाधि करके क्या है और समाधिसे उपरांत फेर दृश्य पदार्थका दुःख होवे तो क्षणमात्र समाधिमें शांत भयेतें क्या सुख है ? ॥ २१ ॥ हे रामजी ! देखनेवाले जो समाधि करके अपने आप जड होय करके बल करके दृश्यकी शांतिको देखता है तोभी क्या सुख है ? और समाधि उपरांत दृश्याकार उदय होता है ॥२२॥ हे रामजी ! तिससे यह दृश्य मनको शांति विना शांत नहीं होता है और तप करके ध्यान करके जप करके शांत होवेगा यह अज्ञानी पुरुषोंकी कल्पना है ॥२३॥ हे रामजी ! यह आकाशज विप्रका कथानक मैं तुम्हारे प्रति कहता हूं वह कैसा है श्रवण करनेमें भूषण है जिस करके उत्पत्ति प्रकरणका भली तरहसे बोध होता है ॥२४॥ हे रामजी ! एक आकाशज नामा ब्राह्मण होता भया. चिरंजीवी होता भया और ध्यानमें निष्ठा करता भया. तिसके मारनेको मृत्यु अग्नि मंडलको भेद करके जाता भया परंतु तिस ब्राह्मणके मारनेको असमर्थ होता भया, तब मृत्यु अपनी असमर्थताको यमको पूछता भया ॥२५॥ तब यम मृत्युको कहता है, हे मृत्यो ! तू अकेला इस आकाशज ब्राह्मणके मारनेको समर्थ नहीं है जौनसा तैंने मारना है कि ये कर्मही इसको मारनेहारे हैं और तैंने अवश्य मारनेवाले तो यत्न करके इसके कर्मोंको ढूंढ कर्मोंकी सहायता करके तू इसको मारेगा ॥२६॥ तिससे उपरांत मृत्यु आकाशज विप्रके कर्म ढूंढता

भया. तिसके कर्मोंको नहीं प्राप्त होता भया, तब आइ करके धर्मराजको पूंछता भया ॥२७॥ हे धर्मराज ! आकाशज विप्रके कर्म कहां स्थित हैं ? मृत्युका प्रश्न सुन करके धर्मराजा चिंतन करके वचन कहता भया ॥२८॥ हे मृत्यो ! आकाशज विप्रके कर्म कोई नहीं हैं यह आकाशज विप्रके बल अद्वितीय आकाशसे प्रकट भया है ॥ २९ ॥ तिसते जौनसा केवल आकाशसे भया है तो केवल निर्मल आकाशरूप है इसके सहचारी कर्मभी कोई नहीं हैं ॥ ३० ॥ इसके पीछेके कर्म भी नहीं हैं, अब भी कर्म नहीं करता है, यह क्या है कौन है ? केवल ज्ञानरूप है ॥ ३१ ॥ जौनसी इसकी प्राणक्रिया हमसरीखे करके लक्षित होती है सो केवल सत्तामात्र है इसको कर्मकी बुद्धि मात्रभी नहीं है ॥ ३२ ॥ जिसते यह केवल आकाशसे भया है ज्ञानस्वरूप है सत्तामात्र है तिससे पृथिवी आदिकोंते इसका संभव कहां होता है तिससे हे मृत्यो ! तू इसके मारनेमें यत्न मत कर ॥ ३३ ॥ आकाश ग्रहण करनेको कदापि युक्त नहीं होता है तिससे तू यत्नको त्याग कर इतना सुनकर मृत्यु विस्मयको प्राप्त भया तब अपने स्थानको जाता भया ॥ ३४ ॥

श्रीरामजीका प्रश्न ॥ हे गुरुजी ! सो आकाश विप्र तुमने मेरे प्रति आदिदेव ब्रह्मही कह्या है यह कैसा है ? सर्व लोकको रचना करनेवाला है और स्वयंप्रकाश है और जन्मसे रहित है और एक स्वरूप है बुद्धिको प्रेरणा करनेवाला है यह मेरी बुद्धि कहती है॥३५॥

श्रीवासिष्ठजीका वचन ॥ हे रामजी ! जो तुमको निश्चय भया है सो तैसेही है मैंने तेरे प्रति ब्रह्मही कह्या है,इसको ग्रहण करनेवास्ते मृत्यु यमके साथ वाद करता भया ॥ ३६ ॥ हे रामजी ! सो चैतन्यरूपता करके आकाशकी न्यांई असंग है केवल एकरूप है अंतसे आदिसे मध्यसे रहित है सो ब्रह्मही अपने चित्तके वशते

स्वयंप्रकाश है तोभी स्वरूपवाला देहधारी जैसे भासता है पुरुषदेह जैसाभी भासता है वास्तव विचारसे जैसे वंध्या स्त्रीको पुत्र नहीं होता है तैसेही आत्माको देह नहीं है ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! यह स्वयंप्रकाश आत्माका देह संकल्पमात्र है, पांच भूतोंका बनिआ देह जन्म करके रहित जो आत्मा तिसको कदाचित् नहीं होता है ॥३८॥ हे रामजी ! सर्व प्राणियोंके दो शरीर बने हैं यह कैसे हैं ! प्राणी पांच भूत जिन्हके कारण हैं तिनका एक संकल्प मात्र देह है एक पांच भूतोंका है यह आत्मा जन्मसे रहित है. इसका कारण कोई नहीं है. तिसते इसका एक संकल्पमात्र शरीर है ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! यह आत्माका शरीर केवल मनका संकल्पमात्र है और पृथिवी आदिकोंका नहीं बना है तिसते यह संसार मनोमात्र है जैसे जानिआ है तैसाही है ॥ ४० ॥ हे रामजी ! जन्मरहित यह आत्माके सहाय करनेवाला कर्मादिक नहीं है तिसते आत्माके संकल्प मात्रते प्रगट भये विश्वकेभी कर्मादिक सहाय करनेवाला नहीं है ॥४१॥ हे रामजी ! ब्रह्ममें कार्य कारणका भाव कोई नहीं बनता है जैसा परब्रह्म है तैसाही त्रलोक्य है ॥४२॥ हे रामजी ! मनुनाम करके एक मनुष्य है सो संकल्प करके ब्रह्मका स्वरूप धारण करता है तिसके मनका संकल्प मात्र जगत् है तिसते जगत् सत्यरूप भासता है ॥४३॥ हे रामजी ! जैसे अपने चित्त संकल्पसे उठिआ जो पिशाच है सो बालकको मरनेपर्यंत दुःखको देता है तैसेही यह दृश्यरूपी पिशाचिनी अपने संकल्पसे बनी है सो देखनेवालेके अंतःकरणमें दाह करती है ॥४४॥ हे रामजी ! जैसे अंकुर बीजके अंदर रहता है सो देशकालके स्वभावते अपने स्वरूपको प्रकट (प्रकाश) करते हैं ॥४५॥ हे रामजी ! जबलग यह दृश्य फुरनेमें विद्यमानहै तबलग देखनेवालेको इसका दुःख शांत नहीं होता है सो

दुःख जब लग बनिया है तबलग जाननेवालेको अपना अद्वैतरूप नहीं भासता है जब दृश्य मनतें शांत हो जावे तब दृश्यका जानना और जाननेवालेका भाव स्थित है तोभी शांति होती है दृश्यका देखनेके भावकी शातिको पंडित मोक्ष कहते हैं ॥ ४६ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न ॥ हे भगवन् ! मनका स्वरूप कैसा है ? तिसको तुम मेरेको प्रगट करके कहो जिस कारणसे तिस मन करके यह संपूर्ण लोकरचना विस्तार करी है ॥ ४७ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं ॥ हे रामजी ! इस मनका रूप नाम मात्रते अवर दृष्ट नहीं होता है जैसे आकाशका रूप शून्य है और जड है तैसे मनभी रूपरहित है और शून्य है और जड है ॥४८॥ हे रामजी ! मन बाहिरभी सत्यरूप नहीं और हृदयके अंदरभी सत्यरूप नहीं है और सर्वत्र मन स्थित है, जसे आकाश जगत्में सर्वत्र है॥४९॥ हे रामजी ! ना तो अंदर ना तो बाहिर है मध्यमें सत्यका अथवा असत्यका फुरना जो प्रगट भया है तिसको तुम मन करके जानों अवर मनका रूप नहीं है ॥ ५० ॥ हे रामजी ! संकल्प करनेको तुम मन जानों सो मन संकलपसे भिन्न नहीं है जसे चलनेसे जल भिन्न नहीं है और स्पंदसे पवन भिन्न नहीं है ॥५१॥ हे रामजी! सत्य अथवा असत्य पदार्थोंका जो फुरना है एतन्मात्रही तुम मनको जानो सोही ब्रह्मा है सोही सृष्टिकर्ता है ॥५२॥ हे रामजी! संकल्प शरीरही मन कहिया है सोही संकल्प मात्र शरीर चिरकालतक दृढ होता है तो पांचभौतिक बुद्धिको धारण करता है ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! त्रैलोक्य है और हम हैं तुम हो इस प्रकार कर दृश्यको असत्य भावको प्राप्त भये संते देखनेवाले निर्मल रूप आत्माका केवल अद्वैत भाव प्रगट होता है ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! पर्वतादिकोंके नामरूपते रहित ऐसे जो निर्मल दर्पणोंमें जैसे संपूर्ण पर्वता-

दिकोंके प्रतिबिंब होते हैं तैसे केवल अद्वितीय आत्मामें जगत्का प्रतिबिंब होता है ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! हम हैं तुम हो और जगत् है इत्यादि जगत्का भ्रम शांत भये संते देखनेवालेको मैं देखता हूं इसप्रकार देखनेके व्यवहारकी स्थिति नहीं होती है यथायोग्य आत्माकी अद्वैत भावनाही सिद्ध होती है ॥ ५६ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न ॥ हे गुरुजी ! यह परमात्मा देवतोंकाभी देवता है सो कौन तप करके और केते क्लेश करके शिताबी समीप प्राप्त होता है तिसको तुम मेरेको कहो ॥ ५७ ॥

श्रीवसिष्ठजीका वचन ॥ हे रामजी ! अपने पौरुषके यत्न करके प्रकाशमान विवेककरके सो आत्मा प्राप्त होता है तपकरके स्नानादिक कर्मोंकरके नहीं प्राप्त होता है ॥५८॥ हे रामजी ! राग द्वेष और मोह और क्रोध मद ईर्षा इन्हके परित्याग विना जो कुछ तप, दान क्लेश करा जाता है सो अपने फलको नहीं करता है ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! राग द्वेषादि करके चित्त युक्त होवे जो कोई परधनका वचन करके और यज्ञ, दान, तप करता है सो पुरुष यज्ञ, तपके फलोंको नहीं प्राप्त होता है और जिसका धन होवे तिसको फल प्राप्त होता है ॥६०॥ हे रामजी ! राग द्वेषयुक्त चित्त करके जो व्रत, नियम, दान, यज्ञ करता है सो दंभ कहिया है तिसका तुच्छ मात्रभी फल नहीं प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥ तिसते हे रामजी ! अपने पौरुषके यत्न करके संसाररोग निवृत्तिके लिये उत्तम शास्त्र और सत्संगरूपी औषधको उपार्जन करे, शास्त्र सत्संग संसाररोगका नाश करते हैं ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! सच्छास्त्र और सत्संग करके भये विवेकोंके बलते संपूर्ण अविद्या तैसे नष्ट होती है जैसे जलकी मलीनता खादे चूर्णके प्रसंग करके दूर होती है तैसे पुरुषोंकी मलीन बुद्धि योगाभ्यासते शुद्ध होती है ॥ ६३ ॥

श्रीरामजीका प्रश्न ॥ हे गुरुजी ! आत्मज्ञानके जाननेवास्ते जौनसा शास्त्र प्रधान है तिसको तुम मेरे प्रति कहो और जिसको जाननेसे फिर शोक नहीं करने बने और तुम शास्त्रवेत्ता पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो ॥ ६४ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं ॥ हे रामजी! आत्माके जाननेवास्ते वेदांतशास्त्र साधन है तिन्ह वेदांतशास्त्रोंमें यह महारामायणशास्त्र उत्तम है और प्रधान है ॥६५॥ हे रामजी ! आत्माको जाननेका उपाय जो महारामायणमें कहा है सो और शास्त्रमेंभी है और जो इसमें नहीं है सो और शास्त्रमेंभी नहीं है इस महारामायण शास्त्रको सर्व शास्त्रज्ञानका भंडार कहते हैं और पंडित लोग इस शास्त्रको मानते हैं ॥६६॥ हे रामजी ! जो पुरुष इसको नित्य प्रति श्रवण करे तिसको उदार चमत्कार होता है और तिसकी बुद्धि बोधकेभी परम बोधको प्राप्त होती है इसमें संशय कोई नहीं है ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! जिसको अपने पापके दुष्ट फल प्रकट होवें और तिसको इसमें रुचि नहीं होवे तब सो पुरुष आत्मज्ञानके वास्ते और विचारण करे ॥ ६८ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न ॥ हे गुरुजी! विदेह मुक्तके लक्षणको और जीवन्मुक्तके लक्षणको मेरे प्रति कहो जिसको श्रवण करके और तिस प्रकारकी ज्ञान दृष्टि करके मैंभी मुक्तिवास्ते यत्न करूं ॥ ६९ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं ॥ हे रामचंद्रजी! जौनसा पुरुष जगत्के व्यवहारको करताभी है तोभी जिसको जसा है तैसाही मनसे जगत्का व्यवहार आकाशकी न्याईं शून्य होगया है और जगत् भ्रम अस्त हो गया है सो जीवन्मुक्त कहिया है॥७०॥ हे रामचंद्रजी ! जौनसा पुरुष आत्मज्ञानकी मुख्य निष्ठाको प्राप्त भया है जिसको जाग्रत् अवस्थामें सुषुप्ति अवस्थाके बरोबर जगत्का भ्रम नहीं होता

है और लोकोंको जगत्का व्यवहार करता और जैसा दृष्ट होता है सो तिसको जीवन्मुक्त कहिया है ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! जिसके मुखकी शोभा सुखप्राप्तिमें प्रकाश नहीं होती है और दुःखप्राप्तिमें मलीन नहीं होती और जैसा प्राप्त होय तैसाही संतोष करके स्थित भया है सो जीवन्मुक्त कहिया है॥७२॥ जौनसा पुरुष जाग्रत् अवस्थामें सुषुप्ति अवस्था जैसा जगत्की चेष्टासे रहित भया और जिस पुरुषको लोकव्यवहारकी जाग्रत् अवस्था नहीं है और जिसको वासनारहित आत्मबोध है सो जीवन्मुक्त होता है॥७३॥हे रामजी ! जौनसा राग द्वेष भयादिकोंके अनुसार वर्तमान है तोभी अंतःकरणमें आकाशकी न्याईं निर्मल है सो जीवन्मुक्त कहिया है॥७४॥हे रामजी ! जिसको कर्म करतेको अथवा नहीं करतेको देहका अहंकार नहीं है और जिसकी बुद्धि फल वांछाको लिप्त नहीं होती है सो जीवन्मुक्त कहिया है॥७५॥हे रामजी ! जिसको मनके संकल्प विकल्प करके त्रिलोकीकी उत्पत्ति प्रलयका ज्ञान होता है जो आकाश की न्याईं निर्लेप है सो जीवन्मुक्त कहिया है॥७६॥हे रामजी! जिससे लोक दुःखी न होवें और जो लोकसे दुःखी नहीं होवे और हर्ष और क्रोध और भयसे जो रहित होवे सोही जीवन्मुक्त कहिया है॥७७॥हे रामजी! जिसकी संसारकल्पना शांत भई है और गुणवान् है तोभी निर्गुण है और चित्तयुक्त है तोभी चित्तके धर्मते संसारके चिंतनसे रहित है सोही जीवन्मुक्त कहिया है ॥७८॥ हे रामजी ! जौनसा संपूर्ण पदार्थ समूहमें व्यवहारवाला है तोभी शुभ शीलयुक्त है और संपूर्ण पदार्थोंकी हानि वृद्धिमें संतोष करके पूर्ण भया है सोही जीवन्मुक्त कहिया है ॥७९॥ हे रामजी ! जब जीवन्मुक्तका देह कालके वश होता है तो जीवन्मुक्त नामको त्याग करके मुक्त होता है जैसे पवन स्पंदसे रहता है तो आकाशमें लीन होता है तैसे आत्मसत्तामें

स्थित होता है तो विदेहमुक्त होता है ॥८०॥ हे रामजी! जब मुक्त होता है तो न उदय होता है और न अस्त होता है और शांत होता है और न सत्य होता है न असत्य होता है और न दूर और न समीप न अहंपद होता है और न त्वंपद होता है और न कुछ नामवाला होता है॥८१॥हे रामजी! विदेहमुक्त करके अपना जीव-भावको नाश करके मनकी वृत्तिका क्षय भये संते सत्तामात्र रूप होता है जो कहिनेमें नहीं है वही रूप परमात्माका होता है॥८२॥ हे रामजी ! तब जो सत्तामात्र शेष रहती है तुम तिसको सुनो जिसमें स्वप्नभी नहीं है और जिसका अंत नहीं है और मनकी स्थितिसे जडभी नहीं है ऐसी दीर्घनिद्राका जो रूप है सो विदेह मुक्तिमें शेष रहता है ॥ ८३ ॥ हे रामजी ! यह जगत्‌की रचना अनुभव करी होइयां आकाशके न्याईं निर्मलरूप आत्माविषे नहीं है जैसे स्वप्नसंकल्पसे फुरनेसे पृथिवी अद्भुत नहीं है ॥ ८४ ॥ हे रामजी ! आत्माका चिंतन करना कथन करना आपसमें तिसका बोध न करना इस प्रकारका एक आत्मा चिंतनविषे तत्पर होता है और तिसको पंडित ब्रह्माभ्यास जानते हैं ॥८५॥ हे रामजी ! जौनसे पुरुष विरक्त हैं सोही महात्मा हैं और भोगोंकी भावना सूक्ष्म करते हैं तिसके अंतमें भोगोंका अभावही मानते हैं सोही कल्याण-रूप है और पृथिवीमें संसार जीतनेको समथ हैं॥८६॥हे रामजी! जौनसे पुरुषोंको उदारता उदय भई है और सुंदर वैराग्य रस करके रंगको प्राप्त भये हैं और तिससे सर्व त्याग करनेवाले हैं और जि-नकी बुद्धि आनंदप्रवाहमें मग्न भई है ते पुरुष संन्यासी कहे हैं ॥८७॥ हे रामजी ! ज्ञेय वस्तु जो ब्रह्म है तिसके जाननेको संसारके अत्यंत अभावको मानते हैं तत्त्वविचारकी संपदामें शास्त्रकी युक्ति-करके यत्न करते हैं सो ब्रह्माभ्यासी कहे हैं ॥८८॥ हे रामजी ! यह

जगत् है और यह हम तुम हैं और ऐसा जगत् सृष्टिके आदिमें उत्पन्न नहीं भया है तिसते यह अबभी दृश्य सत्य नहीं है और इस प्रकारके दृढ बोधके अभ्यासको बोधाभ्यास पंडित कहते हैं ॥८९॥ हे रामजी ! दृश्यका जो असंभव है और अभाव तिसके बोध होने करके राग द्वेषादिकोंके तद्भाव करनेको सूक्ष्मता करनेको निरंतर केवल आत्मविचार करके प्रीति जो उदय होती है सो ब्रह्मविचारका अभ्यास कहिया है ॥ ९० ॥ हे रामजी ! दृश्यके अभावके बोध विना राग द्वेषादिकोंके जीतनेका अभ्यास जो करना है सो तप कहिया है और तिससे आत्मज्ञान नहीं होता है। वह कैसा है ? सो तप दृश्य पदार्थोंकी वासना फुरन हैं और महा दुःखको करता है ॥९१॥ हे रामजी ! दृश्यके फुरनेको अभावमें ज्ञानकी सिद्धि होती है और ज्ञेयवस्तु जो परमात्मा तिसको स्वरूपका उपदेशभी होता है और तिसके अभ्यासमें निर्वाण पदभी प्राप्त होता है और इस प्रकारके बोधका अभ्यास होवे तो परमानंदका उदय होता है ॥९२॥ हे रामजी ! यह संसाररूपी महारात्रि है इसमें मोक्षरूपी महानिद्रा उदय भई सो निरंतर आत्मविचारसे भया जो बोधरूपी जल तिसके सिंचन करके संपूर्ण निवृत्त हो जाती है और जैसे शरत्कालमें वर्षाके जल करके बर्फ गल जाती है यह हमारे मनमें निश्चय भया है ॥९३॥ हे रामजी ! एक चित्तका आकाश है जिसमें संकल्पका फुरना होता है और एक चिदाकाश है जिसमें दृश्य पदार्थका फुरना भासता है और एक स्वरूप करके आकाश है और जिसमें जगत् वर्त्तमान है इन्ह तीनोंको तुम एकही जानों किसते भावनाका त्याग करनेते ॥९४॥ हे रामजी! यह संकल्परूपी चित्त शरीरको सर्वत्र प्राप्त भयेको जानो जैसी इसको संवेदनकी इच्छा होती है और तैसीही संवेदना उदय होती है ॥९५॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न॥ हे गुरुजी ! तुमने जो कहा सूक्ष्म चित्तही सर्व जगत्के सृष्टि करनेको शक्तिवाला है सोही स्थूल जैसा बनकरके स्थूल देहके आधीन होता है और सर्वदेहोंविषें तत्त्वको जानता है और सर्वत्र व्याप्त है और स्वतंत्र है, हे गुरुजी ! उसमें मेरे दो प्रश्न हैं ऐसा चित्त हम जैसोंकाभी होता है अथवा नहीं होता है और जो ऐसा चित्त हमारा होता है तो एक एक चित्त प्रति अनेक प्रकारकी सृष्टिका भेद होवेगा जैसा जैसा चित्त तैसी तैसी सृष्टि सबोंको सत्यही भासे और जो ऐसा चित्त हम लोकोंका नहीं होता है तौ चित्तभी असत्यरूप है और सृष्टिभी असत्यरूप है तो दोनों एक जैसे सबको हैं तो ज्ञान भये संते चित्तका नाश होता है और तब जगत्भी नाशको प्राप्त हो जावेगा ॥ ९६ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं॥ हे रामजी! किसी चैतन्यके क्षणमात्र संकलपका लय भये संते लीन होते हैं और चैतन्यके संकलपके उदयसे कलपमात्र रहते हैं और संकलप लय भये संते कलपके अंतमें लीन होते हैं और कलप किसको कहते हैं? सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग, कलियुग यह चारों हजार हो जावें तो एक कलप होता है। और यह ईश्वरका संकलप है। अब जीव संकलपकी वार्ता कहते हैं ॥९७॥ हे रामजी ! मरणसे आदि मूर्च्छा सब जीवोंने अनुभव कर दिया है और सोही जीवोंके महाप्रलयकी रात्रिको तुम जानो॥९८॥ मरणसमयमें जीवसंकलपकी सृष्टि लय होती है और मरणसे उपरांत सबही जीव अपने साथ संकलपसृष्टि लय भईको फेर भिन्न भिन्न संकलपसे अपने अपने अनुभवकी सृष्टिको भिन्न भिन्न रचना करते हैं और जैसे भ्रमकरके जेवड़ीमें सर्पकी मालाकार फुरना होती है जैसे सभामें नृत्य होता है ॥९९॥ हे रामजी ! जिसको बुद्धि ज्ञान करके युक्त नहीं है और मूढ है और निर्मल विशाल परमपदके

विचारको नहीं प्राप्त भयी ऐसे अज्ञानी पुरुषको जगत् वज्रकी न्याइं दृढ सारवाला है और असत्य है तोभी सत्य भासता है ॥१००॥ हे रामचंद्रजी! जैसे बालकको वेताल मरणपर्यंत दुःख देता है तैसे मूढबुद्धि पुरुषको जगत् असत्यभी सत्य भासता है दुःख देता है ॥१॥ हे रामचंद्रजी! अमृतकी भावनाकरके विषभी सदैव अमृत होता है मित्रभावनासे शत्रुभी मित्रभावको प्राप्त होता है ॥२॥ हे रामजी! इन्ह पदार्थोंका स्वरूप अपनी भावनाके अनुसार होता है और तैसेही देवकी नियतके वश प्राप्त भया और जगत् चिरकालका अभ्याससे सत्य भासता है ॥ ३ ॥ हे रामजी! एक दिनमें पंद्रह मुहूर्त होते हैं और जौनसा ब्रह्माका एक मुहूर्त होता है और सो एक मनुका राज्य होता है चार युग इक्कीस(२१)बार होवें तो एक मनुका राज्य होता है और चौदह मनुका राज्य होवे तो ब्रह्माका एक दिन होता है और इस प्रकारके ३० दिन ब्रह्माका १ मास होता है और १२ मासकरके ब्रह्माका एक वर्ष होता है और ब्रह्माजीकी आयुष्य इस प्रकारकरके एक १०० शतवर्ष प्रमाण है सो आयुष्य ब्रह्माकी विष्णुजीका १ दिन होता है॥४॥इस प्रकारकी १०००वर्ष श्रीविष्णु भगवान्जीकी आयुष्य और जो विष्णु भगवान्जीकी आयुष्य है वोही शिवजी महाराजका १दिन होता है सो शिवजी स्वामी ध्यानमें चित्त लगायकर स्थित हैं और तिसको दिनरात्रिका भेदज्ञान नहीं है ॥५॥ हे रामजी!सो सदाशिव सदा ध्यानमें मगन हैं और तिसको जगत् और जगतके भाव कोई नहीं भासते हैं और तिसके विचारमें जगत् सत्यरूप है अथवा असत्यरूप है तोभी ना लय होता है और ना उदय होता है और कदाचित् कहींभी सदाशिवजीको जगत्का भ्रम नहीं होता है ॥ ६ ॥ हे रामचंद्रजी! सो शिवजी

परब्रह्म हैं और वोह कैसा है सर्वरूप है और शांतरूप है और जन्मसे रहित है और चैतन्यताकरके पूर्ण है और जसे पत्थर जडताकरके पूर्ण होता है और तिस परब्रह्मके अणु अणु प्रति अनेक सृष्टिके समूह हजारों वर्त्तमान हैं और जसे चित्तसे अनेक भ्रांति उदय होती हैं तिन अणुके अणु अंदर अनेक ब्रह्मांड हैं जैसे चित्तकी भ्रांतिमें अनेक भ्रांति होती हैं ॥ ७ ॥ हे रामजी ! तिससे पुरुषकी वासना क्या वस्तु है और इस पुरुषको वासना बंध करती है और जब पुरुषको विषयभोगमें अणुमात्रभी विराग होवै तबही यह पुरुष अणुमात्र विरागतेभी सबते उच्च परमपदको प्राप्त होता है यह वेदकी श्रुतिका प्रमाण है ॥८॥ हे रामजी ! यह पुरुष जिस जिस पदार्थसे विरक्त होता है और तिसी तिसी पदार्थसे मुक्त होता है और यत्न करना, रक्षा करनी, हानि, वृद्धि और हर्ष शोकसे रहित होता है सो सर्वज्ञ पुरुष है निवृत्त होनेसे अणुमात्रभी दुःखको नहीं जानता है॥९॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न ॥ हे ज्ञानीपुरुषोंमें श्रेष्ठ गुरुजी ! भलेप्रकार विचारते अल्पमात्र आत्मा और परमात्मा एकरूप ज्ञान भये संते विकलपरहित आत्मज्ञान भये संते ज्ञानी पुरुषोंकेभी देह किस निमित्त करके रहित हैं ॥ ११० ॥ तुम कहो जो ज्ञानियोंके देह दैव कर्मके आश्रय करके रहते हैं सो दैव क्या वस्तु है ? अब इसमें दैव नाम क्या कहते हैं ॥ ११ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं ॥हे रामजी! परब्रह्मकी एक नियति नामकरके शक्ति है, सो चैतन्यशक्तिकरके युक्त है और वह कैसी है अवश्य जो भवितव्यता है तिसकी एक सत्ता है सो अनेक कल्पादिकमें सत्तामात्ररूप है और अनेक कल्पोंमें व्याप्त है॥१२॥ हे रामजी! आदिसृष्टिमें यह नियति अनेक भावोंकी और अनेक

प्रकारकी अक्षयरचनाको धारणा करती है इस पदार्थने इस प्रकार कर के होने योग्य है और इस प्रकारकी परमात्माकी इच्छा सो नियति कही है ॥१३॥ हे रामजी ! सो नियति महासत्ता कही है और महाचिति कही है महाशक्ति कही है और महाक्रियाभी कही है महादृष्टि कही है और महाउत्पत्ति कही है महापुराणभी कही है और महाआत्मारूप करके स्थित है॥१४॥हे रामजी ! अवश्य भवितव्यरूप है यह ईश्वरकी इच्छाशक्ति है और रुद्रादि देवताकी बुद्धि करकेभी उल्लंघन करी नहीं जाती है ॥१५॥ हे रामजी ! पुरुषने ऐसी नियतिको बलवती जानकरके अपना पौरुष नहीं त्यागना यह नियति पौरुषरूपकरके सबको प्रेरण करती है॥१६॥ हे रामजी ! नामरूपसे रहित ईश्वरका निश्चित संकल्प नियति कही है सो ईश्वरका पौरुष है और यह सर्व व्यवहारोंमें वर्तमान है और पौरुषरहित पुरुषोंमें नित्य फलरूप है और पौरुषवालोंमें सफलरूप है ॥१७॥ हे रामजी ! जो पुरुष ईश्वरकी नियति मानकरके और मौन धारकर पौरुषकी क्रिया त्यागकरके रहता है उसके प्राण पवन कौन अर्थके निमित्त जाते हैं और उसके श्वास वृथा जाते हैं॥१८॥हे रामजी!जो कोई दैवको मान करके पौरुषको त्याग करता है और खानपानादिक देहके व्यवहारकोभी त्याग देवे जो दैव देवेगा सो खावेंगे जो उस पुरुषको खानपान मिले तोभी मुखमें ग्रास देना चर्वण करके निगलना पौरुषविना नहीं होता है॥१९॥हे रामजी! जो कोई पौरुषको त्यागकरके प्राण क्रियाको रोक करके और निर्विकल्प समाधिकरके मोक्षको प्राप्त होता है सो भी प्राण रोकनेके पौरुष विना नहीं सिद्ध होता है॥२०॥हे रामजी! जैसे चैतन्यरूप आत्माका जीवका भेद नहींहै तैसेही चित्तका जीवका भेद नहीं है और जैसे चित्तका जीवका भेद नहीं है तैसे कर्मका देहका

भेद नहीं है ॥२१॥ हे रामजी! कर्महीं देह है यह मांस रक्तवाला देह नहीं है और कर्महीं चित्त है चित्तही जीव है सो जीव ईश्वरही आत्मा है सो आत्मा सर्वरूप है सो सर्वव्यापी शिव है और यह मैंने एकवारही निश्चयकरके कहिया है ॥२२॥ हे रामजी ! कर्कटीराजा प्रति मंत्रीका वचन हे कर्कटी ! तेरे सरीखे लघु चित्तवाले अनेक हजार हमारे आगे पर्वतमें मच्छरकी नाई संख्यामें नहीं हैं और हमारे धीरतारूपी पवनकी अंधेरीमें तृणपत्रकी नाईं उड जाते हैं ॥२३॥ प्राज्ञ पुरुषने क्रोधवेगकी चंचलताको आत्मपातके द्वारको जानकरके त्याग करके और सम दृष्टि करके शुद्ध बुद्धि करके व्यवहारवाली युक्ति करके स्वार्थ सिद्ध कर दिया है ॥ २४ ॥ अपने पौरुषके व्यवहार करके कार्य सिद्ध होवे भावें न होवे और नियत महा बलवान् है ऐसे कहनेका भी समय कहा है तिसते पौरुषही धारण करने योग्य है ॥२५॥ बुद्धिमान् पुरुषोंके भाव जो हैं सो वचनों करके और मुखकी चेष्टा करके नेत्रोंकी चतुरताके द्वारों करके और एकरूप होयकर प्रवृत्त होते हैं जैसे नदीजल अपने प्रवाह करके एकत्र होते हैं ॥२६॥ तिस कारणसे मैं इन दोनोंको पूछता हूँ उनको संदेह क्या प्रकट भया है जो कोई चतुर पुरुषको प्राप्त होयकर अपना संदेह दूर करनेको नहीं पूछता है सो पुरुषोंमें नीच है ॥ २७ ॥ संपूर्ण गुणोंके समूहोंके अभ्याससे उत्तम ज्ञान होता है और तिसके जाननेवाला राजा होता है और मन्त्री भी होता है ॥२८॥ प्रभुता और समदृष्टि यह राजविद्या करके होते हैं और जो समदृष्टिको नहीं जानता है सो न तो राजा है और मन्त्री भी नहीं है॥२९॥जो वचन युक्ति करके मधुरवाणी करके कहीदा है सो वचन श्रवण करनेवालेके हृदयको प्रवेश करता है और जलविषें तैलकी नाईं विस्तार करके व्याप्त होता है और युक्ति कैसी है हृदयको प्राप्त

होनेवाली है और उपमा करके और दृष्टांत करके युक्त है वाणी कैसी है योग्य अर्थवाले पदों करके युक्त है ॥ ३० ॥ हे रामजी! चित्त बालक है और जगत क्षय है अज्ञान करके मिथ्याही देखता है जो इसको सद्गुरु उपदेश करके बोध करते हैं तो अपने निर्विकार स्वरूपको देखता है ॥३१॥ हे रामजी ! ऐसी कोई क्रिया नहीं वर और शापादिक भी दृढ भये मनको चलावनेको समर्थ होवे दृढ संस्कार करके बोधको प्राप्त भया मन किसी करकेभी अपने बोधको नहीं त्याग करता है ॥ ३२॥ हे रामजी ! यह मन अपने चाहे अर्थको चिरकालमें प्राप्त भया है और दृढता करके उसी अर्थको धारता है और तिसमेंही प्राप्त भया है इसको शरीरके भाव और अभाव बाधा करनेको नहीं समर्थ होते हैं ॥३३ ॥ हे रामजी ! तिसको अर्ध विवेक भया है और निर्मल आत्मपदको नहीं प्राप्त भया है और भोग्य पदार्थोंका त्याग करता है और ऐसे मनको अत्यंत संताप होता है ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! और जिसको विवेक प्राप्त भया है संसार मर्यादाको त्याग करनेवाला ऐसे मनको भोग्यपदार्थ त्याग करनेसे आनंद वृद्ध होता है ॥३५॥ हे रामजी ! बोधयुक्त पुरुषोंका मन ब्रह्मही है और भिन्न नहीं है जैसे समुद्रको जलरूप जाननेहारेको तरंग समुद्रके जलसे भिन्न दृष्ट नहीं होते हैं ॥३६॥ हे रामजी!मनके संयमसे संसारका भ्रम शांत होता है जैसे समुद्र मंथनसे अनंतर मंदरपर्वत स्थिर भये संते क्षीरसमुद्र स्थिर होता भया ॥ ३७ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीको चित्तकी चिकित्सा कहते हैं.

हे रामजी ! अब हम चित्तरूप महारोगकी महा औषध कहते हैं वह कैसी है अपने आधीन है और सुंदर स्वादवाली है और निश्चित है ॥३८॥ हे रामजी ! अपना संकल्प फुरण त्यागनेसे

पौरुष यत्नकरके चित्तरूपी वेताल शीघ्र जीता जाता है और किस उपाय करके मनके चाहे त्याग करके चित्तका जय होता है ॥३९॥ हे रामजी ! जो पुरुष इष्ट वस्तुको त्याग करके वासनारहित होवे तिस पुरुषने मन जीत्या है, जैसे हाथी चले भये दांतको दूर करके सुखी होता है ॥४०॥ हे रामजी ! आत्मज्ञानका यत्न करके चित्त-रूपी बालककी रक्षा कर दी है और असत्यवस्तुसे फिरायकरके सत्यवस्तुमें युक्त किया जाता है और बोधन किया जाता है ॥४१॥ हे रामजी ! शास्त्रकरके और सत्संगकरके धीर भया है ऐसा मन करके चिंतासे रहित भया है चिंताकरके तपे हुए अपने मनको तुम छेदन करो और जैसे शीतल लोहे करके तपा लोहा छेदियां जाता है ॥४२॥ हे रामजी ! जैसे बालक यत्न विना ही इहां उहा फिराया जाता है तैसे चित्तभी अशुभसे फिरायकरके शुभमें युक्त किया जाता है और इसमें क्या कठिनता है ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! जौनसा सत्कर्ममें लगा है वह सत्कर्म कैसा है अंतमें शुभ फल देनेवाला ऐसे मनको चैतन्यविचारमें युक्त करे ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! इष्ट वस्तुका त्याग अपने अधीन है और एकांतकरके हित करनेवाला है जिसमें जो कठिनताको प्राप्त भया है सो पुरुषोंमें कीट है और तिस को धिक्कार है ॥४५॥ हे रामजी ! अशुभ वस्तुको शुभकरके भाव न करे और आत्मविचारकरके चित्त यत्नकरके जीतीदा है जैसे बालक यत्न विनाही वश करता है ॥४६॥ हे रामजी ! अपने पौरुषके यत्न-करके चित्त शिताबी जीता जाता है और चित्तरहित पुरुषने पर-ब्रह्मविषे यत्नविनाही स्थिति प्राप्त होती है ॥४७॥ हे रामजी ! अपने पौरुषकरके साधन करने योग्य ऐसी इष्टवस्तुका त्यागकरके मनका शम करने विना शुभगति नहीं होती है ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! आत्मविचार करके साध्य है और ऐसे मनके मारने करके निर्विघ्न

अखंड आनंदको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! दैवगतिको त्यागकरके कैसी है वह दैवगति मूढ पुरुषोंके ज्ञानमें दृढ भई है और तिसको त्यागकरके पौरुष और ज्ञानकरके चित्तको चंचलतासे रहित करना ॥ ५० ॥ हे रामजी ! अपने अधीन और सुखसे साधने योग्य ऐसे अपने चित्तको जीतनेको जो पुरुष समर्थ नहीं होते हैं सो पुरुषरूपी शृगाल हैं तिन्होंको धिक्कार है ॥५१॥ हे रामजी ! जो कोई उत्तम पदवीको प्राप्त होने चाहता है तो चित्तके चैतन्यभावनाको प्राप्त करके तब चित्तसे भी परे परमपदमें स्थिर होता है ॥५२॥ हे रामजी ! मुमुक्षुपुरुष आत्मभावनाकरके युक्त होवे और उत्तम बुद्धिकरके युक्त होवे और ग्रसा गया है चित्त जिसका ऐसे आत्माके भावको यत्नकरके धारण करे ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! अपने परमउत्तम पौरुषका आश्रयकरके चित्तको चित्तपनेते रहित करके महा पदवीको प्राप्त होवे और जहां जायकरके शोच करने नहीं बनता है ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! चित्तके वेगको जीतना कल्याणका मूल है तिससे मनका जीतना सिद्ध होता है और मनके जीतनेसे त्रैलोक्यका जीतना तृणसमान है ॥५५॥ हे रामजी ! जिसमें शस्त्रका घात नहीं होता है और ऐसा मनका स्वभाव बदलनेमें क्या कायरता है॥५६॥ हे रामजी ! जौनसे पुरुष अपने मनके संकल्पको फिरावनेमें समर्थ नहीं होते हैं सो पुरुष संसारके व्यवहारमें कैसे प्रवृत्त होवेंगे॥५७॥ हे रामजी ! मैं पुरुष हूं और मैं मृग भया हूं और मैं जन्मिया हूं और मैं जीवता हूं यह कुदृष्टि भासती है और किससे मनकी चंचलतासे ॥५८॥ हे रामजी ! यह मन अपने फुरने करके इहांसे और लोकको जाता है और तहां और रूपके फुरनेको करता है तिससे मनके फुरनेका त्याग करनेसे मोक्ष होता है और इस कारणसे मनका भय कहांते है ॥५९॥ हे रामजी ! ना तो कोई मृत

होता है और न कोई कहीं जन्म लेता है आपही अपने मरनेको जानता है और परलोककोभी आपही जानता है और मनका क्या रूप है॥६०॥हे रामजी!यह लोकमें इस देहमें और परलोकमें दूसरे देहमें रहता है मोक्षपर्यंत चिंताको वारता है और इसका और रूप नहीं है॥६१॥हे रामजी!भ्राता मृत भये संते चाकर आदि संबंधी मृत झूठा शोक क्लेश होता है सो कैसे होता है चित्त अपना चैतन्यता व्यवहारते फिर गया है यही शोक मूल है यह हमारी बुद्धि निश्चित भई है ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! चित्तका उपशम भये विना संसार भ्रम शांत नहीं होता है वह चित्तका उपशम कैसा है पथ्यरूप है और शुद्ध है और तिरछाभी ऊंचाभी नीचाभी वारंवार विचारण किया है तिसते चित्तका उपशम जबलग नहीं भया तबलग विश्रांति नहीं होती है ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! हृदयरूपी जो आकाश है तिसको चैतन्यरूपी चक्रकी धारा करके विशाल भये संते मनको तुम मारो नहीं तो तेरेको संसाररूपी व्याधि पीडा करती है ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! जो तेरे मनकी प्रिय वासनाको दुःखरूप जानेआ होवे तो चित्तके सर्व अंग कटे गये हैं यह हमारी बुद्धि निश्चित भई है ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! यह पुरुष है यह हम हैं और यह वस्तु हमारी है और मनका यही रूप है और इस भावनाका त्यागमात्र करके मनरूपी तृण विचाररूपही दातृ करके मूलसे छिन्न होता है ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! जैसे शरदृतुमें छिन्न भया बादलोंका मंडल पवनकी अंधेरी करके छिन्नभिन्न होता है और तैसे ही विचार करके मन भी छिन्न भिन्न होता है ॥६७॥ हे रामजी ! जहां शस्त्र होवे और जहां अग्नि होवे तहां भय होता है यह मनका संकल्प त्याग अपने अधीन है इस भये संते कोई भय नहीं है ॥६८॥ हे रामजी!यह भला है और

यह भला नहीं है इस प्रकार करके जैसे बालकको शिक्षा करते हैं तैसेही मनरूपी बालकको विचार करके शुभ मार्गमें प्रवृत्त करे ॥ ६९ ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी सिंह है और संसारवासना इसकी गर्जना है और जो विचाररूपी शस्त्र करके इसको जीत लेते हैं सो निर्वाण पदको प्राप्त होते हैं ॥ ७० ॥ हे रामजी ! यह मनके कल्पनासे संसारकी आपदा प्रकट होती है वह कैसी है भयानक है और भ्रमके करनेवाली है जैसे निर्जल मारवाड देशमें रेतीके चमकनेसे मृगोंको जलकी भ्रांति करके तृष्णा होती है ॥ ७१ ॥ हे रामजी! भावें प्रलय करनेवाले पवन चले और भावें द्वादश सूर्य इकट्ठे होय करके तपें भावें सातों समुद्र सबही एकरूप होकर चलें तो भी जिसका मन लय भया है तिसकी हानि नहीं होती है ॥ ७२ ॥ हे रामजी ! मनरूपी बीजसे संसारके सुख दुःख शुभ अशुभ अंकुर होते हैं सप्तलोकरूपी नये दलभी प्रकट होते हैं ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! क्षीण भया मन उत्तम आनंदको देता है जैसे अंगारको चाहते पुरुषको दग्ध भया काष्ठ अक्षय अंगारेको देता है ॥ ७४ ॥ हे रामजी ! जिसका चित्त आत्मविचार करके नष्ट भया है तिसके संकल्पमें कोटी ब्रह्मलोकभी तुच्छ हैं सो किससे जिससे आत्मसत्ताके अणुमात्रमें यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड कोटी प्रत्यक्ष दृष्ट होती है ॥ ७५ ॥ हे रामजी ! यह मन कैसा है केवल संकल्प उदय करके अनेक अनर्थको करता है और संकल्पमात्र करके अपने अर्थको सिद्ध करता है और ऐसे मनको संतोष मात्रसे जीत करके विचार करके त्रैलोक्य जयको सिद्ध करता है ॥ ७६ ॥ हे रामजी ! समता कैसी है परम पवित्र है और आत्मवेत्ता पुरुषोंनेभी मानी है और तिस करके मनकी शांति होती है और संसारकी रचना संकल्पसहित नाश भये संते जो सत् चित् आनंद परमात्मा शेष रहता है सो तुमको सिद्ध होवे ॥ ७७ ॥

इति चित्तचिकित्सा.

हे रामजी ! तुम्हारा वासनारहित मनही वासनासहित मनको जीतनेको समर्थ है और जैसे राजा विना राजाको जीतनेको कोई समर्थ नहीं होता है ॥७८॥ हे रामजी ! यह जीवोंके समूह संसाररूप समुद्रके प्रवाहमें मग्न तृष्णारूपी ग्राहने पकडे हैं और संकल्प विकल्परूप जलके चक्र फेरमें मग्न भये हैं इन्ह जीवोंको दूर पार पहुँचनेको अपना शांत भया मनही बेडी बना है ॥७९॥ हे रामजी ! शांत भया मनरूपी शस्त्रकरके दुष्टमनके पाशबंधनको छेद करके जो अपनेको नहीं मुक्त करे सो और किसी करके भी मुक्त नहीं होता है ॥८०॥ हे रामजी ! जिन्हका मन चैतन्यात्मस्वभावको लंघ गया है और अपनी इच्छाके संकल्पोंमें दौडता है फिर तिस चित्तकरके आत्मा मलीन होता है सो मन जीतने योग्य है॥८१॥हे रामजी ! यह मन जो है सो मैं ब्रह्म नहीं इस संकल्पकरके दृढकर बद्ध होता है और सर्व जगत् ब्रह्म है इस दृढसंकल्पसे मुक्त होता है॥८२॥हे रामजी । संकल्पही परमधन है संकल्प त्यागही मुक्ति है और तिससे संकल्पका अंतःकरणमें जीतकरके जो तुम्हारी इच्छा होवे सो तुम करो ॥८३॥ हे रामजी!तुम मूढ मत बनो ज्ञानी बनो और संसारवासनाको दूर करो और आत्माको आत्मभावनाकरके जानो और मूढोंकी नाईं क्यों रोदन करते हो ? ॥८४॥ हे रामजी ! यह हमको बडा खेद है और बडा आश्चर्य है जो सत्यवस्तु ब्रह्म है सो विस्मरण भया है और जो असत्य अविद्याबंधन है सो जीवोंकी स्मृतिमें आय प्राप्त भया है ॥ ८५ ॥ हे रामजी ! जो राजा अनीतियुक्त होवे तिसके राज्यमें स्थित भई प्रजा जिस जिस दुःखी और दिशाको वह प्राप्त होती है सो सो दुःखरूपी दशा पापकर्म करनेवाले चंडालकोभी योग्य नहीं है ॥८६॥ हे रामजी!तुम राज्यव्यवहारमें वर्तमान भये हो तो भोगपदार्थोंमें तुम्हारी प्रीति मत होवे जैसे

फटिक सबके प्रतिबिंबको धारण करता है और आप अपने स्वभावकरके निर्मल होता है॥८७॥ हे रामजी ! श्रेष्ठगुणोंके ही विलास जाननेतें वधी है और सदैव सुशील और ऐसी उत्तमबुद्धिकरके असंग होयकर संसारकार्य करेगा और आत्मविचारमें तत्पर होवेगा और तब तेरी उपमा किसी करके नहीं होवेगी ॥ ८८ ॥ हे रामजी ! ऐसे उत्तम विवेकवाले पुरुषमें देहाभिमान गल जाता है और निर्मल शुद्ध सतोगुणवाली वृत्ति करके आत्मस्वरूपकी समाधिमें स्थित भये और पुरुषमें योगकी सप्तभूमिका चित्तको शुद्ध करती है और शिवरूपमें प्राप्त करती है ॥ ८९ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न वसिष्ठजी प्रति ॥ हे भगवन् ! योगकी सिद्धि करनेवाली सप्त भूमिका कैसी है और तिन्हका स्वरूपकरके मेरे प्रति कहो क्योंकि तुम आप तत्त्वज्ञानीमें श्रेष्ठ हो॥९०॥

वसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति कहते हैं॥ हे रामचंद्रजी! अज्ञानकी सप्त भूमिका है और तैसेही ज्ञानकीभी सप्तभूमिका इंद्रमें और भूमिका असंख्य हैं सो इन्ह विषेही अंतर्भूत हैं॥ ९१ ॥ हे रामजी! स्वभावकरके कर्मकी प्रवृत्तिकम करनेमें पुरुषार्थ होना और भोगवासनाकी दृढताकरके भोगके आनंदम आसक्त होना यह अज्ञानभूमिकाका लक्षण है और स्वरूप भी है यही अज्ञानका मूल है ॥ ९२ ॥ हे रामजी ! नित्य अनित्य वस्तुका विवेक और यह लोकके और परलोकके भोगोंसे वैराग्य और शम,दम,श्रद्धा,क्षमा,समाधान और मुक्त होनेकी इच्छा यह चार साधनयुक्त श्रवण मननमें यत्न और मुक्त होनेकी इच्छाकी दृढता और अखंडानंदमें प्रीति और सबका आधार ब्रह्मको सबसे अधिक मानना यह सब आत्मरूपकी प्राप्तिके कारण हैं आत्मसत्ताका लाभ यह ज्ञानभूमिकाका लक्षण है और स्वरूपभी है यही मूलभी है इन्ह लक्षणोंकरके और कारणोंकरके ज्ञानकी भूमिका और अज्ञानभूमिका बद्धमूल हैं और संसारदुःखको

और संसारमुक्ति ब्रह्मानंदकी प्राप्तिरूपी फलको देती है और सप्त अज्ञानभूमिका नीचे २ प्राप्त करती हैं सो रजोगुण और तमोगुण करके युक्त है और दुःखकरके पूर्ण है और जन्ममरणनरकको देनेवाली है और ज्ञानभूमिका सप्त ऊपर २ लोकमें प्राप्त करती है सतोगुणकरके युक्त हैं ज्ञान वैराग्य प्रधान हैं और क्रमकरके जीवन्मुक्तिको विदेहमुक्तिको देती है ॥९३॥ हे रामजी ! प्रथम अज्ञानकी सप्त प्रकार भूमिकाको तुम सुनो इससे उपरांत ज्ञानकी सप्तभूमिकाको श्रवण करोगे॥९४॥ हे रामजी ! आत्मस्वरूपमें स्थित और देहाभिमानका त्याग यह ज्ञानभूमिकाका संक्षेप लक्षण है और आत्मस्वरूपकाविस्मरण और देहाभिमानकी दृढता यहअज्ञानभूमिकाका संक्षेप लक्षण है ॥९५॥हे रामजी!शुद्धसत्तामात्र आत्मज्ञानसे और आत्मस्वरूपसे जौनसे पुरुष नहीं भूलते हैं तिनके रागद्वेषादिक अज्ञानके लक्षण कदाचित भी प्रसंग नहीं करते हैं ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! अपने आत्मस्वरूपका भूलना और चित्तका चितवनेमें मगन होना इससे परे अज्ञानका मोह न भया है न होना है ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! एक अर्थको त्याग और दूसरे अर्थको चित्तके आनेमें मध्यमें जौनसी स्थिति है सो न तो जाग्रत् है और न निद्रा है सो स्वरूपकी स्थिति कही है ॥ ९८ ॥ हे रामजी ! अहंकार अंश क्षीण भये संते, चित्त शांत भये संते और द्वैतभाव लय होत संते जडतारहित जो स्थिति है सो आत्मस्वरूप कहते हैं ॥ ९९ ॥ हे रामजी! तिस आत्मस्वरूपमें अज्ञान आरोपण किया है और तिसकी भूमिका तुम सुनो—१ बीज जाग्रत है २ एक जाग्रत् है ३ एक महाजाग्रत् है ४ एक जाग्रत् स्वप्न है ५ एक स्वप्नजाग्रत् है ६ एक सुषुप्ति है ७॥ २०० ॥ हे रामजी! सब मिलकरके अनेक प्रकार होतीहै अब इन्हके लक्षण तुम श्रवण

करो,यह सत प्रकारका मोह वारंवार आपसमें नित्य संबंधकरके अनेकरूप होता है॥१॥हे रामजी ! प्रथम सृष्टिके आदिमें अथवा जाग्रतअवस्थाके आदिमें चैतन्यके आभासयुक्त प्राण धारणक्रिया-की उपाधि करके अज्ञानका जो फुरना है जिसकरके आगे प्राप्त होनेके समयमें यह आत्मा जीवादि नाम रूप अर्थोंका पात्रहोता है और बीजरूपकरके जाग्रतअवस्था जिसमें स्थित है सो बीज जाग्रत कहिये है॥२॥हे रामजी ! सो बीजरूप जाग्रत हो अज्ञान सृष्टिमें वृक्षकी नाईं प्रत्यक्ष देहरूप बनिआ तो यह देहमें हो यह भोग मेरे हैं सो जाग्रत कहिया है॥३॥हे रामजी ! यह मैं हूँ और यह वस्तु मेरी है इस प्रकारका जन्मजन्मांतरके अभ्याससे दृढ प्रतीत भया प्रत्यक्ष भासता है और व्यवहार करनेमें सिद्ध भया जो अज्ञान है सो महाजाग्रत कहिया है॥४॥ हे रामजी ! जाग्रत अव-स्थाका संकल्प संस्कार अंतःकरणमें दृढ भया है अथवा नहीं दृढ भया है और ऐसा मनोरथका फुरना है और जाग्रतमें स्वप्न जैसा वर्तमान भया जो अज्ञान है सो मैं जाग्रत स्वप्न कहिये है ॥५॥ हे रामजी ! जो जाग्रत स्वप्न अनेक भेदोंका है जैसा एक चंद्रमामें दो चंद्रमाकी भ्रांति और शुक्तिमें रजतकी भ्रांति और जेवडीमें सर्पकी भ्रांति रेतीकी चमकमें जलकी भ्रांति अज्ञानसे होती है और अभ्याससे जाग्रतअवस्थाके भावको प्राप्त होती है सो जा-ग्रतस्वप्नका रूप है॥६॥हे रामजी ! निद्रा प्राप्त भई संते जो कुछ जाग्रतमें देखिया है अनुभव किया है और निद्राके अंतमें ऐसा प्रतीत होता है मैंने क्षणमात्रमें गज,तुरंग, राज्य,धन,संपदा देखीहैं सो सत्य नहीं है मिथ्याही है ऐसा जो निश्चय है सो सुप्त कहियाहै सो सुप्त कैसा होता है,महाजाग्रतका अज्ञान अंतःकरणमें वासना-रूप दृढ होता है और निद्रासमयमें दृश्य होता है और चिरकाल देखनेमें नहीं स्थित होता है और विशालरूपकरके दृश्य नहीं होता

है ॥ ७ ॥ हे रामजी ! सो स्वप्नही प्रबल अपने संस्कार करके अंतःकरणमें आरूढ होता है और जाग्रत् अवस्थाके समान प्रत्यक्ष होता है, महाजाग्रत् जैसा दृढ होता है देहपात भये संते और नहीं भये संते भी चिरकाल वर्तमान होता है तो स्वप्न जाग्रत् कहीदा है और जैसे राजा हरिश्चंद्रको १२ वर्षतक चांडालभावका स्वप्न भया है और जैसे जडभरतको हरिणजन्मका स्वप्न भया है ॥ ८ ॥ हे रामजी ! पहिली षट् अज्ञानभूमिका कर्म फलके भोग करके और त्याग करके केवल अज्ञानबलते जीवकी कर्म और ज्ञानसे रहित जडरूप जो स्थिति है सो सुषुप्ति भूमिका कही है ॥ ९ ॥ हे रामचंद्रजी ! तिस अवस्थामें जितने तृण, काष्ठ, पर्वत, पाषाणादिक पदार्थ हैं सो परमाणुरूप करके स्थित होते हैं ॥१०॥ हे रामजी ! पहिली षट् अज्ञानभूमिका अज्ञानकरके किये पाप पुण्य कर्मका संस्कार करके होते हैं और जब संपूर्ण कर्मफल भोगेजाते हैं और आगे कर्म नहीं होते हैं और ज्ञानभी नहीं होता है तो जीव केवल अज्ञानमें स्थित होता है सो सुषुप्ति भूमिका होती है॥११॥ हे रामजी ! जौनसी अज्ञानकी भूमिका स्वप्नावस्था कही है इसमेंभी अनेक शतप्रमाण अवस्था है फिर एक एकके जाग्रत् महाजाग्रत् आदि अवस्था अनेक होती हैं और कोई अज्ञानभूमिकाकी अवस्था स्वप्न जाग्रत्की नाईं चिरकालतक संसारमें जन्ममरणादिकको करती है और कितनी जाग्रत्की स्वप्नकी तुच्छकाल अज्ञान क्लेशको देती है ॥१२॥ हे रामजी ! अज्ञानभूमिका सप्त ७ प्रकार मैंने कही है सो कैसी हैं अनेक विकारोंकरके जगत्में अज्ञान क्लेश करके निन्दा करने योग्य है शास्त्रविचार करके और सत्संग करके विचारसे निर्मल आत्मस्वरूप प्राप्त होयकरके इन्ह सबको तुम तरोगे इसमें संशय नहीं करना ॥ १३ ॥

इति अज्ञानभूमिकावर्णनम्.

अथ ज्ञानभूमिकासप्तप्रकारवर्णनम्.

हे रामजी ! निर्मलबुद्धे ! अब तुम ज्ञानकी सप्तभूमिका सुनो ज्ञानभूमिका ज्ञान करके मोहरूपी कीचडमें पुरुष फेर मग्न नहीं होता है ॥१४॥ हे रामजी ! योगशास्त्रवेत्ता वादी लोग बहुत योगभूमिका कहते हैं सो योगभूमिका इन्ह ज्ञानभूमिकोंके समान नहीं है सो योगभूमिका ममता अहंकारयुक्त है वह मुक्ति नहीं करती है और ममता अहंकार अज्ञानको दूर करनेवाली यह ज्ञानभूमिका मुक्ति देनेको श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ हे रामजी ! आत्मबोधको ज्ञान कहते हैं और मुक्तिको ज्ञेय कहते हैं सो मुक्ति ज्ञानकी सप्तभूमिकासे परे है ॥१६॥ हे रामजी ! आत्मबोध और मुक्ति इन्हका नाम भेद है और आत्मबोधको जीव पाइकरके फेर संसारमें नहीं प्राप्त होता है॥१७॥ हे रामजी ! प्रथम ज्ञानभूमिका शुभ इच्छा है १ दूसरी विचारणा है २ तीसरी तनुमानसा है ३ और चतुर्थी सत्त्वापत्ति है ४ पंचमी असंसक्तमानसा ५ षष्ठी पदार्थाभावनी है ६ सप्तमी तुरीया है ७ और मुक्ति इन्हसे परे है जिसमें फेर संसाररूपी शोकसमुद्रका उदय नहीं होता है । अब इन्ह ज्ञानभूमिकोंके लक्षणको तुम श्रवण करो॥१८॥हे रामजी ! मैं मूढ होकर क्यौं स्थित भया हूं और शास्त्र करके और वैराग्य धारण करके आत्माको देखो ऐसी जो इच्छा सो शुभेच्छा ज्ञानभूमिका कही है ॥१९॥ हे रामजी ! शास्त्रविचार और सत्संग करके वैराग्यको प्राप्त होयकरके और श्रवणमननादि विचार करना सो विचारना ज्ञानभूमिका कही है ॥२०॥ हे रामजी ! विचारना और शुभेच्छा करके इंद्रियोंके भोगोंसे चित्तको असंग करना और सूक्ष्मताको प्राप्त करना सो तनुमानसा ज्ञानभूमिका कही है॥२१॥हे रामजी!यह तीन भूमिकोंके अभ्याससे चित्तमें भोगपदार्थोंके वैराग्य करके अन्तःकरण शुद्ध होता है और सत्त्वमूर्ति आत्मविषे स्थित

होती है सो सत्त्वापत्ति ज्ञानभूमिका कही है ॥२२॥ हे रामचंद्रजी ! यह चार भूमिकोंके अभ्याससे मनकी असंगताके बल करके ब्रह्म साक्षात्कारका चमत्कार जिसमें होता है सो असंसक्तमानसा ज्ञानभूमिका कही है ॥२३॥ हे रामचंद्रजी ! इन्ह पांच भूमिकाओंके अभ्याससे आत्मारामता करके स्थित होना बाहिरके पदार्थोंकी भावना नष्ट होनी सो पदार्थाभावनी ज्ञानभूमिका कही है॥२४॥हे रामजी ! इन्ह षट भूमिकोंके अभ्याससे द्वैत भेदका लय होनेसे जाग्रत्,स्वप्न, सुषुप्तिका भेद लय भये संते केवल स्वरूपानंदमें स्थिति होवे सो तुर्यगा ज्ञानभूमिका कही है ॥२५ ॥ हे रामजी ! जौनसे महाभाग्यवान् पुरुष हैं सो सप्तमी ज्ञानकी भूमिका तुरीयावस्थाको प्राप्त होते हैं सो पुरुष आत्माराम हैं और महात्मा हैं सो उत्तमपदको प्राप्त भये हैं ॥२६॥ हे रामजी ! सो जीवन्मुक्त हैं और सुखदुःखसे रहित हैं और देहके वर्णाश्रम प्रसंगकरके कर्म करते हैं अथवा नहीं करते हैं उन्हको कर्म करनेका विधिनिषेध कोई नहीं है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! उन्हको पास रहनेवाले लोक कर्म करनेको बोधन करते हैं तो आचारका कर्म सर्वप्रकारका करते हैं जैसे सोवते हुए पुरुषको जगायकरके मित्रादिक शुभकर्म करावते हैं और उन्हको कर्म करनेको दृढ नहीं रहता है और स्वरूपानंदमें मगन रहते हैं ॥ २८॥ हे रामजी ! आत्मारामता करके जौनसे स्थित हैं और तिन्हको जगत्की क्रिया नहीं सुहावती है जैसे सुप्त पुरुषको सुंदर स्त्रियां अपने रूप करके आनंद नहीं करती हैं ॥ २९ ॥ हे रामजी ! यह ज्ञानकी सप्तभूमिका ज्ञानी पुरुषोंके गोचर होती है विषयभोगमें आसक्त भयेको जडबुद्धिमें और पापबुद्धि पुरुषोंके गोचर नहीं होती है ॥३०॥ हे रामजी ! जौनसे यह ज्ञानकी सप्तभूमिकाको प्राप्त भये हैं सो पुरुष पशुयोनि भी हैं और हनुमानसे आदि और

म्लेच्छयोनि है और धर्मव्याधसे आदि आसुरयोनि और प्रह्लाद बलीसेआदि सोभी ज्ञानभूमिकाके प्रभावसे जीवन्मुक्त भये हैं॥३१॥ हे रामजी ! ज्ञानभूमिका अज्ञानबंधनको छेदन करती है और तिस भये संते मुक्ति होती है जैसे मृगतृष्णाकी भ्रांति और शुक्तिमें रजतकी भ्रांति वास्तव ज्ञान भये संते दूर होती है॥३२॥हे रामजी ! जौनसे दूसरी और तीसरी और चतुर्थी ज्ञानभूमिकाको प्राप्त भये हैं तिन्हको ज्ञान उदय भया है और अज्ञान दूर भया है मोहसे पार भये हैं और प्रारब्धवशसे मनोनाश और नित्यानंद पदप्राप्ति विदेह-मुक्तिको नहीं प्राप्त होता है तदभी आत्मलाभको प्राप्त भये हैं ॥३३॥ हे रामजी ! कोई ज्ञानकी सप्त भूमिकाको प्राप्त भये हैं कोई दूसरी और तीसरीको प्राप्त भये और कोई छठी भूमिकाको प्राप्त भये हैं और कोई सर्वभूमिकाको प्राप्त भये हैं सो सबही क्रमकरके मुक्त होते हैं॥३४॥हे रामजी ! कोई सनकादिक जैसे एक जन्ममेंही सप्त भूमिकाको प्राप्त भये हैं और जन्मांतरोंमेंकी क्रमकरके सबही सप्त भूमिकाको प्राप्त होइकरके मुक्त होते हैं ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! कोई चार भूमिकामें स्थित है और कोई सार्द्ध चार भूमिकामें स्थित है और कोई षट् भूमिकामें है और कोई सार्द्ध छः भूमिकामें है ॥३६॥ हे रामजी ! जौनसे विवेकी पुरुष हैं सो यह ज्ञानभूमिकामें विचरते हैं और देहगेहके संताप दूर करनेको उद्यम करते हैं ॥ ३७ ॥ हे रामचंद्रजी ! जौनसे ज्ञान और बलकरके इंद्रियां सहित मनको जीत लेते हैं सो पुरुष महाधीर हैं और ज्ञानभूमि-कामें स्थित हैं सो पुरुष आत्मलाभपदवीके राजा हैं और दिग्दंति सहित सर्वजगत्के जयको तृणके समान जानते हैं ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! जौनसे पुरुष यह ज्ञानभूमिकामें सावधान होइकरके मनसहित इंद्रियरूप शत्रुगणको जीत लेते हैं सो त्रैलोक्यमें वंदनीय

हैं और महापुरुष जिसमें राजसूय करनेवाले चक्रवर्ती राजाकी पदवी और जगत्‌को सृष्टि करनेवाले ब्रह्माकी पदवी तृणसमान तुच्छ होती है ऐसे परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ३९ ॥

इति ज्ञानभूमिकोपदेश ।

हे रामजी ! जसे नटलोक अन्यपृथिवीके लोकोंको मोहित करनेवास्ते औषधियोंके चूर्णको आकाशमें उडावते हैं और तिसकरके लोकोंको आकाशमें नगरका भ्रम होता है सो सत्य और असत्य कहनेमें नहीं होता है तैसे अपने अज्ञानके फुरनेमें संसार भासता है सो असत्यरूप कहा नहीं जाता है ॥४०॥ हे रामजी ! जबलग वासनासहित अविद्या आत्मविचार करके ज्ञानभूमिकाओंके बलसे नहीं नाश भई जैसे मूलसहित पुरानी लता नष्ट नहीं भई है सो जैसे फेर अंकुर पत्रपुष्पोंको प्रकट करती है तैसे यह अविद्या अनेक प्रकारके सुख दुःखोंके बनोंको प्रकट करती है तिस कारणसे जीवन्मुक्त पुरुषोंने अविद्याके मूल वासनाजालको क्षय करने वास्ते ज्ञान भूमिकाका अभ्यास सदैव करना ॥४१॥ हे रामजी ! जैसे शिलामें जल नहीं है और जैसेही जलमें अग्नि नहीं है तैसे आत्मामें जगद्रूपी चित्र नहीं है परमात्मामें कहांते है ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! यह जगद्रूपी चित्र दृष्ट होताही कछु सत्य नहीं है इसमें जो कछु किया है सो सत्य कहा है और ऐसा मान करके चिंताको लय करके सुखी रहो ॥४३॥ हे रामजी ! ग्रहचित्त अत्यंत आत्मभावसे रहित है और नीच है जो इसके अनुसार वर्त्ते सो पुरुष चंडालके अनुसार क्यों नहीं वर्त्तै जैसे चंडालके समान होना योग्य नहीं तैसे चित्तके अनुसार होना योग्य नहीं है ॥४४॥ हे रामजी ! तुम चित्तरूपी चंडालको निरंतर दूर करके आत्मस्वरूपमें निःशंक सुखी रहो और तुमको चित्तरूपी चंडालने कीचड जैसा जड कियाहै ॥ ४५ ॥

हे रामजी! यह असत्यरूप चित्तयक्षने जौनसे मूढ पुरुष वशकिये हैं और तिन्ह जडबुद्धि पुरुषोंको चंद्रमंडलते उल्कापात और वज्रपात प्राप्त होता है॥ ४६॥ जौनसे असत्यरूप और असत्य संकल्प वाले चित्तके अनुसार वर्तमान है सो पुरुष आकाशके अनुसार वर्त्तमान हैं सो पुरुष आकाशके छेद करनेकी वार्त्ता करके कालक्षेप करते हैं तिन्हको धिक् है जैसे आकाशके खंडनकी कथा वृथा है तैसे चित्तके संकल्प अनुसार होना वृथा है॥४७॥ हे रामजी! दृश्य पदार्थके दृष्टिके मध्यमें जौनसा देखनेवाले साक्षिचैतन्यका ज्ञानमात्रस्वरूपहै सो दृश्य पदार्थसे दर्शन इंद्रियसे भिन्न है सोही तेरा परमस्वरूप है ॥४८॥ हे रामजी!जब चित्त एकदेशसे अन्य देशको जाता है तिन्ह दोनोंमें जौनसा जडतारहित केवल फुरना मात्र है और सत्तामात्र है तद्रूपही तुमहो॥४९॥ हे रामजी!न तो जाग्रत्सो उदय है और न स्वप्नमें लय भया है और न जड है और न चैतन्य है ऐसा सत्तामात्र जो रूप है सो तुम तिसमें सावधान हो॥५०॥हे रामजी!यह जीव नष्ट देहसे अपने स्थानसे चिरकालसे धारण करी देहकी वासनाको त्याग करके अन्य देहकी वासनाको साथ लेकर चल जाता है और जैसे भ्रमर पुष्पोंकी वासना लेकरके और पहिले पुष्पोंको त्यागकरके और दूसरे पुष्पोंपर चला जाता है॥५१॥ हे रामजी!जो तुम ऐसा कहो यह जीव प्रतिबिंब है अपने आधार देहके नाश भये शोक नष्ट होवेगा तोभी तुमने शोक नहीं करना,जौनसा इस देहमें नष्टहोवेगा सो नये देहमें नहीं होवेगा और जो देहके साथ नष्ट होवेगा सो अगले देहमें क्यौं नष्ट होवेगा ऐसा जान करके क्यौं शोक करता है॥५२॥हे रामजी! तुम सत्य भावना करो आत्मा सत्य है और मोहकी भावना मत करो मोह असत्य है और उपाधिरूप है और आत्मा इच्छारूप उपाधिसे रहित है और शुद्धसत्तामात्ररूप है॥५३॥हे रामजी! आत्मा

साक्षिरूप है और सबमें समान है विकलपरहित है और चैतन्यरूप है इच्छारहित है और शुद्ध है तिसमें अनेक जगत् दर्पणकी नाई प्रतिबिंब होते हैं ॥५४॥ हे रामचंद्रजी ! सो आत्माकी चनन्य सत्ता मनकी कल्पनासे परे है और संकल्प विकल्पोंसे अन्य है हे रामचंद्रजी! सो चित्तके सुख दुःखों करके कैसे नष्ट होवेगी॥५५॥ हे रामचंद्रजी!संकल्प लय भयेसे चित्त गलित भये संते संसारकी मोहरूपी घंटा गल जाती है और एक अद्वितीय चैतन्यमात्र आत्मा निर्मल भासता है वह आत्मा कैसा है जन्मसे रहित है और अंतसे रहित है, कैसे जैसे शरदृतु प्राप्त भई संते और वर्षाऋतुके बादल दूर भये संते आकाश निर्मल होता है ॥५६॥ हे रामजी! यह चित्त सहित जगत असत्य रूप है तोभी आगे दृश्यमान होता है पुनः लयभी होता है और वारंवार चैतन्यसत्तामें मन द्वारसे चित्तरूप करके उदय होता है और लीन भी होता है जैसे समुद्रमें जलके तरंग वारंवार उदय होते हैं और लीन भी होते हैं ॥२५७॥

इति श्रीवासिष्ठसारे मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणं तृतीयं समाप्तम् ॥ ३ ॥

॥ श्रीः ॥

वासिष्ठसार ।

अथ स्थितिप्रकरणम् ।

श्रीवसिष्ठ उवाच । हे रामजी ! यह जगद्रूप चित्र जिस प्रकार स्थित है सो तुम श्रवण करो वह कैसा है कर्त्तारहित है और निष्प्रयोजन है और साधनक्रियाते विना है लिखनेवाले चितेरेसे विनाही है श्वेतपीत रंग करनेसे रहित है मूलसे विना है पत्र काग-

दके आधार विनाही है और आकाशमें प्रतीत भये हुये गंधर्वनगर जैसा है और देखनेवालेके दृष्टिगोचर है तोभी चिरकाल दृष्ट नहीं होता है और मोहनिद्राकरके प्रमाण करनेवाले चैतन्यको तिरस्कार करता है तोभी साक्षी चैतन्यको तिरस्कार नहीं करता है और अपने लय होनेमें साक्षी चैतन्यको लय नहीं करता है ॥१॥ हे रामजी ! फेर कैसे स्थित है जैसे मर्कट शीत कालमें शीत निवारणके वास्ते काष्ठससूह इकट्ठा करके अंगारि स्थानमें गेरिके धर लेते हैं और फिर मुखके पवन करके प्रज्वलित करते हैं उन्हसे अग्नि प्रज्वलित नहीं होती है और शीतभी निवृत्त नहीं होता है और प्रकारभी नहीं होता है तैसेही यह जगत्प्रयोजनरहित है इस लोकमें और परलोकमें किसी अर्थकोभी सिद्ध नहीं करता है ॥२॥ हे रामजी ! तुम सर्व अर्थोंकी कलारूपी कलंकको शांत करो और सर्व विकल्पजालरूपी शय्याका परित्याग करो चिरकालकी मोहरूपी दीर्घ निद्राको दूर करो भयसे रहित हो जाओ और आत्मज्ञान करके अंतःकरणको शोभित करो और स्वरूपानंदमें सावधान रहो ॥ ३ ॥ हे रामजी ! यह मनरूपी पिशाचहै सो दृश्य पदार्थकी भावनाके त्याग विना और उपायोंकरके सैकडों कल्पोंकरकेभी शांत नहीं होता है ॥४॥ हे रामजी ! मनही सर्व जगत् है और तैसे जगत्‌ही मन है यह दोनों आपसमें सदा मिले हैं तिन्ह मनका क्षय होनेसे जगत्‌का क्षय होता है ॥५॥ हे रामजी ! जैसे लवणराजाको मनसे चंडालका स्मरण करनेसे चंडालता भई है तैसे यह जगत् मनमें स्थित है॥६॥हे रामजी!जैसे भार्गव मुनिको तप करनेको भोगकी तृष्णा मनमें रहिते भोग भोगनेका स्वामिभाव भया है और संसारीभावभी भया है तैसे यह जगत् मनमें स्थित है ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जैसे भृगुमुनिका पुत्र बालकभावमें मृग भया तिसको देख करके भृगु यमके ऊपर क्रोध करके शाप देनेलगा तो

भृगुमुनिको कहता भया हे मुने ! तुम जैसे विवेकी पुरुष लोकस्थितिको असत्य जानते हैं और उत्पत्ति प्रलयको देखते हैं सो मोहके निमित्तभी मोहित नहीं होते हैं और मोहके निमित्त विना कैसे मोहित होते हैं ॥ ८ ॥ हे भृगुजी ! तुम विवेक करके अनंत भये हो हम दैवकी आज्ञा पालनेवाले हैं और तुम विवेक करके हमारे पूज्य हो और क्रोधादिकोंकरके पूज्य नहीं हो ॥ ९ ॥ हे मुने ! तुम बुद्धिकरके रहित हो और क्रोध करके तपका क्षय मत करो कल्पांत समय हमने तुम्हारेको भी दग्ध करना है और शाप दे करके हमारा क्या कर लोगे ?॥१० ॥ हे मुने ! मैंने अनेक संसाररचना ग्रस्त करी है और कोटि रुद्रभी ग्रस्त किये हैं और कोटि विष्णुभी ग्रस्त किये हैं और हम ग्रस्त करनेको कहां समर्थ नहीं हैं ॥११॥ हे मुने ! हम तुम्हारे भोक्ता हैं और तुम जैसे हमारे भोजन हैं यह दैवकी इच्छाका विलास है हे ऋषिजी ! हमारी तुम्हारी चेष्टा क्या वस्तु है ॥१२॥ हे मुने ! संसारका व्यवहार ईश्वरकी इच्छा करके वर्त्तमान है और विवेकीपुरुष इसके आधीन वर्तमान होते हैं तोभी महात्मा पुरुष अभिमान नहीं करते हैं॥१३॥ हे मुने ! तुम्हारी ज्ञानदृष्टि कहां है और महत्त्व कहां है और धीरता कहां है और संसारका मार्ग सबको प्रसिद्ध है और अंधपुरुषकी नाईं क्रोध और मोहके आधीन क्यों भये हो ॥ १४ ॥ हे मुने ! यह मरणावस्था अपने कर्मके फलके परिपाकसे होती है इसके विचार विना सर्वज्ञ तुम मूढ पुरुषोंकी नाईं मेरेको वृथा शाप देनेको इच्छा करते हो ॥ १५ ॥ हे मुने ! संसार व्यवहारमें जैसे मूढ हैं हमको तैसेही ज्ञानी पंडित हैं और मूढ वासनाकरके बद्ध हैं और ज्ञानी वासना त्यागकरके मुक्त होता है और मृत्युको सबही समान है ॥ १६ ॥ हे मुने ! ज्ञानी

पुरुष सुखी पुरुषोंसे नित्य सुखी होते हैं और दुःखी पुरुषोंसे दुःखी होते हैं और महात्मा पुरुष, अज्ञानी पुरुष जैसे दृश्यमें वर्त्तमान दृष्ट होते हैं पर अंतःकरणमें असंग हैं ॥१७॥ हे रामजी! भृगुमुनि यमका यह वचन सुनकर यमको प्रसन्न होकर बिदा करते भये और आत्मविचारकरके पुत्रशोकको त्याग करते भये ॥१८॥ हे रामजी ! तिस कारणसे जो पुरुष ज्ञानेंद्रियोंको वासनासे मुक्त करे तो कर्मेन्द्रियोंकरके और कर्मबंधसे मुक्त होता है और कर्मेन्द्रियोंकरके कर्मत्याग करके और ज्ञानेंद्रियोंकरके वासना होवे तो संसारमें बंधनको प्राप्त होता है ताते संसार वासनामें स्थित है॥१९॥हे रामजी!जब तुम ममता अहंकारके अन्धकारसे रहित होओ तो सर्व वासनारहित बनो और चित्तको इह लोक और परलोककी भोग इच्छासे रहित बनो तब चित्तसे परे महा पदवीको प्राप्त होओगे तुमको सबही प्रजा नमस्कार करेगी॥२०॥ हे रामजी ! वासनारहित चित्तही अमृत है और तिसते परे अमृत नहीं है वासनासहित चित्तही अग्नि है और तिसते परे अग्नि नहीं है, जो चित्त स्त्रीकी भावनावाला होवे तो बाहिर स्त्री नहीं होवे तो भी दुःखके अन्तःकरणमें विवेक नहीं होवे तो वाणीसे कहा हुआ विवेक क्या करेगा ॥ २१ ॥ हे रामजी ! जैसे स्फटिकमें प्रतिबिंब होते हैं परंतु अन्दर प्रवेश नहीं करते हैं तैसे लोकव्यवहारकरके भोगकी इच्छा तुम्हारेमें दृढ होती है तोभी अन्तःकरणमें तुमको नहीं है॥२२॥ हे रामजी ! जो पुरुष विचारकरके उदय भया है और चित्तके स्वभावको जाने आत्माके तत्त्वको जाने तिस पुरुषके ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, शिवजी सबही शिष्य होते हैं॥२३॥हे रामजी ! यह शरीर मिथ्या वासनाके भारसे प्रगट भया है आपदाका निवास है जो पुरुष इसको आत्मभावनाकरके नहीं देखते हैं सोही आत्माको

देखता है ॥२४॥ हे रामजी ! शरीरमें देशकालके वशसे सुखदुःख प्राप्त होते हैं और तिन्होंको जो अपनेमें नहीं देखता है सो पुरुष आत्माको देखता है ॥२५॥ हे रामजी ! पारमर्यादासे रहित देश काल क्रियासे रहित ऐसा आकाश जैसा मैं हूं इस प्रकारकरके सर्वत्र आत्माको व्याप्त भयेको देखता है सोही देखता है ॥२६॥ हे रामजी ! बालकके रोमका अग्रभागका जो लक्ष भाग है तिसकीकोटि अंशकी नाईं मैं सूक्ष्मरूपकरके सर्वत्र व्याप्त भया हूं इस प्रकार आत्माको जो देखता है सोही देखता है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! अपनेको अथवा इतर पुरुषको भेददृष्टि विना नित्यही सर्वव्यापी चैतन्यरूप स्वयंप्रकाश आत्मरूप जो देखता है सोही देखता है ॥२८॥ हे रामजी ! जो पुरुष सर्वशक्तियुक्त अनंत रूप सर्व भावमें स्थित ऐसे अद्वितीय आत्माको अन्तःकरणमें देखता है सोही देखता है॥२९॥हे रामजी जो पुरुष आधि व्याधि भय करके व्याकुल है और जन्ममरणादि धर्मसहित ऐसे देहको जो आत्मरूप नहीं देखता है और अपनेको देहसे भिन्न देखता है सोही देखता है ॥ ३०॥ हे रामजी ! तिरछी और ऊर्ध्व और नीचे आत्माकी महिमाको व्याप्त भई देखता है मेरे सरीखा दूसरा कोई नहीं है और ऐसे प्रकार जो आत्माको देखता है सोही देखता है ॥३१॥हे रामजी!जो कोई ऐसा देखता है सर्वजगत् मेरेमेंही है वह कैसे जैसे सूत्रमें मालाके मनके लगे होते हैं और चित्तमेंभी सर्व जगत् है परंतु चित्त जड है तिससे मैं चित्त नहीं हूं ऐसे जो देखता है सोही देखता है॥३२॥हे रामजी!न तो कोई हम हैं न कोई और है सर्व व्यापी सर्वत्र परब्रह्म है ऐसे प्रकार सत्य असत्यमें जो देखता है सोही देखता है ॥३३॥ हे रामजी ! नामरूप करके जो कछु त्रैलोक्य है सो मेराही अंश है जैसे समुद्रमें तरंग होता है ऐसे जो देखता है सोही देखता

है ॥३४॥ हे रामजी ! जौनसा भोगप्रमाणका स्वभाव जान करके भोगियां होवे सो भोग संतोष करता है और दुःखको नहीं देता है जैसे चोर जान करके चौरकी सेवा करे तो चौर मित्रभाव करता है और शत्रुभाव नहीं करता है॥३५॥ हे रामजी ! जैसे मार्ग चलनेवाले पुरुषोंको मार्गमें तीर्थयात्रा अकस्मात् प्राप्त होती है तैसे ज्ञानी पुरुषको संसारके व्यवहार चिंतन किये विनाही अकस्मात् प्राप्त होते हैं ॥३६॥ हे रामजी ! जैसे नेत्रोंके आगे जो अकस्मात् दृष्ट होते हैं, उसमें दृष्टि प्रीति विनाही प्रवृत्त होती है तैसे धीर और बुद्धिवाले पुरुष जगत्के व्यवहारमें प्रीति विनाही प्रवृत्त होते हैं३७॥ हे रामजी ! उत्तमबुद्धिवाले पुरुषको, अप्राप्त पदार्थोंकी चिंता जो है और प्राप्त पदार्थकी जो हानि है वह अपने निश्चयसे चलायमान करनेको नहीं समर्थ होती है जैसे पंछियोंके परोंका प्रहार पर्वतको चलायमान नहीं करता है ॥३८॥ हे रामजी ! ज्ञानी पुरुष पदार्थोंकी चित्तमें दृढ भावनाको दुःखोंकी खान जानते हैं और पदार्थोंकी दृढ भावनाके त्यागको अनंत सुखोंकी खान मानते हैं॥३९॥ हे रामजी ! संसारसमुद्र तरजानेको संतजनोंकी सेवा विना तप और तीर्थ और शास्त्र विना समर्थ नहीं होते हैं॥४०॥हे रामजी ! जो पुरुष लोभ मोह क्रोध करके अंध भया है सो पुरुष दिन दिनप्रति क्षीण होता है और जो सत् पुरुष हैं वह पुरुष लोभ और मोह क्रोधसे रहित होकरके और शास्त्रकी विधि करके अपने धर्मकर्ममें विहार करते हैं ॥४१॥ हे रामजी ! जो नीच पुरुष हैं तिसको अहंकाररूपी पिशाचने ग्रहण किया है तिसको शांत करनेवास्ते शास्त्र और मंत्र भी समर्थ नहीं होते हैं ॥४२॥ हे रामजी ! जो कोई ऐसा विचार करे कि यह जगत्की झूठी इंद्रजालकी माया है इसमें स्नेह करना और विराग करनेमें मेरेको क्या है ऐसा

अंतःकरणमें विचारनेसे अहंकार उदय नहीं होता है ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! जो ऐसा मनमें दृढ हो सो परम उत्तम अहंकार कहा है और सर्व विश्व मैं हूं और परमात्मा भी मैं हूं और अविनाशी मैं हूं और मेरेसे परे और कुछ नहीं है यह जो परम उत्तम अहंकार है सो मोक्षको देता है और बंधको नहीं देता है ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! मैं सबसे भिन्न हूं और बालकके रोमके अग्रभागके सैकडों अंशोंसे सूक्ष्म हूं, ऐसी जो अहंकारकी कल्पना है सो दूसरा अहंकार कहा है यह भी बंध नहीं करता है और जीवन्मुक्तोंको मुक्त करता है ॥४५॥ हे रामजी ! हस्त पादादिककरके जो कर्म करता है और तिसको मानता है मैं करता हूं यह तीसरा लौकिक अहंकार है सो तुच्छ है त्यागने योग्य है और दुष्ट है और परम शत्रु है ॥४६॥ हे रामजी ! पहिले शिष्यको शम दम आदिकरके मन इंद्रियोंसे शुद्ध करके और शुद्ध अंतःकरण जानकरके ब्रह्मज्ञानका उपदेश करे, हे शिष्य ! तुम ब्रह्म हो ऐसे बोधन करे ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! जौनसा अज्ञानी है और शुद्ध अंतःकरण नहीं है तत्त्व ज्ञानसे रहित है उसको जो ब्रह्मज्ञान उपदेश करता है सो श्रवण करनेवालेको और अपने आपकोभी नरकमें गेरता है ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! जौनसा गुरु शिष्यको परखे विना उपदेश करता है सो गुरु और शिष्य दोनों नरकमें प्राप्त होते हैं आर जबलग पंचभूत सृष्टिप्रलय नहीं भई तबलग नरकमें दोनों होते हैं॥४९॥ हे रामजी ! यह माया दृढ है और दूर नहीं, पीडित होती है ऐसी विचारणा तुमको मत होवे इस मायाको मैं कैसे मारों जैसे होवे तैसे मैं इसको मारों ऐसी दृढ विचारणा तुमको होवे ॥५०॥ हे रामजी ! शुभअशुभकर्म करके जिसको अपना स्वरूप विदित नहीं होता है और जन्ममरणका मनमें खेद जिसको नहीं होता है और संसारकरके

दुःखसुखोंमें वैराग्य नहीं होता है मोक्षकी इच्छा जिसको नहीं होती है सो मनुष्य रूपकरके राक्षस है ॥५१॥ हे रामजी ! यह जगत् मेरे देहाभिमानसहित असत्य है और ऐसा जानकरके तेरेको विषाद मनमें होवे कि यह मेरेही स्वरूपसहित सत्यरूप है और ऐसा विचारकरके तेरेको विषाद दूर होवे ॥५२॥ हे रामजी ! सुंदर धनमें स्त्रीपुत्रादिकमें ज्ञानी पुरुषको हर्ष शोकका समय कहां है और जैसे रेतीकी चमकमें जलकी तृष्णा भई संते जल चाहतेको क्या आनंद होता है ॥५३॥ हे रामजी ! जिन्ह भोगोंके अधिक भये संते मूढ पुरुषकी प्रीति होती है और विचारी पुरुषको तिन भोगोंकरके विराग होता है ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! भोगोंके आगम भये विना वांछा जो नहीं होवे आर भोगप्राप्तिमें भोगोंका स्वाभाविक भोगकरण यह पंडितोंका लक्षण है ॥५५॥ हे रामजी! भावें स्वर्गका नंदनवन शून्य हो जावे तोभी महात्मापुरुष शोकमोहको नहीं करते हैं और दैवगतिकरके जो प्राप्त होवे तिसको त्याग नहीं करते हैं सूर्यकी नाईं मोहांधकारको दूर करते हैं और असंग रहते हैं ॥५६॥ हे रामजी ! यह जगत्की स्थितिमें बहुत ब्रह्माके लक्ष चले गये हैं और शिव इंद्रोंके अनेक शत चले गये हैं और नारायणके अनेक सहस्र चले गये हैं ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! जगत्की स्थितिमें कदाचित् शिवसे सृष्टि भई है और कदाचित् ब्रह्मासे भई है और कदाचित् विष्णुसे भई है और कदाचित् मुनीश्वरोंसे भी भई है ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! यह पुरुष अपनी चेष्टाकरके आपही रोदन करता है और मर्कट दलित भये काष्ठऊपर बैठता है उसका अंड काष्ठके अंदर पड जाता है सो मर्कट काष्ठके मध्यके कीलेको निकाल लेता है और काष्ठ मिलनेसे मर्कटके अंड काष्ठमें फँस जाते हैं सो मर्कट अपने हाथकी चेष्टासे आप मृत होता है ॥५९॥ हे

रामजी! जो तुम हजार वर्ष उग्र तप करो अथवा अपने शरीर पर्वत शिखरसे गिराकरके शिलामें चूर्ण करो अथवा अग्निमें वडवाग्निमें प्रवेश करो अथवा बडे गर्तमें पडा रहो अथवा तलवारकी धारा करके शरीरको तिल तिल प्रमाण छेदन करो तो तेरेको शिव उपदेश करके विष्णुभी उपदेश करे और ब्रह्माभी उपदेश करे अथवा त्रैलोक्यनाथ ईश्वरकी कृपाकरके तेरेको आप उपदेश करे और भावें आपही तुम त्रैलोक्यको सृष्टि,पालन,लयभी करे पातालमें रहो अथवा स्वर्गमें रहो अथवा पृथिवीमें रहो तोभी अपने मनके संकल्पका लय विना मोक्षका उपाय तेरेको कोई नहीं है ॥६०॥ हे रामजी ! यह मेरा गुरु है और मैं शिष्य हूं और यह मेरे विलास हैं ऐसा भ्रम तेरेको अंतःकरणमें मत होवे और मैं और तुम यह जगत यह संपूर्ण एक आत्मतत्त्वही विलासको प्राप्त भया है ॥६१॥ हे रामजी ! यह मैं हूं सो मैं हूं और यह मैं करता हूं यह मैं नहीं करता हूं और यह पदार्थ हमारा है ऐसे भाववाली दृष्टि संतोषको नहीं करती है ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! यह देह मैं हूं ऐसी जो स्थिति है सो असिपत्रनामा नरक है और सोही वैतरणी नदीके तरंग हैं और सोही कालसूत्र नामा नरक है ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! सर्व पदार्थके नाश भय संते भी देहाभिमानकी स्थिति सर्व यत्न करके त्यागनी; जैसे उत्तम पुरुषने चांडालकी स्त्री कदाभी स्पर्श नहीं करनी ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! कर्त्ताभी कोई नहीं और मैं भी कोई नहीं सोभी कोई नहीं ऐसी प्रगट जान करके कर्त्ता कौन है और मैं कौन हूं सो कौन है यह सब परब्रह्म है ऐसा निश्चय करके सबसे उत्तम पद-में स्थित हो जैसे निर्मल बुद्धिवाले उत्तम साधुजन स्थित होते हैं ॥६५॥ हे रामजी ! जो वासना करके बद्ध है सोई बद्ध है और जो वासनाका क्षय है सोही मोक्ष है वासनाको तुम त्याग करके मोक्षकी

आशाकोभी त्याग करो॥६६॥हे रामजी!पहिले तामसी और मलीन वासनाको त्याग करो और शुद्ध मत्री आदि वासनाको धारण करो तब मुक्ति होवेगी ॥६७॥ हे रामजी ! मैत्रीवासना करके सर्व भूतोंमें प्रीति होती है सोभी मोहको करती है इसको व्यवहारकरके केवल चैतन्यकी वासनामें धारण करो सो चैतन्यमात्रभी वासनाको मन बुद्धिसहित शुद्ध अहंकार करके त्याग न करो और जिसशुद्ध अहंकार करके सर्व वासना त्यागी है और बाकी रहे अहंकरकोभी तुम त्यागकर देओ और अहंकारके त्यागने करके तुम शुद्धचिन्मात्र परब्रह्म स्वरूपको प्राप्त होओगे ॥६८॥ हे रामजी ! जो हृदयसे सर्व परित्याग करे और जो शेष चैतन्य सत्तामें रहे सोही मुक्त है और सोही परमेश्वर है॥६९॥हे रामजी ! सो पुरुष चाहे समाधि करो और चाहे कर्म करो और नहीं करो और जिसके हृदयमें सर्व वासना नहीं है सो पुरुष मुक्त भया है ॥७०॥ हे रामजी ! जिस पुरुषका मन वासनारहित भया है तिस पुरुषको कर्म त्याग करके कछु पाप नहीं है और कर्म करनेसे कछु पुण्य नहीं है और ध्यान जप करकेभी कछु सिद्धि नहीं है सो आत्मविचारसे आपही सिद्ध भया है ॥७१॥हे रामजी ! शास्त्र भली तरहसे विचारण किया है श्रवण करनेवालेको समझायाभी है और तोभी वासना त्याग करके मनके मौन धारण विना उत्तम पदकी प्राप्ति नहीं है ॥७२॥ हे रामजी ! दशदिशाभ्रम करके जो देखना सो देखिया है और जगत्‌में यथार्थ वस्तुको देखने-वाले कोई विरले जन हैं ॥७३॥ हे रामजी ! सर्वत्र पंचभूत हैं छठा कछु नहीं देखिया है और पातालमें स्वर्गमें पृथ्वीमें और कछु नहीं है ॥ ७४॥ हे रामजी ! विचारवान् पुरुष युक्ति सुनाय करके उपदेश करे तो संसार गौके खुरस्थानके जल जैसा सुगम तरा जाता है और युक्तिको नहीं जाने तो संसार समुद्र जसा दुस्तर होता है ॥७५ ॥ हे

रामजी ! जगतके कोईभी भाव तत्त्वज्ञानीको प्रीत नहीं करते हैं अरु जैसे रत्नकलशके देखनेवालेको मृत्तिका कलश देखनेमें प्रीति नहीं होती है जैसे पार्वतीके नृत्यको देखने चाहते शिवजीको मर्कट नृत्य करते प्रीति नहीं देते हैं ॥७६॥ हे रामजी ! हम क्या करें और कहां जायें क्या ग्रहण करें और क्या त्याग करें और सर्व ब्रह्मांडसहित जगत् आत्मा करके पूर्ण है और जैसे प्रलयकालके समुद्रजल करके ब्रह्मांड पूर्ण होता है ॥ ७७ ॥

इति श्रीवासिष्ठसारे मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणं चतुथ समाप्तम् ॥ ४ ॥

॥ श्रीः ॥

वासिष्ठसार ।

अथ उपशमप्रकरणम् ।

राजा दशरथ श्रीवसिष्ठजीकी स्तुति करते हैं ।

हे मुने ! जिस सज्जन पुरुषरूप कल्पवृक्षसे युक्तिरूपी कल्पना प्रकट होती है सो सज्जन कल्पवृक्ष सदा सर्वदा वंदना करने योग्य है वह सज्जन है युक्तिरूपी कल्पलता और आत्मारूपी रत्न देखनेवास्ते मुख्य एक मशाल है और आनंदरसरूपी तैलसे प्रकाशवान् होती है ॥ १ ॥ हे मुने ! तुम्हारे वचन युक्तिकरके संसारबंधनके जंजीररूपी कामक्रोधादिक सबही हमारे क्षीण होय गये हैं और जैसे शरद्ऋतुमें श्वेत बादल क्षीण हो जाते हैं ॥२ ॥ हे मुने ! ऐसे आनंदको स्वर्गके मंदार वृक्षोंकी मंजरी नहीं करती है और अमृत

रूपी समुद्रके तरंगभी ऐसा आनंदी नहीं करते और जैसे उदार बुद्धिवाले पुरुषोंकी वाणी अंतःकरणमें आनंद करती है ॥ ३ ॥

राजा दशरथ रामचन्द्रजीको कहते भये।

हे रामजी ! जो दिन महात्मा जनोंकी सेवा करनेमें जाता है सोही दिन उत्तम है और उत्तम उज्ज्वल प्रकाशवाला है और जो दिन बाकीके हैं वह अंधेरेही चले जाते हैं ॥४॥ हे रामजी ! हे कमल-नेत्र ! जो प्रसंग वसिष्ठजी कहते हैं और इसको तुम वसिष्ठजीको फिर पूछो वसिष्ठजी तुम्हारे ऊपर कृपा करनेमें स्थित हैं ॥ ५ ॥

रामचंद्रजी वसिष्ठजी प्रति प्रश्न करते हैं।

हे भगवन् ! तुम सर्वज्ञ हो;यह तुम्हारा प्रसाद भया है जिससे मैं परम उदार बुद्धि भया हूं और तुम्हारा वचन जो मैंने समझा और यह तुम्हारा प्रसाद है ॥६॥ हे मुने! जो तुम उपदेश करते हो सो तुम्हारा उपदेश मैंने हृदयमें धारण किया है और मैंने मोह-रूपी निद्रा दूर करी है जैसे तुम कहते हो तैसेही मैं मानता हूं और सो अन्यथा नहीं है सो तैसे ही मैंने हृदयमें अर्थकरके चिंतन किया है ॥ ७ ॥ हे मुने ! तुम्हारी आज्ञा हितको करनेवाली है और हृदयमें प्रीति करनेवाली और पवित्र है और आनंदको सिद्ध करनेवाली है और सिद्ध लोगोंने भी शिरकरके धारण करी है ॥८॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीप्रति कहते हैं।

हे रामजी ! हे सुंदरमूर्त्ते। यह उपशम प्रकरण उत्तम और सिद्धांत विचारकरके सुंदर है और इसको तुम सावधान होकर श्रवण करो ॥ ९ ॥ हे रामजी ! यह माया बडी विशाल है और राजस तामस वासनावाले जीवलोगोंने धारण कर दिया है जैसे सुंदर स्तंभोंकरके मंदिर धारण कर दिया है ॥१०॥ हे रामजी !

यह माया तुम्हारे जैसे पुरुषोंने तृणसमान त्याग दीया है और कैसे हैं तुम जैसे पुरुष अंतःकरणमें ज्ञानविचारवाले हैं और गुणोंकरके वृद्ध भये हैं सो कैसे मायाको त्यागते हैं जैसे सर्प त्वचाको त्याग करता है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! जौनसे सतगुणकी वासनावाले पुरुष हैं और राजस सात्विकवृत्तिवाले हैं सोभी जगत्के आदि अंतको विचारण करते हैं ॥१२॥हे रामजी ! जिन्ह पुरुषोंको शास्त्रज्ञान और सत्संग होता है और सत्कर्म करके जिनकी पापवासना हत होती है और तिन पुरुषोंकी बुद्धि सारवस्तु विचार करनेको होती है और वह बुद्धि कैसी है मशालकी नाईं उज्ज्वल भईहै॥१३॥हे रामजी ! अपने विचारकरके आपही आत्माके अपनेमें जबलग नहीं विचारण किया है तबलग शास्त्रोंका तत्त्व प्राप्त नहीं होता है ॥ १४ ॥ हे रामजी ! जिसका मन आदि अंतमें असत्य जगत्वस्तुविषे अत्यंत प्रीतिको प्राप्त होता है और तिस मूढबुद्धि पुरुषरूपी पशुको विवेक किसकरके होना है ॥ १५ ॥ हे रामजी ! पहिले अपना मन शास्त्रकरके, वैराग्यकरके, सत्संगकरके पुण्यकर्ममें प्रवृत्त करना ॥ १६ ॥ हे रामजी ! जब मन सुजनताको प्राप्त होवे और वैराग्यको धारण करे तब सत्पुरुष ज्ञानी पुरुषको प्रश्न करना सेवा भी करनी॥१७॥हे रामजी!तदनन्तर सद्गुरु उपदेश करके ध्यान, पूजा, जप करनेकरके क्रमसे परमपवित्र पदको भी प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ हे रामजी ! शुद्ध विचारकरके यह पुरुष अपने निर्मल मनकरके आत्माको देखता है और जैसे शीतल चंद्रमाकरके संपूर्ण आकाश देखिया है ॥१९॥ हे रामजी ! यह लोग तबलग संसार समुद्रमें तृणके समान वहा जाता है और जबलग चित्त करके विचाररूपी तटमें विश्रांतिको नहीं प्राप्त होता है ॥२०॥ हे रामजी!जब पुरुष विचारकरके आत्मवस्तुको जानता है आर तब

संपूर्ण मानसी चिंताको दबा लेता है और जैसे निर्मल जल रेतिके नीचे करता है ॥२१॥ हे रामजी ! मैं ऊर्ध्वबाहु होयकरके बोलता हूं और श्रवण कोई नहीं करता है और जबलग मन जडताको प्राप्त भया है जैसे गर्तमें कछु पडा होता है और भोगमार्गमें मूढमन भया है और आत्मविचारको विसर गया है तबलग यह संसारका अंधकार चंद्रमाकरके अग्नि करके और बारह सूर्योंकरकेभी भेदको नहीं प्राप्त होता है ॥ २२॥ हे रामजी ! तुम मनको जीतकरके राग द्वेष विना सुखसे रहित होओ और नित्यही आत्मविचारमें रहो और हानि और वृद्धिसे रहित होओ आत्मनिश्चयवाले होओ और अद्वैतभावनामें दृढ होओ और शोकसे रहित होओ चिंता ज्वरसे रहित होओ॥२३॥ हे रामजी ! विश्वसे परे परमपदको प्राप्त होओ और संपूर्ण प्राप्त होनेयोग्य पदार्थकरके पूर्ण होओ और पूर्ण समुद्र जैसे क्षोभसे रहित होओ और चिंताज्वरसे रहित होओ ॥ २४ ॥ हे रामजी ! तुम अनंत होओ और अपार होओ अप्रमेय होओ आत्मवेत्ता पुरुषोंमें श्रेष्ठ बनो और पर्वतकी नाईं धीर बनो और चिंताज्वरसे रहित बनो ॥ २५ ॥ हे रामजी ! यथायोग्य ईश्वरकी इच्छाकरके प्राप्त भये पदार्थकरके संतोष करो और सर्वत्र वांछाका परित्याग करो और त्याग करना ग्रहण करनेसे रहित बनों चिंता ज्वरसे रहित होओ ॥ २६ ॥

वसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीको राजा जनकका और सिद्धोंका संवाद सुनावते हैं ।

हे रामजी ! सिद्ध आकाशमें छिप करके कहते हैं और द्रष्टा जो है अन्य पुरुष सो नेत्रादि इंद्रियद्वारा करके रूपादि विषयोंको प्रमाण करनेवाला है और तिसको रूपादि विषयोंके साथ संबंध-करके विषयोंकी प्रतीति और आनंद और निश्चय जिसको होते हैं

सो चैतन्य आत्मतत्त्वका विचारसे प्रतीत होता है ऐसे निर्विकल्प चैतन्यको हम निरंतर उपासना करते हैं॥२७॥ देखनेवाला पुरुष है और देखनेके साधन इंद्रियां हैं और दृश्य विषय है यह त्रिपुटीको वासनासहित त्यागकरके केवल प्रकाशरूपकरके जो प्रतीत होता है और तिस स्वयंप्रकाश आत्माको हम निरंतर उपासना करते हैं ॥२८॥ जिस आधारस्थानमें यह जगत् है और जिसका यह सर्व जगत् अंशरूप है कारण जिस रूपसे प्रवृत्त भया है और जिस प्रयोजनके वास्ते और जिस साधनकरके जिस क्रियाको करता है और जो इसका रूप है सो संपूर्ण आत्माही है और तिसकी हम निरंतर उपासना करते हैं॥२९॥ अकार है शिरस्थानरूपी आदि जिसका और हकार है अंत जिसकेऐसा सर्व शास्त्रोंमें सर्व जगत्में अक्षर वर्ण मात्रा रूपकरके पंचभूतोंसे लेकर नाम रूपकरके सर्व व्यापी होय करके स्थित भया है और जिसको कर्मकांडवाले उपासना कांडवाले और ज्ञानकांडवाले वेदवाक्य करके और मंत्रशास्त्रकरके, वेदांत शास्त्रकरके नित्यप्रति उच्चारण करते हैं सोहं मंत्र करके अजपा मंत्र जपनेवाले अपने चाहे हुए जिस तत्त्वको जानते हैं तिसहीआत्माकी हम निरंतर उपासना करते हैं॥३०॥ जो पुरुष अपने हृदयमंदिरमें स्थित भये और ईश्वरको त्याग करके और देवताको उपासनेवास्ते प्राप्त होते हैं सो क्या करते हैं और अपने हाथसे कौस्तुभमणिको त्याग करके और रत्न ढूंढनेको देशांतरमें वृथा भ्रमण करते हैं ॥३१॥ वैराग्य करके हृदयमें स्थित भई सर्व वासनाको त्याग करके जिसके स्वरूप जाननेकरके संसारका मूल जाल अविद्या छेदको प्राप्त होती है और तिसको हम निरंतर उपासना करते हैं ॥३२॥ जो पुरुष पदार्थोंमें अत्यंत विरसता जानकरके दुर्बुद्धि करके फेर भावनाको बांधता है और सो मनुष्य नहीं है वह मनुष्य

रूप करके गधा है ॥ ३३ ॥ यह पुरुष इंद्रियरूपी शत्रुनको वारंवार उठतेको विवेकरूपी दंडकरके वारंवार मारे जैसे इंद्र वज्रकरके पर्वतोंको भेदन करता है ॥ ३४ ॥ यह मनरूपी कालकूट विष है सो खानेवालेको मार देता है जो इस विषको युक्त करके शोधन करे तो अमृतरूप होता है तैसे मनभी शुद्ध होजावे तो मोक्षको प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥ उपशमरूपी सुख परम पवित्र है और तिसको यत्न करके सिद्ध करे उपशमवालेका चित्त शिताबी शुद्ध होता है और जिसका मन शुद्ध भया है तिसकी आत्मस्वरूपके सुखमें स्थिति शीघ्र होती है ॥ ३६ ॥

इति सिद्धगीता ।

राजा जनक ऐसे वचन श्रवण करके विलाप करता भया यह हमारा राज्य कितना प्रमाण है तुच्छ है और तिसमें हमारा जीवना क्या प्रमाण है सोभीतुच्छ है और मेरेको इसके विना और क्या दुःख है और मैं इसमें मोहित होय करके नष्टबुद्धि जैसा दुःखमें स्थित भया हूं॥३७॥ मेरेको वर्ष वर्षप्रति और मास-मासप्रति दिन दिनप्रति क्षण-क्षणप्रति सुख जो है सो दुःखोंके पिंड प्राप्त होते हैं और वारंवार मेरेको दुःखही प्राप्त होते हैं ॥३८॥यह जगत्में ब्रह्माकी कोटी चली गई है और अनेक सृष्टि चली गई है राजे अनेक रेणुसरीखे चले गये हैं और मेरेको इस जीवनेमें क्या धैर्य है॥३९॥यह संसारकी रचना दुष्ट स्वप्नके सरीखी है और तिसमें देहकी स्थिति भ्रममात्र है इस देहकी जो मैं स्थिरता मानता हूं तो मेरेको धिक् धिक् है ॥४०॥ इस संसारमें जड लोग दिन दिनप्रति पापसेभी पापकी दशाको प्राप्त होते हैं और दिन दिन क्रूर दशाको प्राप्तहोते हैं दिन-दिनप्रति खेदकी अवस्थाको प्राप्त होत हैं ॥ ४१॥ यह लोग बालकावस्थामें

अज्ञान करके नष्ट होता है और यौवनमें विषय भोगोंकरके नष्ट होता है और वृद्धावस्थामें स्त्रीपुत्रादि चिंताकरके नष्ट होता है और यह दुष्ट जीव किस समयमें अपना भला करेगा ॥ ४२ ॥ जिनके नेत्रोंके खोलनेमें और मिलावनेमें जगत्के उत्पत्ति, प्रलय होते हैं और ऐसे पुरुष अनेक ब्रह्मा और विष्णुरुद्रादिक जगत्में चले गये हैं तो हमारी क्या गति है ? ॥४३॥ इसशरीरको एकांत करके दाह करते हैं और ऐसे रौरवादिक नरकोंकी अग्निमें लोटना चंगा है परंतु जिनमें जन्म-मरणादिक चक्र फिरते हैं और ऐसी संसारकी स्थितिमें रहना चंगा नहीं है ॥४४॥ यह संसार वृक्षके हजारों अंकुर हैं, हजारों इसकी शाखा हैं, हजारों पत्र हैं, हजारोंही इसमें फल हैं इसका मनही महादुःखके अंकुरका मूल है ॥४५॥ तिस मनको मैं संकल्पही रूप जानता हे इसको मैं संकल्प त्याग करके सुखाय देता हूं जैसे यह मन फिर शेष नहीं रहे ॥४६॥ इससे पीछे मेरा मनरूपी मोती अनविधा रहा है और अब उपदेशकरके वेधा गया है अब विवेकादिक गुणरूपी सूत लगावनेको योग्य भया है॥४७॥ मनरूपी तुषारकी कणका विवेकरूपी सूर्यके तापकरके चिरकालपर्यंत लग जावेगी॥४८॥मेरेको अनेक साधु पुरुषोंने सिद्ध पुरुषोंने बोध कराया है अब मैं परमानंदको देनेवाले आत्माको ग्रहण करता हूं ॥४९॥ यह मैं जनकराजा हूं और यह मेरा राज्य विस्तारको प्राप्त भया है और ऐसे फुरनेको अंतःकरणते दूर करके और मनरूपी शत्रुओंको मारकरके हे विवेक! मैं तेरे प्रसादसे शांतिको धारता हूं तोको नमस्कार है॥ ५० ॥ हे मन ! ऐसा यह कछु उत्तम सबसे ऊंचा पदार्थ कोई नहीं है जिसकरके तू पूर्णताको प्राप्त होवेगा तिसते हे शठ ! और हे मन ! धीरताको धारण करके चंचलताको दूर कर ॥ ५१ ॥

इति राजवाक्यम् ।

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कहते हैं ।

हे रामजी ! जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण है और-अंतको विचारण करती है और दीपशिखाकी नाईं प्रकाशमान है तिस पुरुषको जडताका अंधकार बाधा नहीं करता है ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! जौनसा यत्न भोग्यपदार्थ सिद्ध करनेको कर दिया है सोही यत्न बुद्धिके बधावनेके करने योग्य है ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! बुद्धिकी जडता संपूर्ण दुःखोंकी अवधि है और संपूर्ण आपदाका भंडार है और संसारवृक्षोंका बीज है तिसते इष्टको नष्ट करें ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! यह निर्मलबुद्धि विवेकी पुरुषके हृदयरूपी भंडारमें स्थित भई है और चिंतामणिकी नाईं कल्पलताकी नाईं चिंतित किये उत्तम फलको देती है ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! जो कोई परम श्रेष्ठ अत्यंत उच्च फलको चाहता है तिसने प्रथम अपनी बुद्धि सुधारने योग्य है जैसे उत्तम फलवाली खेतीको चाहनेवाले किसानने पहिले पृथिवी सुधारी है ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! विवेकी पुरुषको इतने गुणोंकी संपदा न चाही प्राप्त होती है और आशासे रहित होना निर्भय होनानित्य सुखोंमें प्रीति होनी और समदृष्टि होनी और ज्ञानी होना, इच्छारहित होना और क्रियासे रहित होना, सौम्यता होनी, विकल्परहित होना और धैर्य होना, सज्जनोंविषे मैत्री होनी,सबको मानना और संतुष्ट होना कोमल चित्त होना, मधुर वचन कहना, ग्रहणत्यागसे रहित होना इतने उत्तम गुण वासना विना स्थित होते हैं ॥६७॥ हे रामजी ! तृष्णारूपी चांडाली हृदयमें स्थित भई करके कैसी है और अमंगलरूप है इस करके भगवान् विष्णु भी बलिको याचना करनेवास्ते वामनरूप भया है ॥६८॥ हे रामजी ! जो तू रागसे रहित होवे पदार्थसंग्रहकी वासना रहित होवे तो तेरे चित्तकी तृष्णारूपी सत्ता गल जाती है तो दुःखसे रहित उत्तम पदको प्राप्त

होवेगा; तिसते हे रामजी ! तुम अंतःकरणको शांतिको प्राप्त करो ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! यह अहंकारकी भावना पापयुक्त है इसको अहंकार त्यागकी भावनारूपी शस्त्रसे छेद करके आत्मतत्त्वके भावनाको धारण किया है कल्याणरूप संपूर्ण भूतोंकरके गाई है गीति जिसकी इस प्रकारकी शांतिको तुम प्राप्त होवो ॥ ६० ॥ हे रामजी ! हे कमलनेत्र ! वासनात्याग दो प्रकारका तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने कहा है—एक जानने योग्य है और दूसरा ध्यान करने योग्य है ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! मैं पदार्थोंका नहीं मेरे पदार्थ नहीं इस प्रकारके अंतःकरणके शांतबुद्धि करके क्रियाभी करी जाती है और अंतःकरणके निश्चय करके जौनसा वासनात्याग कर दिया है, हे रामजी ! सो ध्यान करने योग्य वासनात्याग कहा है ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! अहंकारवाली वासनाको लीला करके जो त्यागकरके ध्येयवस्तुका भी त्याग करता है सो जीवन्मुक्त कहा है ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! समबुद्धिकरके तत्त्वज्ञान करके वासनाका क्षय करके और ममतासे हीन होकर वासनात्याग जो किया है सो ज्ञेय वासनात्याग कहा है ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! जौनसा वासनाको कल्पनासहित निर्मूल त्याग करके शांतिको प्राप्त भया है ज्ञेयके त्याग करके जो युक्त भया है और तिसको तुम मुक्त भयेको जानो ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने सुषुप्तकी नाईं शांतवृत्तिवाले चित्त करके स्थिति करी है और सो पुरुष संपूर्ण कलासहित चन्द्रमाकी नाईं सर्व जीवोंकरके सेवने योग्य है सो मुक्त भया है ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! विचारवाले पुरुषके मनमें चार प्रकार प्रगटरूपवाला निश्चय और होता है ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! मैं माता-पिताने जन्म देने करके आपदाका शिरोमणी किया हूं और ऐसा जो निश्चय है सो एक ही कहा है वह कैसा है

असत्य दृष्टिवाला है और बंधन करनेवाला है॥६८॥मैं सर्व भावोंसे रहित हूं और बालकके रोमके अग्रभागसेभी सूक्ष्मरूप हूं ऐसा दूसरा निश्चय हुआ है सो मोक्षसिद्धिको करता है॥६९॥जितना जो जगत्का जाल है और जितने पदार्थ हैं सो संपूर्ण अक्षयरूप मैं हूं ऐसा तीसरा निश्चय कहा है सो मोक्षरूप है ॥७०॥ मैं जो हूं अथवा यह संपूर्ण जगत् जो है सो सबही आकाशकी नाईं शून्य है और असत्य है ऐसा जो दृढ निश्चय है सो चतुर्थ कहते हैं और यह भी मोक्षसिद्धिके निमित्त महा श्रेष्ठ है ॥७१॥ हे रामजी ! जो पुरुष सबसे परे उत्तमपदको अवलंबन करता है सो पूर्णचंद्रमाकी नाईं शीतलरूप है और दुःखमें उद्वेग भी नहीं करता है और सुखमें संतुष्ट नहीं होता है॥७२॥ हे रामजी ! प्रश्न किया तो प्रसंगकी वार्ता कहता है और नहीं तो तूष्णीं रहता है इच्छा अनिच्छासे जो रहित भया है संसारमें पीडित नहीं होता है॥७३॥हे रामजी! भाव विषय अद्वैत भावनाको आश्रय कर सत्ताके स्वरूपको प्राप्त हो और धर्मशास्त्रकी मर्यादाके निमित्त कर्ममार्गमें यह शुभ कर्म है और यह अशुभ कर्म है यह करना और यह नहीं करना इस प्रकारकी द्वैतभावनाको करो इसीसे कर्मविषे अद्वैतभावनाको दूर करके द्वैत-अद्वैत विचारमें तत्पर रहो ॥७४॥ हे रामजी ! तुम ब्रह्महो हो ब्रह्मवेत्ता हो अथवा परमार्थविचारसे सर्व लोक विषें देवताभावको प्राप्त भये हो ॥७५॥ हे रामजी ! यह बांधव हमारा है अथवा यह हम हैं यह हमारा शत्रु है ऐसी गिनती तुच्छ बुद्धिवालेको होती है और उदार चित्तवालेको सर्वत्रमात्र आत्मबुद्धि होती है॥७६॥हे रामजी ! सो नहीं है जिसमें हम नहीं हैं सो नहीं है और जो हमारा नहीं है ऐसा निर्णय करके धीर पुरुषोंकी भेदसे बुद्धि रहित होती है ॥७७॥ हे रामजी ! माता और पिताके मरणकरके संतापको प्राप्त भये हुए

पावमानज ऋषिको पुण्यपुरुष कहता है और जौनसी मृत भई हुई माता है सोही तेरी माता नहीं है और जो मृत भया सोही पिता तेरा पिता नहीं है और तूही उन दोनोंका पुत्र नहीं है और उनके पुत्र असंख्य हैं और तेरे माता पिता अनेक सहस्र भये हैं जैसे जलप्रवाहके अनेक तरंग और अनेक तट और और अनेक मार्ग होते हैं ॥७८॥ हे रामजी ! नदीके तरंगकी नाईं अनेक मातापिता तेरे भये हैं तिससे तैंने माता पिता और पुत्रादि स्नेह करके शोचने योग्य नहीं हैं ॥७९॥ हे रामजी ! अज्ञान करके मृगतृष्णाकी नदी विस्तारवाली भई है और सो अविद्या है शुभ अशुभ वासनारूपी तरंगयुक्त है और अपनी वासनारूपी जलकी तृष्णाअनंत फुरनेवाली भई है॥८०॥हे रामजी ! तू आत्माको भाव अभावसे रहित स्मरण कर जरामरणसे रहित जान ऐसी आत्माको जानकर मूढमन मत हो ॥८१॥ हे रामजी ! पुण्यपुरुषने ऐसे समझाया तो पावमानज ऋषि आत्मबोधके प्रकाशको प्राप्त होता भया और जैसे प्रातः-समयमें मनुष्यलोक प्रकाशयुक्त होता है ॥८२॥ हे रामजी ! इस प्रकार पीछे तजे हुए अनेक शरीरोंकी अनेक धन और पुत्रादि-कोंकी आशा और वासना होती है और उनसे क्या ग्रहण होता है त्याग किसका होता है ॥८३॥ हे रामजी ! तिससे अनंत वासना त्याग करना ही मोक्षका उपाय है और आकाश नाम भी भला नहीं है ॥८४॥ हे रामजी ! चिंतन करनेसे चिन्ता बढती है और जैसे काष्ठसे अग्नि जलती है और जैसे काष्ठके विना अग्नि शांत होती है तैसे चिंतन विना चिंता शांत होती है ॥ ८५ ॥ हे रामजी ! मन पूर्ण होनेसे जगत् अमृत करके पूर्ण होता है और जोडा चरणोंमें लगा हो तो पृथ्वी सारी चर्ममय प्रतीत होती है ॥ ८६ ॥ हे रामजी ! वासनारहित पुरुषोंको जगत्

एक कमलके बीज समान तुच्छ होता है और अनेक योजनोंका मार्ग गौके खुरके और ब्रह्माजीका दिन क्षणके बराबर होता है ॥ ८७ ॥ हे रामजी ! जैसे शीतलता आनंद वासनारहित पुरुषको होती है ऐसी चंद्रमा और हिमाचलकी कंदरा और केलेके स्तंभ अथवा चंदनमें नहीं होती ॥८८॥ हे रामजी ! पूर्णमासीका चंद्रमा क्षीर करके पूर्ण भया क्षीरसमुद्र और विष्णुका मुख भी ऐसा नहीं शोभता जैसा वासनारहित मन शोभता है ॥ ८९ ॥ हे रामजी ! जैसे बादलकी रेखा पूर्ण चंद्रमाको कलंकयुक्त करती है जैसे सुपेदीको सियाहीकी बूंद कलंक लगाती है और जैसे उत्तम पुरुषको आशा पिशाचिनी खराब करती है ॥ ९० ॥ हे रामचंद्रजी ! अथवा हे रघुवंशरूप आकाशके पूर्ण चंद्रमा रामजी ! राजा बलिकी नाईं बुद्धि भेदकरके तुम निर्मल ज्ञानको सिद्ध करो॥९१॥ हे रामजी ! सो राजा बलीने लीला करके सपूर्ण जगतको जीत दश कोटि वर्ष राज्य किया ॥ ९२ ॥ हे रामजी ! निरंतर भोगे जो भोग हैं वह भोग कैसे हैं और त्रैलोक्यमें अत्यंत उत्तम हैं तिनमें उदासीनता धारता और एक समयमें आपही संसारकी स्थितिको चिंतन करता भया ॥ ९३ ॥ हे रामजी ! स्त्रियोंको बारंबार आलिंगन करना वारंवार भोगना यह बालकोंकी क्रीडा है इसमें महात्मा पुरुषोंको लज्जा क्यों नहीं आती है ॥९४॥ हे रामजी ! दिन होता है और फिर रात्रि होती है वारंवार जगत्के कार्य प्राप्त होते हैं और यह वारंवार ज्ञानी पुरुषको भूलनेका मूल है ॥ ९५ ॥ हे रामजी ! संसार कार्योंके समूहको वारंवार दिन प्रतिदिन करनेवाले लोगोंको लज्जा क्यों नहीं आती है ॥९६॥ हे रामजी ! पूर्वकालमें मैंने ज्ञानवान् और आत्मतत्त्वको जाननेवाला लोगोंके आद्यन्तको विचार करके देखनेवाला ऐसा पिता विरोचनसे पूछा ॥ ९७ ॥ हे पिताजी !

तुम महामति हो संपूर्ण सुख दुःखोंके भ्रम जिससे शांति होते हैं ऐसे उपायको तुम कहो ॥ ९८ ॥ हे रामजी ! मनका मोह कहां शांत होता है और संपूर्ण वासना कहां शांत होती है और आनंद-सहित चिरकाल विश्राम कहां होता है ॥ ९९ ॥ हे पिताजी ! जिससे तुमको आनंद निरन्तर है और चिरकाल विश्रामका सुख है उस उपायके ज्ञानको तुम मुझसे कहो ॥ १०० ॥ इतना श्रवण करके स्वर्गलोकको जीतकरके कल्पवृक्ष न्याय करके अपने अंगनमें लगाये कल्पवृक्षके पास बैठ करके पिता विरोचनने कहा—हे पुत्र ! एक देश है वह कैसा देश है महा विशाल है जहां हजारों त्रैलोक्य पूर्ण नहीं होते हैं ॥ १ ॥ और जिसमें संपूर्ण समुद्र अनेक पर्वत और अनेक वन और अनेक तीर्थ हैं और अनेक नदियां अनेक सरोवर, पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, पवन, सूर्य, चन्द्रमा और लोकपाल, देवता, असुर यह उसमें पूरे नहीं होते हैं और एक किनारेमें स्थित हैं ऐसा महाविशाल है ॥ २ ॥ हे पुत्र ! एक उपदेशमें महाबली राजा है वह राजा कैसा है महा तेजवाला है और सर्व कार्य करनेवाला है सर्वत्र व्याप्त है और सर्वत्र गतिवाला है सो राजा आप चुप रहता है ॥ ३ ॥ और तिसने अपने संकल्पसे एक मंत्रीको कल्पना किया है वह कैसा है जो सर्व मंत्र करनेवाला है और जो कुछ संकल्पकी घटनामें नहीं हो तिसको भी जल्द कर लेता है ॥ ४ ॥ बलीने पूछा हे पिताजी ! चिंतासे और रोगसे रहित सो देश कहां है और प्राप्त कैसे होता है और किसकरके प्रकाशमान है और ऐसा मंत्री कहां है और ऐसा महाबली राजा कहां है हमने लीला करके त्रैलोक्य जीता है परन्तु सो राजा हमने कैसे नहीं जीता है ॥ ५ ॥ विरोचनने कहा हे पुत्र ! जिस देशमें मंत्री महाबली है, देवता असुरोंके लक्षसेना करके भी देखनेको सामर्थ्य

नहीं है उसका जीतना कहां बनता है ॥ ६ ॥ हे पुत्र ! सो इंद्र और यमभी नहीं कुबेर और देवताभी नहीं है असुर अथवा मनुष्यभी नहीं है जो तुमसे जीता जावे ॥७॥ सो मंत्री अस्त्र-शस्त्रोंके पराक्रम करके किसी योद्धासे नहीं जीता जाता है तिस मंत्रीने संपूर्ण देवता और असुर अपने वश किये हैं ॥८॥ सो मंत्री विष्णुभी नहीं है और हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु आदि संपूर्ण दैत्य कालवश किये हैं जैसे प्रलयकालके पवनसे सुमेरु पर्वतके कल्पवृक्ष गिराये जाते हैं ॥९॥ हे पुत्र ! सो मंत्री अपने राजाका दर्शन करके जीता जावे तो सुख करके जीता जाता है नहीं तो पर्वतसेभी अचल है ॥१०॥ हे पुत्र ! त्रिलोकीमें जो बलवान् है तिनसेभी मूल बलवान् है ऐसे मंत्रीको तेरी शक्ति जीतनेकी होवे तो तू पराक्रमवान् होवे ॥ ११ ॥ हे पुत्र ! सो मंत्री युक्ति करके ग्रहण करा जावे तो क्षणमात्रसे वश होता है और युक्ति विना सर्पकी नाईं दग्ध करता है ॥१२॥ हे पुत्र ! जबलग राजाको नहीं देखा तबलग जीता नहीं जाता है और जब-लग मंत्री जीता नहीं गया तबलग राजा दृष्ट नहीं होता है ॥ १३॥ हे पुत्र ! पौरुष करके यत्न करके और अभ्यास करके क्रम क्रमकरके मंत्रीका जय और राजाका दर्शन करके तिस देशको तूभी प्राप्त होवेगा ॥१४॥ हे पुत्र ! सो देश कौन है और राजा कौन है मंत्री कौन है तुझे प्रकट करके सुनाता हूँ तू सावधानतासे श्रवण कर ॥१५॥ सो देश मोक्ष नामा है तिसमें राजा आत्मा है वह सबसे परे है और जिस राजाने मन मंत्री किया है ॥१६॥ तिस मनरूपी मंत्रीके जीतनेसे सब अपने वश होते हैं सो मन मंत्री जीतना कठिन है और युक्ति करके जीता जाता है ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! सर्व विषयोंके सर्व प्रकारकी आशा जो नहीं होवे तो यही मन जीतनेकी युक्ति है ॥ १८ ॥ हे पुत्र ! अभ्यास किये विना विषयोंसे विरक्ति

नहीं होती यद्यपि देहधारी कैसाही बलवान् होवे तो भी चलनेके उद्यम विना देशांतरमें नहीं प्राप्त होता है ॥१९॥ हे पुत्र ! आत्मतत्व देखनेसे विचार करके विषयोंसे विरक्ति हृदयमें स्थित होती है जैसे कमलके मध्यमें लक्ष्मी रहती है ॥ २० ॥ तिससे बुद्धिका उदय करके सुंदर विचारके आत्माको देखे भोगोंसे विरक्ति करे, ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! चित्तके जीतनेवास्ते चित्तके चार भाग किये दो भाग भोगोंसे और तीसरे भागको शास्त्रविचार और चौथा भाग गुरुसेवा करके पूर्ण करे ॥२२॥ जिस समयमें चित्त शास्त्रके अर्थको पावे तो दो भाग चित्तके ज्ञान वैराग्य करके पूर्ण करे, दो भागोंको ध्यान और गुरुपूजा करके पूर्ण करे ॥ २३ ॥ हे पुत्र ! भोग त्याग करके धर्मार्थ विचार विना ब्रह्मपदमें विश्रांति सुखसे नहीं होती ॥ २४ ॥ हे पुत्र ! पौरुषको यत्नके आश्रय करके और प्रारब्ध दैवको दूर करके विचारवान् पुरुष भोगनको त्याग करे वह भोग कैसे हैं मोक्षद्वारको प्रतिबंध करते हैं ॥ २५ ॥ भोगनिंदासे विचार होता है विचारसे भोगनिंदा होती है यह दोनों आपसमें पूर्ण होते हैं जैसे समुद्र और बादल आपसमें पूर्ण होते हैं ॥ २६ ॥ हे पुत्र ! भोगनिंदा और विचार और आत्मदर्शन यह तीनों आपसमें मिलकरके मोक्ष अर्थको सिद्ध करते हैं जैसे प्रीतिवाले मित्र मिलकरके अपने अपने अर्थको सिद्ध करते हैं ॥२७॥ हे पुत्र ! देशांतर गमन करके तुच्छ धनकी निंदा करके साधुजनोंको मानपूर्वक पूजन करके और सत्संग करके भोगनिंदा करके भले प्रकार विचारको उदय करके तुझे आत्मस्वरूपका लाभ होना है ॥ २८ ॥ बली कहता है पूर्वकालमें उत्तम विचारवाले पिताने यह ज्ञान मुझे कहा था सो मुझे बिसर गया था अब मुझको फिर स्मरण हुआ है अब ज्ञानको मैं प्राप्त हुआ हूं मुझको

याद हुआ है ॥ २९ ॥ अहो! महानंद भया है शमकी दशा महारमणीय है और शीतलता करके युक्त है और सुखदुःखकी संपूर्ण दशा शमविषे शांत होती है ॥ ३० ॥ जो मैंने पहिले अपने देहके मांस करके स्त्रीके देहके मांसको पीडित किया है अंग करके अंगको पीडित करके प्रसन्न होता भया, यही मोहका उदय है ॥ ३१ ॥ इतने कालमें मूढ होकर जो तुच्छ जगत्के राज्यकी इच्छा करके देवतागणके साथ वैर करता भया ॥ ३२ ॥ पहिले मैं कौन हूं और यह कौन है और जगत् क्या है इस प्रकार करके अज्ञानकी शांति वास्ते आत्मज्ञान वास्ते अपने गुरु शुक्रजीको प्रश्न करता हूं और स्मरण करनेसे प्रकट हुए शुक्रजीको बलीने कहा ॥ ३३ ॥ हे गुरुजी ! मैं भोगनेके प्रति विरक्त हुआ हूं और यह भोग कैसे हैं जो महामोहको देनेवाले हैं इससे मैं उस तत्त्वको जानना चाहता हूं जो महामोहको दूर करनेवाला है ॥ ३४ ॥ यह भोगजाल कितना प्रमाण है स्वरूप करके क्या है और मैं कौन हूं तू कौन है यह लोग कौन हैं यह तुम मुझसे कहो ॥ ३५ ॥ अब शुक्रजी कहते हैं–हे दैत्यराज ! बहुत कहनेसे क्या है और आत्मरूपको प्राप्त होनेको यत्न करे तू मेरेसे ज्ञानके सारको संक्षेपसे श्रवण कर ॥ ३६ ॥ यहां सर्वत्र चैतन्य है और चैतन्यमात्र ही दृष्ट होता है और चैतन्यरूपही है तुम चैतन्यरूप हो हमभी चैतन्य हैं संपूर्ण लोक चैतन्यरूप हैं ॥ ३७ ॥ हे दैत्यराज ! तू उत्तमबुद्धि है जो निश्चय करेगा तो सर्वसार ज्ञानको प्राप्त होवेगा जो निश्चय नहीं करेगा तो तुझको बहुत कहना भी भस्ममें होम जैसा वृथा होगा ॥ ३८ ॥ हे दैत्यराज ! चैतन्यका चित्तके संकल्पसे संबंध होनाही बंधन है चित्तके संकल्पसे मुक्त होनाही मुक्ति कही है, चैतन्यता कर चित्तकोभी चैतन्यमात्र जाने सभी आत्माही होता है यह मैंने

संक्षेपसे सिद्धांत निश्चयसे कहा है ॥ ३९ ॥ चिति कैसी है चित्तके धर्मसे मुक्त है सोही मैं हूं चैतन्याताख्पी ज्योतियुक्त हूं सबको प्रकाश करनेका दीप हूं ऐसे मुझको नमस्कार होवे ॥ ४० ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-बलीने ऐसा चिंतनकिया परमज्ञानको प्राप्त हुआ और ओंकारके अथको धारण करके और मौनको धारण करता भया ॥ ४१ ॥ सब सकल्पोंसे रहित हुआ निर्मल अंतःकरण होता भया और उसकी संपूर्ण वासना शांत होती भई सर्व संकल्पना शांत होती भई और शंकासे सन्देहसे रहित हुआ और चित्तको चैतन्यमें एकरूप करता भया ध्याता ध्यान करना ध्यान करने योग्य इन तीनोंसे रहित होता भया और सर्व भोग इच्छासे रहित होता भया है और आनंद करके पूर्ण होता भया मनके दोषोंसे रहित होता भया ऐसा होकरके जैसे निर्मलता करके शरहतुका आकाश शोभता है तैसे शोभता भया दिव्य हजार वर्ष ध्यानमें एकाग्रस्थित होता भया ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! बली दिव्य हजार वर्षसे उपरांत ध्यानसे जागृत होता भया आत्मतत्त्व चिंतन करता भया मुझको बन्ध नहीं है और मोक्ष नहीं है मूढता मेरी क्षीण हुई है ध्यान विलास करके मुझको क्या है ध्यान करने करके क्या है ॥ ४३ ॥ मुझको परम तत्त्वकी वाञ्छा नहीं है और जगत्की स्थितिसे मेरी वांछा नहीं है, ज्ञानदृष्टिसे मेरा कार्य नहीं है और राज्य करके मुझको कार्य नहीं है ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! बलिको जैसे ज्ञान प्राप्त हुआ सो तुमको कहा है ऐसीज्ञानदृष्टिको धारणकरके तुमभी मोक्षका उद्यम करो ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! बली असुरोंका राजाभी हुआ और दश हजार (१००००) वर्ष कोटि त्रैलोक्यका राज्य किया अन्तकाल भोगोंसे विरक्त हुआ ॥ ४६ ॥ इससे हे रामजी ! तुमभी अवश्य भोगभागको विरस जान त्याग

करके सत्य परमानंदजान करके विरसतासे रहित सदा एकरस पदको प्राप्त होवो ॥४७॥ पहिले इष्ट वस्तुको अनिष्ट जान अनिष्टको इष्ट जान ऐसा अभ्यास करके पश्चात् दोनोंका त्याग कर॥४८॥ इस दृश्यके पदार्थमें इष्ट अनिष्ट दृष्टिके त्यागनेसे निरंतर समदृष्टि हृदयमें उदय होती है इससे फिर जन्म नहीं होता है ॥ ४९॥ हे रामजी ! जिस शरीरको आत्मा मानते हैं झूठी ज्ञानदृष्टिसे जिनकी बुद्धि हत भई है और जो संकल्पविकल्पके अधीन भये हैं धूर्त हैं ऐसे मूढ नरोंकी बराबरीको तू मत धारण कर ॥५०॥ हे रामजी ! जो पुरुष स्वात्मनिर्णयमें ज्ञानकरके रहित हैं परायोंके कहेमें फँस गये हैं ऐसे यह मूढ पुरुषोंको अपनी मूर्खतासे अधिक दुःख देनेवाला कोई नहीं है ॥५१ ॥ हे रामजी ! जबलग अपनी आत्माने अपने देखनेमें अनुग्रह यत्न करके नहीं किया तबलग आत्मविचारका उदय नहीं होता है ॥५२॥ हे रामजी ! जब विष्णु भगवान्‌जीने हिरण्यकशिपुको मारा तब उसका पुत्र प्रह्लाद विष्णुको जीतना चाहता था और उसका उपाय चिंतन करनेलगा विष्णुको जीतनेका एक यही मुख्य प्रकट उपाय है और सर्वप्रकार करके सर्व बुद्धिको विचारके वेग करके सर्वत्र विष्णु विस्मरण नहीं करना विष्णु स्मरण विना विष्णुको प्राप्त होनेका और उपाय कोई नहीं है॥५३॥ अबसे लेकर जन्मादिकोंसे रहित नारायणको सर्वत्र ध्यान करता है तब मैं नारायणकी शरण प्राप्त होकरके नारायणको प्राप्त होवेगा ॥ ५४ ॥

ॐ नमो नारायणाय ।

यह मंत्र सर्व अर्थको सिद्ध करनेवाला है सो मेरे हृदयकमलसे दूर नहीं होता है जैसे आकाशसे पवन दूर नहीं होता है ॥५५॥

दिशामें सर्वत्र हरि है और आकाशमें हरि है, पृथिवीमें हरि है और सर्वजगत्‌हरि है मैंभी हरि हूं कैसा हरि है जो जिस हरिका परिमाण नहीं है अब मैं विष्णुरूप भया हूं ॥५६॥ जो आप विष्णुरूप नहीं भया है और विष्णुकी पूजा करता है सो विष्णुकी पूजाके फलको नहीं पाता है जो कोई विष्णुरूप होकरके विष्णुको पूजता है सो विष्णुरूप होता है तैसे ही मैं भी विष्णुरूप हुआ हूं॥५७॥ प्रह्लादकी भक्ति करके प्रसन्न भये विष्णु प्रह्लादको वर देनेको कहते भये तो प्रह्लादने कहा हे महाराज ! तुम संपूर्ण संकल्पके फलको देनेवाले हो सर्व लोकके हृदयमें अंतर्यामी रूप स्थित हो जो कुछ तुम अत्यंत उदारवस्तु जानते हो उसे मुझे कहो ॥ ५८ ॥

श्रीभगवान्‌जी प्रह्लादके प्रति कहते हैं ।

हे प्रह्लाद ! संपूर्ण संकल्पकी शांतिके निमित्त उत्तम फलके वास्ते ब्रह्म विश्रांति पर्यंत विचारही उत्तम कहा है ॥ ५९ ॥ प्रह्लाद विचार करता है श्रीभगवान्‌जीने मुझको विचार करना कहा है तिससे मैं आत्मविचार करता हूं ॥६०॥ अब मुझको पांच भूतोंसे और भूतोंके विचारभूत देहोंसे भिन्न आत्माका विवेक करके अनुभव हुआ है चित्तसे परे सत्तामात्र स्वरूप सबको प्रकाश करनेवाला मैं हूं सर्व विश्वके बाहिर और अंदर व्याप्त हूं निष्कलंक निर्मल सत्तारूप हूं ॥ ६१ ॥ मैं विशाल चैतन्यका दर्पण हूं सो वस्तु नहीं है जो मेरेविषे प्रतिबिंब नहीं होती मुझसे भिन्न कुछ नहीं है ॥६२॥ जो कुछ यह स्थावर जंगम जगत् दृश्यमान है सो संपूर्ण संकल्पविकल्परहित चैतन्यमात्र तत्त्व मैं हूं ॥ ६३ ॥ तुम हम यह जगत् इस प्रकारका मिथ्या भ्रम है देहधारी कौन है देहरहित कौन है मृत कौन है जीता कौन है ? ॥ ६४ ॥ काष्ठके जलके पत्थरके किला बना करके पृथ्वीके राजा बनके देहाभिमान

करते हैं ऐसे नीचबुद्धि दैत्यरूप करके कीटक जैसे मुझको धिक्कार है काष्ठमें जलमें पत्थरमें कीडे वृश्चिकभी रहते हैं सो उत्तम कहां होते हैं, आत्मविचारके विना उत्तमता नहीं होती है ॥६५॥ हिरण्यकशिपुने त्रैलोक्यका राज्य किया करता सो विचार विना क्या उत्तमताको प्राप्त हुआ जितने हमारे पितासे लेकर दैत्य भये हैं, सो सभीही नीचबुद्धि हुए हैं, जिस कारणसे यह आत्मविचारकी उत्तम राज्यपदवीको त्याग करके जगत्‌की जन्म मरणादि पदवीमें प्राप्त हुए अहंकार करके नष्ट होते हुए तुच्छ पदार्थोंमें आनंद मानते भये ॥६६॥ यह आत्मविचारसे हुई चैतन्यदृष्टि समदृष्टिमें उत्तम है. कैसी है अंतसे रहित है, अनंत अखंड आनंदके भोगवाली है, उत्तम उपशम शांति करके शोभायमान है; और संकल्प विकल्प करके रहित होनेसे शुद्ध है॥६७॥मैं संपूर्ण भावोंके अंदर स्थित हूं, चित्तके धर्मसे रहित चैतन्यरूप हूं सर्वव्यापी चैतन्यरूप करके वर्त्तमान हूँ; ऐसे मेरेकोही मेरा वारंवार नमस्कार है॥६८॥ आत्मविचारके आनंदका स्वाद लिये विना जगत्‌के सैकडों राज्य सुखोंका स्वाद लेनेसे कछुभी स्वाद नहीं होता है ॥ ६९ ॥ ऐसी आत्मविचारकी दृष्टिको त्याग करके दग्ध भये घर जैसा राज्यसुखमें कौन प्रीति करता है, जैसे स्वादिष्ट खंडमिसरीका शरबत छोड करके अत्यंत कडुए नीमके जलको कौन पीता है ॥७० ॥ हे मेरे आत्मा ! तुमको मेरा नमस्कार है तू अखंड चैतन्यरूप है संपूर्ण लोगको देखनेका महामणि है, हे देव ! तू मुझको प्राप्त हुआ है ॥७१ ॥ हे देव ! तू मैंने विचारा है प्राप्त भी भया है बोधको प्राप्त भया है और विकल्पोंसे निकाला है जो रूप तुम हो सो रूपही हो तुमको मेरा नमस्कार है ॥७२॥ मैं तेरा रूप हूँ और अंतररहित हूँ ऐसे मेरे ताईं तेरे ताईं नमस्कार है और कैसा है

शिवरूप है अद्वैतरूप है देवताकाभी देवतारूप है इंद्रियोंको प्रेरण करनेवाले इंद्रादिक देवता हैं तिनकोभी प्रेरण प्रकाश करनेवाला है सबसे परे है परमात्मारूप है ॥७३॥ देव ! तू कैसा है जिससे बादल दूर भये हैं ऐसे पूर्ण चंद्रमाके बिंबकी नाईं अविद्याके संकल्प विकलपरूपी बन्ध दूर होनेसे स्वात्मा प्रकाशरूप है अपने स्वरूपानंदमें प्रसन्न है आपही आत्मरूपमें स्थित है आपही उदय हुए हैं अपने वश हैं तुझको आपही नमस्कार करता हूँ हे देव ! तू कैसा है जिससे अहंकाररूपी कीचड दूर हुआ है निर्मल है अंदरका आत्मा जिसका ऐसा आनंदका सरोवर है ऐसे आत्मरूप तुमको मेरा नमस्कार है ॥७४॥ हे देव ! हे आत्मा ! तू आनंदसमुद्र है कैसा है शांत है इंद्रियरूपी तदोए जिसके क्षीण भई है चित्तरूपी वडवा अग्नि जिसकी ऐसी मेरे स्वरूप तुमको नमस्कार है॥७५॥ हे देव ! हे आत्मा ! ! तू आनंदका पर्वत है कैसा है अहंकाररूपी बादल जिससे दूर हुआ है आशारूपी दावाग्नि जिससे शांत हुई है ऐसे मुझे तुम्हें नमस्कार है ॥७६॥ हे देव ! हे आत्मन् ! तू सत्तामात्रका मानस सरोवर है कैसा है जिसमें आनंदरूपी कमल प्रस्फुटित हुआ है चित्तरूपी लहर शांत हुई है ऐसे मेरे ताईं तेरे ताईं नमस्कार है ॥७७॥ हे देव ! हे आत्मन् ! तू कैसा है लीला करके अनेक विश्वका ईश है अपने स्वरूपानंदके अनुग्रहको प्राप्त करनेवाला है तेरे प्रसादसे मुझको परम शांति करके युक्त यह आनंदकी प्राप्ति हुई है ॥ ७८ ॥ हे देव ! हे आत्मन् ! अब देखता हूँ मोहरूपी वेताल चला गया है अहंकाररूपी राक्षस चला गया है आशारूपी पिशाचनी चली गई है अब मैं चिंताज्वरसे रहित हुआ हूँ ॥७९॥ हे देव ! मैं अब देखता हूं मेरा अहंकाररूपी तोता तृष्णारूपी जेवडीको छेद करके शरीररूपी पिंजरासे कहां गया है॥८०॥

हे देव ! हे आत्माजी ! तूं कैसा है तैंने अपनी सत्ता करके संपूर्ण विश्व पूर्ण किया है विश्वको अपनेसे उत्पन्न करनेवाला है सर्वत्र लक्षित होता है कहां भागा जाता है ॥८१॥ हे आत्माजी ! मेरा तेरा जन्म बंधनसे बहुत अंतराल हुआ था अब समीपता हुई है बहुत आनंद हुवा है तुझको मैंने अब देखा है ॥ ८२ ॥ हे आत्मा ! तुझको मेरे विषें स्थित होनेसे मैं सर्व दोषसे रहित हुआ हूं अपने स्थान विषें आत्माकी स्थिति भई संते रागद्वेषादिकोंका रंग दूर हो गया है अब बंधन कहां है आपदा कहां है संपदा कहां है जन्म मरण कहां है अब अखंडशांति प्राप्त होनेकी इच्छा कहां है ॥ ८३ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं।

हे रामजी ! शत्रुगणको जीतनेवाले प्रह्लादने इस प्रकारका आत्मचिंतन किया निर्विकल्प परमानंद समाधिको प्राप्त हुआ ॥८४॥ इस प्रकार करके हजार वर्ष आनंद पूर्ण होकरके एकाग्रदृष्टि हो असुरोंके नगरमें स्थित हुआ जैसे सूर्य पत्थरमें प्रतिबिंब नहीं करता तैसे कार्योंकी कल्पनासे रहित हुआ ॥ ८५ ॥ उसके उपरांत ध्यानमें एकाग्र भये प्रह्लाद विष्णुभगवान्‌जीने संसारकी राज्यमर्यादा पालनेवास्ते पांचजन्य शंखकी ध्वनि करके समाधिसे जगाया तो दैत्योंके राज्यका पालन उसने किया ॥ ८६ ॥

श्रीरामचंद्रजी श्रीवसिष्ठजीको पूछते भये।

हे गुरुजी ! तुम कहते हो जो अपने पौरुषके यत्नसे सब कार्य सिद्ध होता है तो प्रह्लादको विष्णुके वर विना बोधको कैसे नहीं प्राप्त भया यह मुझसे कहो ॥ ८७ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं।

हे रामजी ! जो जो प्रह्लादको प्राप्त हुआ है सो सो अपने पौरुषसे

और किसीसे नहीं हुआ ॥८८॥ हे रामजी ! आत्मा और नारायण आपसमें भिन्न नहीं हैं जसे तैलतिल भिन्न नहीं होते हैं दोनों एकही हैं जैसे श्वेतरंग और वस्त्र भिन्न नहीं,पुष्प और सुगंध भिन्न नहीं होते ॥८९॥ कदाचित् आत्मा अपनी विचारशक्ति करके बोधको प्राप्त होता है, कदाचित् विष्णुरूप करके अपनी भक्ति करके आपही वरप्रदान करके बोधको प्राप्त होता है ॥९०॥ सो विष्णुरूप आत्मा चिरकालसे आराधन किया है तोभी आत्मविचार विना जाननेको अथवा वर देनेको समर्थ नहीं होता है तिसते प्रह्लादको सर्वत्र नारायणस्वरूप आत्मज्ञानके पौरुषसे वर प्राप्त हुआ॥९१॥ हे रामजी ! आत्मबोधके दो कारण हैं तिनमें अपने यत्नसे उपार्जित आत्मविचार मुख्य कारण है देवताका वरप्रदान गौणकारण है जिससे तुम मुख्य अपने पुरुषार्थमें यत्न करके आत्मविचारमें सावधान रहो ॥ ९२ ॥ हे रामजी ! तुम अपने पुरुषार्थके यत्नको आश्रय करके इंद्रिय मनरूपी पर्वतको लांघ करके संसारसमुद्रको तैर करके पार जाकर परमपदको प्राप्त होवो ॥ ९३ ॥ हे रामजी! जो पुरुषार्थके यत्न विना विष्णुरूप आत्मा इष्ट होवे तो जडयोनि मृग पक्षिगणको पुरुषाथ विना क्यों उद्धार नहीं करता है ॥ ९४ ॥ हे रामजी ! जिसका मन अज्ञान करके युक्त है उसको गुरुसेवा और विष्णुपूजा कुछ नहीं कर सकती है जो कुछ प्राप्त होता है सो आत्मविचार करके होता है ॥ ९५ ॥ हे रामजी ! जो शास्त्रविचारमें अपने पुरुषार्थसों मूढ है पराये कहेमें प्रवृत्त है उसको शुभ कमकी प्रवृत्ति निमित्त विष्णुभक्ति कही है ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! विचार विना उपशम विना विष्णुभी नहीं प्राप्त होता है, बिचार करके उपशम करके मुक्त होव तो विष्णु करके क्या अर्थ है ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! विचारसे उपशम करके युक्त अपने

चित्तको शुद्धकर चित्त शुद्ध भयेसे तू मोक्षसिद्धिको प्राप्त होवेगा जो तुझको विचार उपशम करके चित्त शुद्ध नहीं होवे तो तू वनके गधे सरीखे हो ॥९८॥ हे रामजी ! हृदयकंदरामें चित्तको स्थापन करनाही आत्माका स्वाभाविक अविनाशी सदा एक जसा मुख्यरूप है और शंख गदा पद्म धारनेवाला आत्माका गौणरूप है ॥९९॥ हे रामजी!जो पुरुष मुख्य आत्माके रूपका त्याग करके गौण रूपकी सेवा करता है सो अपने हाथसे सिद्ध रसायन त्यागकरके साधन करने योग्य और रसायनके यत्नको दौडता है ॥२००॥ हे रामजी ! यह माया संसार नाम रूपवाली है अंतसे रहित है अपना चित्त जीतने करके क्षयको प्राप्त होती है ॥ १ ॥ हे रामजी ! कोशल देशमें रहनेवाला एक गाधि नाम ब्राह्मण विष्णुकी आराधना करके माया देखनेवास्ते वरको प्राप्त हो करके जलमें स्नान करनेको प्रवेश किया जलके बीच अघमर्षण मंत्र पढता भया मनमें मायाकी सृष्टि देख करके फिर प्रत्यक्ष देख मनमें संदेह किया माया यही है नहीं है फिर उसने विष्णुकी आराधना कर प्रत्यक्ष अनुभव करके विष्णुजीको कहा ॥२॥ हे देव ! मैं छःमहीने माया करके भ्रमता भया भूतोंके स्थानमें कीर लोगोंकी पदवीको प्राप्त हुआ हूं तहां जो मेरा वृत्तांत भया है सो कथा मैं नहीं जानता हूं ॥३॥ तेरी मायासे भूतोंकी भूमि मैंने देखीथी यही तुम्हारा वचन करके वृथा, हे भगवन्! महात्मा पुरुषोंका वचन मोहनाश वास्ते होता है मोहकी वृद्धि वास्ते नहीं होता है ॥ ४ ॥

श्रीभगवान्‌जी कहते हैं ।

हे गाधि ! जैसे काग तालवृक्षके ऊपर आ करके अकस्मात् बैठ जाता है अकस्मात् तालवृक्षका फल गिरके फूट जाता है ताल-

वृक्षके फलको काग खा लेता है तालफलको काग तोड नहीं सकता तैसेही सर्व भूतरूपी कीरोंके चित्तमें चांडालकी स्थिति प्रतिबिंबित होती है तिससे तेरे चित्तमें अकस्मात् चंडालस्थिति प्रतिबिंबित हुई है॥५॥ इससे जैसी चित्तमें स्थिति होती है तैसा वृत्तांत कहा जाता है जैसा चित्तका फुरणा होता है तैसाही मायाके वेगसे दृढ होता है सो ज्ञान विना विस्मरण नहीं होता है उसका वृत्तांत कहते हैं ॥६॥ किसी चंडालने ग्राममें गृह रचन किया सो तैंने देखा था फिर उसमें प्रवेश किया उसकी ईंट खंडित भई ॥७॥ हे गाधि ! कदाचित् एक फुरणा बहुत जीवोंको होता है जैसे अकस्मात् कागकी तालवृक्षमें स्थिति होती है तैसे अकस्मात् फुरणा होता है ॥ ८ ॥ हे गाधि ! तैसेही बहुत मनुष्य अकस्मात् एक स्वप्नको देखते हैं वह स्वप्न कैसा है ? शयनरूप भ्रमको देनेवाला जैसे मदिरापानसे बहुत मनुष्योंको जैसा अमल होता है ॥९॥ हे गाधि ! भूलोकमें जो कटंजक नामा चंडाल हुआ है तिस प्रकारका वृत्तांत हुआ है सोही तुमको फुरण हुआ है सो चंडाल स्त्रीसे रहित भया स्त्रीवियोग करके देशांतरमें गया तहां कीरदेशांतरमें गया जहाँ कीरदेशका राजा भया राजकाज करता भया फिर उस चंडालके पुत्रादिक राजाके पास आय उस राजाको अपना पूर्व वृत्तांत स्मरण हुआ अपनी स्त्रीके मरण स्मरणसे वियोग दुःख हुआ तो अग्निमें प्रवेश किया ॥१०॥हे गाधि!सोही वृत्तांत तुझको जलके अंदर चित्तमें फुरन हुआ तब तुझको चंडालभावसे लेकरके अग्नि प्रवेश पर्यंत वृत्तांतके मोहसे भ्रम हुआ है॥११॥ हे गाधि ! मायाके वेगसे दृष्टि किये अनुभवित अर्थको भूल जाता है कदाचित् देखे विना भी अर्थको चित्त देखे जैसेको प्रत्यक्ष अनुभव करता है॥ १२॥ हे गाधि ! जैसे स्वप्न होता है जैसे मनोरथकी कल्पनाभी होतीहै जैसे धातुविकार करके एक चंद्रमें

दो चंद्रमाकी प्रतीति होती है चन्द्रमाका पीतवर्ण भासता है तैसेही अपने मनसे अपनेको जगत्का भ्रम होता है ॥१३॥ हे गाधि ! जैसे त्रिकालदर्शी पुरुषको पूर्व वृत्तांत और भविष्यत् वृत्तांत प्रतीत होता है तैसे तुझको चण्डालवृत्तांत प्रतीत हुआ है॥१४॥ हे गाधि! यह पुरुष है सो हम पदार्थ मेरा है आत्मवेत्ता पुरुष ऐसी कल्पनामें मग्न नहीं होता जो पुरुष आत्मवेत्ता नहीं सो ऐसी कल्पनामें मग्न होता है ॥ १५ ॥ हे गाधि ! तत्त्ववेत्ता पुरुष सबमें आत्मरूप जान करके मोहको प्राप्त नहीं होता पदार्थोंविषें भेदभावनाकोभी ग्रहण नहीं करता ॥ १६ ॥ इस कारण आत्मवेत्ता पुरुष अनेक प्रकारके सुख दुःखोंके विलास भ्रमके भोगोंमें मग्न नहीं होता, जैसे तुम्बेके पात्र जलमें डूबता नहीं है ॥ १७ ॥ हे गाधि! ज्ञानकी पूर्णता नहीं होनेसे मनके भ्रमको हटानेके लिये तू समर्थ नहीं होता है जैसे यत्नरहित पुरुष कुछ कार्य करनेको समर्थ नहीं होता ॥ १८ ॥ हे गाधि ! इस मायाचक्रका चित्त नाभिस्थान है जैसे नाभि दबानेसे चक्र नहीं भ्रमता वैसेही चित्त जीतनेसे मायाचक्र नहीं भ्रमता है ॥ १९ ॥ हे गाधि ! तू अब उठ करके हृदयरूपी पर्वतके कुंजमें चित्तकी एकाग्रताके निमित्त दश वर्ष पर्यंत सावधान बुद्धि करके तप कर तब तुझको ज्ञान प्राप्त होवैगा॥२०॥

वसिष्ठ कहते हैं।

हे रामजी! भगवान् इतना कहकर अदृश्य हुए, गाधि ब्राह्मण विवेकवशसे वैराग्य पदको प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ सर्व संकल्परहित होकरके पर्वतके कुंजमें दश वर्ष तप किया तब ज्ञानको प्राप्त हुआ ॥२२॥सो गाधि! ब्राह्मण आत्मसत्ताको पाकर आत्मानंदविषें रमण करता भया योगभावनासे भयशोकसे रहित हुआ सदा उदित जीवन्मुक्त शान्तरूप होता भया जैसे चन्द्रमा कला करके संपूर्ण होता

है तैसेही चित्तमें पूर्ण हुआ ॥ २३ ॥ इससे हे रामजी! तीर्थ दान तप क्रियाको त्याग करके कल्याणवास्ते सावधान होकर चित्तको वश कर ॥ २४ ॥ हे रामजी ! वर्त्तमान भोगको बाह्यबुद्धि करके खेद बिनाही भज भूतभोगकी नाईं भविष्यत् भोगकी भावनाको त्याग करे तो चित्त क्षीण होता है ॥ २५ ॥ हे रामजी! जो पुरुष तत्त्वज्ञानी नहीं है सो कीटोंसे गधियोंसे पशु पंछियोंसे अतिही तुच्छ है॥ २६॥ हे रामजी ! चित्त वृद्ध होनेसे आत्मज्ञता दूर जाती है जैसे बादलके चढनेसे सूर्यका प्रकाश बंद होता है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! भोगोंको नहीं भोगनेसे, आदर नहीं करनेसे शनैः शनैः चित्तको कृश करना रसको त्याग करना जसे पुराना पत्र गिरता है तैसेही चित्तभी क्षीण होता है ॥ २८॥ देहमें आत्मभावना करनेसे देह भोगके अधीन होनेसे स्त्रीपुत्रादि स्नेहसे चित्त वृद्ध होता है ॥२९॥ अहंकारके विकार करके ममताकी लीलासे यह मेरा है ऐसी भावनासे आधिव्याधिके विलाससे संसारकी स्थितिके विश्वाससे त्याग ग्रहणके यत्न करके धन रत्नके लोभ करके स्त्रियोंके स्नेह करके दुष्ट आशारूपी क्षीरपानसे भोग वासनारूपी पवनके बलसे चित्त वृद्ध होता है॥३०॥ हे रामजी! गंधमादन पर्वतमें उद्दालक तपस्वी विवेकको प्राप्त होकरके चिंतन किया ॥३१॥ किस समयमें मनको त्याग करके परम पवित्र पदमें सुमेरुशृंगमें बादलकी नाईं विश्रामको प्राप्त होवेगा ॥३२॥ भोग-वासना मेरे अंतःकरणमें कब शांत होवेगी जैसे समुद्रमें चंचल तरंग माला शांत होती है ॥३३ ॥ परम पदमें विश्रांत हुई बुद्धि करके यह किया यह करना ऐसी कल्पनाको मैं कब त्याग करूंगा ॥ ३४ ॥ संकल्प विकल्पोंका यह जाल मेरे चित्तके संगको कब त्याग करेगा? जैसे कमलपत्रको जल प्रसंग नहीं करता है॥३५॥ बहुत तरंगवाली

तृष्णा नदीको बुद्धिरूपी नावोंसे कब मैं पार करूंगा ॥३६॥ यह जगत्‌के प्राणियोंकरके करी जाती झूठी जगत्‌की क्रीडाको बालकोंकी क्रीडाकी नाईं अनादर करके कब मैं उपाहास करूंगा॥३७॥शांत हुआ है मनोजरूपी मनका व्यापार जिसका ऐसा म पर्वतकी कंदरामें निर्विकल्प समाधि बढाय करके पत्थरकी समानताको कब प्राप्त होऊंगा ॥३८॥ निराकार वस्तुका ध्यानविषें विश्रामको प्राप्त भया जो मैं मेरे शिर ऊपर वनके पक्षी तृणका आलना कब करेंगे ३९॥ ध्यान विषें एकाग्रताको प्राप्त भया जो मैं मेरे हृदयमें वनकेपक्षी पर्वतकी कंदराकी नाईं निर्भय होकरके कब विश्राम करेंगे ॥४०॥ हे रामजी ! उद्दालक ब्राह्मण इस प्रकारकी चिंताके अधीन हो वारंवार बैठ करके ध्यानका अभ्यास किया॥४१॥ विषयोंकरके चित्तरूपी मर्कट चंचल होनेसे उद्दालक मुनि प्रीतिको देनेवाली समाधानकी प्रतिष्ठाको प्राप्त नहीं हुआ ॥४२॥ किसी कालमें उद्दालकका चित्तरूपी मर्कट बाहिरके विषयसंबधको त्याग कियेसे अंतःकरणमें बहुत उद्वेगको प्राप्त हुआ ॥४३॥ किसी कालमें तिसका चित्तरूपी मर्कट अंतःकरणके विषयसंबंधको त्याग करके चंचलतासे जैसे विषपान कियेसे व्याकुलता होती है तैसे व्याकुल हुआ॥४४॥किसी कालमें तिसका मन प्रचंड सूर्यके तेज बरोबर प्रकाशमान अंदरके तेजको देख करके व्याकुल होकरके विषयोंके सन्मुख हुआ मलीनता करके ठहरा नहीं ॥४५॥ किसी कालमें तिसका मन अंदरके अज्ञानके संग करके विषयवासनाम लंपट होकरके ध्यानसे उच्चाटनको प्राप्त हुआ जैसे त्रास करके पक्षी उड जाते हैं॥४६॥किसी कालमें ध्यानके दृढ अभ्यासस तिसका मन बाहिरके तथा अंदरके विषयसंबंधोंको त्याग करके अज्ञानके अंधकारके हरनेवाले आत्म-

ज्योतिके प्रकाशकी संधिमें मग्न होकरके चिरकालकी स्थितिको प्राप्त हुआ ॥४७॥ हे रामजी! इसके अनंतर उद्दालक मुनि मनकी चंचलतासे व्याकुल होकर पर्वतमें भ्रमने लगा जैसे सूर्य सुमेरु पर्वतके चारों तरफ भ्रमता है ॥ ४८ ॥ एक कालमें उद्दालक पर्वतकी कंदरामें प्राप्त हुआ कैसी है कंदरा समस्त भूतोंको दुःखकरके प्राप्त होनेवाली है शांत भया है सबका संचार जिससे कैसी है मानो मोक्षकी दशा है ॥४९॥ सो मुनि तहां बैठता भया चित्तकी वृत्तिकी शांतिको प्राप्त हुआ जैसे पर्वतमें प्राप्त होकर बादल वर्षा करके शांत होता है ॥५०॥ सो मुनिने तहां उत्तर दिशा सन्मुख होकरके पद्मासन बांध करके अंजलि बांधकर वेदकी उपनिषदोंका पाठ किया ॥ ५१ ॥ वासनामें भ्रमते मनरूपी हिरणको फिरा करके निर्विकल्प समाधिके अर्थ इस प्रकार विचार किया॥५२॥ हे मन! मूर्खसे तुझको संसारकी वृत्तियों करके क्या अर्थ है जिस कारणसे विचारवान् पुरुष अंतकालमें दुःख देनेवाली क्रियाको सेवन नहीं करते हैं॥५३॥ हे मन ! जो पुरुष शमरूपी अमृतको त्याग करके भोगोंके अर्थ भ्रमता है सो कल्पवृक्षोंके वनको त्यागके कंटकवाले वनका सेवन करता है॥५४॥ रे मन ! तू पातालके तले जावेगा अथवा ब्रह्मलोकमें जावेगा तोभी चित्तके उपशम विना निर्वाणके आनंदको नहीं पावेगा ॥ ५५ ॥ रे मूढ मन ! यह शाब्दादिक विषयोंकी वासना निरंतर घात करनेवाली है इन्द्रिय करके निरंतर वृथा क्यों फिरता है जैसे बादलको देख देख करके मीडक फिरते हैं ॥ ५६॥ रे मूढ मन ! जिस कारणसे तुमको हमारा कहना क्या अर्थ है ? व्यर्थ है जिस कारणसे विचारवान् पुरुषको चित्तका फुरणा नहीं होता है ॥५७॥ रे मन ! मैंने चरणके अंगूठेसे लेकर शिखापर्य्यंत तिल तिल मात्र भले तेरे विचारण किया है इस

देहमें आनंदका लेश नहीं पाया तो इसमें क्यौं आसक्त हुआ है ॥५८॥ इस देहका चलना पवनकी शक्तिसे है ज्ञान तो चैतन्यके अंशसे है वृद्धावस्था और मृत्यु इसके धर्म हैं मैं इसमें किस अर्थसे स्थित हुआ हूं ॥ ५९ ॥ इसमें नेत्र इंद्रियरूपके सन्मुख होकर अपने रूप विषयको देखता है तिस कारणसे मैं इसमें कौन हूं रूपको देख करके क्यौं मोहित होकर दुःखित हुआ हूं ॥ ६०॥ इसमें त्वचा इंद्री अपने स्पर्शतत्त्व ग्रहण करनेको सन्मुख होती है मैं इसके पीछे परायेके मनको पिशाचकी नाईं क्यों उद्यत हुआ हूं ॥६१॥ इसमें जिह्वा इंद्री अपने रसतत्त्व ग्रहणको उदय हुई है मैं इष्टभोगको भोगता हूं ऐसा दुष्ट भ्रम मुझको कहांसे हुआ है ॥६२॥इसमें नीच श्रोत्र इंद्री अपने शब्दतत्त्व ग्रहण करनेको पीडित भई है मैं शब्दके दुःख करके क्यों दुःखी हुआ हूं ॥ ६३ ॥ इसमें नासिका इंद्री अपने सुगंध तत्त्वमें मग्न हुई है मैं गंधको सूँघता हूं ऐसा चौरकी नाईं सूँघनेको प्रमाण करता कौन है ॥६४॥ हे मन ! तू वासनासे हीन हो नेत्रादि इंद्रियां बाहिर अपने तत्त्वोंको प्रवृत्त होती हैं तू इनके साथ वासना करके क्यौं प्रवृत्त भया है यह वासना आनंदका कारण नहीं है ॥६५॥ तिससे हे मन ! तूभी मूर्ख है और इंद्रियांभी मूर्ख हैं वह तुम सबही बाहिरके भोगोंकी वासनाको अंतःकरणसे त्याग करके आत्मस्वरूपप्राप्तिका यत्न करो जिससे फेर दुःखको नहीं पावेंगे ॥ ६६ ॥ हे इंद्रियरूपी बालको ! तुम अपनेसे प्रकट भई तृष्णा करके आपही नष्ट हुए हो जैसे खोपडीका कीडा आपही प्रकट करी हुई खोपडी करके आपही बद्ध होता है ॥६७॥ विषकी नाईं विषयवासनाकी विषूचिका अनंत दुःखको देनेवाली है चतुराई करके जैसे होवे तैसे विषयवासनाको दूर करके इष्ट आत्मचिंतन मंत्रकी युक्ति करके आत्मस्वरूपमें सावधान होवो ॥ ६८॥ संसारके

विषयवासनाका त्याग करना जो है सो संपूर्ण भयको दूर करनेका स्थान है ॥६९॥ यह अहंकारका भ्रम आकाशके नीलवर्णकी नाईं मिथ्याही उदय हुआ है इसका फिर जो नहीं फुरणा ऐसे विस्मरणको सबसे भला मानता हूं ॥ ७० ॥ यह अहंकारके भ्रमको चिरकाल मूलसहित त्याग करके शांतरूप होकर मैं आत्मस्वरूपमें स्थित होता हूं ॥७१॥ जैसे शरद्दतुमें आकाश आप निर्मल होकरके अपनी शोभा करके आपही निर्मल शोभता है ॥ ७२ ॥ यह चित्त परमात्मारूपी अग्निमें प्राप्त होकरके अपने संकल्प विकल्परूपी अंगोंको जला करके सुवर्णकी नाईं शुद्धताको प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥ यह मनरूपी घना वन है इसके संकल्प विकल्प दोनों वृक्ष हैं तृष्णा इसकी लता है इसको विचारशस्त्रसे छेद करके आत्मारूपी मैदान पृथ्वी विषें सुख करके विहार करता है ॥ ७४॥ जिसके लिये भोग संपदा चाहिये है सो देह मेरा नहीं है मैंभी उसका नहीं हूं इस कारणसे शरीरसुखके लेश करके मेरा क्या अर्थ है ॥७५॥ जहां आत्मा प्रकाशमान है तहां मन और इंद्रियां और वासना यह नहीं फुरते हैं जैसे जहां राजा पास रहता है तहां दीन लोक रह नहीं सकते हैं ॥७६॥ सो अपने आत्माके स्थानसे मैं चलित हुआ हूं और मेरी बुद्धि भिन्न हुई है मुझको यह इंद्रियां मन देह इनका परिवार शुभ नहीं करता है ॥ ७७॥ अब मुझको निर्मलता प्रकट हुई है, आत्मसत्ता उदय हुई है और हृदयमें सत्यता और सर्वज्ञता प्राप्त हुई है सबको एकरूपता और निर्भयता प्राप्त हुई है और द्वैतकल्पना क्षीण हुई है ॥७८॥ यह भांतिसे आदि सबही सुंदर स्त्रियां मेरे हृदयमंदिरमें प्रकाशमान और स्वस्थ हैं अपने अपने सौभाग्य करके युक्त हैं, मैं कैसा हूं सबमें एक आत्मबुद्धिवाला हूं यह सब स्त्रियां मेरे हृदयकी प्यारी हैं ॥ ७९ ॥

इससे उपरांत उद्दालक मुनि ओंकारके ध्यान प्राणायाम करके पवित्र होकर समाधिके विघ्नोंको मनकी चंचलताको दूर करके आत्मस्वरूपके फुरणेसे आत्मसत्तामें मग्न हुए सविकल्प समाधिसे आत्मरूपको प्राप्त हुआ जैसे सुवर्ण कडा बन करके सुवर्णही होता है ॥८०॥ इस प्रकार सविकल्प समाधिको प्राप्त भये मुनिका चित्त भावको त्याग करके चैतन्यभावको प्राप्त हुआ जैसे समुद्रमें तरंगादिकोंको शांति होनेसे केवल एक समुद्रही समान रूप होता है ॥ ८१ ॥ ऐसे फिर समाधिके अभ्याससे सो मुनि निर्विकल्प समाधिमें स्थित हुआ एक ब्रह्मभावको प्राप्त हुआ जितनी पांच भूतोंकी मन बुद्धि अहंकारकी कल्पना और आत्मा परमात्माके भेदकी कल्पना थी सो दूर हुई जैसे महाकाश होता है तैसे शुद्ध बोधको प्राप्त होकरके ब्रह्मरूप हुआ ॥ ८२ ॥ उस ब्रह्मभावमें मुनि अखंड आनंदको पाकरके देखनेवाला पुरुष और दृश्य और दृष्टि इस भेदसे रहित अद्वैतभावको प्राप्त हुआ जैसे अमृतपूर्ण समुद्र होता है तैसे ब्रह्मानंदमें मग्न हुआ ॥ ८३ ॥ सो मुनि सिद्ध करना और साधना इससे रहित आनंदके मंदिररूपी निर्विकल्प समाधिमें छः महीने स्थित हुए जैसे सूर्य उत्तरायणमें रहता है ॥ ८४ ॥ सो मुनि आनंदसेभी परे हुए यहां आनंद और निरानंद दोनोंका फुरणा नहीं है ऐसा केवल सत्तामात्र आत्मरूप हुआ ॥ ८५ ॥ तहां सो दिव्य हजार वर्ष स्थिति पाकरके उस मुनिका मन फिर भोगवासनामें उदय नहीं हुआ जैसे स्वर्ग देखनेवालेको पृथ्वीके पदार्थ देखनेकी मनमें उदय नहीं होती ॥८६॥ सो मुनि तिस कालसे लेकर व्यवहारभी करता है तोभी चित्त करके चैतन्यसत्तामें सावधान हुआ ॥ ८७ ॥ चैतन्य तत्त्वका एक अभ्याससे महाचैतन्यरूप हुआ जैसे सूर्यका तेज सर्वत्र पृथिवीमें

एक समान होता है॥८८॥तब सो मुनि कहींभी आसक्त नहीं हुआ ऐसी पंचमी ज्ञानभूमिकासे पदार्थ कुछ भी नहीं भासता ऐसी छठी ज्ञानभूमिकाको प्राप्त हुआ चैतन्यतत्त्वकी सामान्यताके अभ्याससे जैसे सुमेरु पर्वतमें सूर्य अस्त उदयसे रहित होता है तैसे सत्ताकी सामान्यताको प्राप्त हुआ ॥ ८९ ॥ हे रामजी ! तब तैसी उद्दालक मुनिकी अवस्थाको देखकर मैं वसिष्ठ और नारदादि मुनिगण ब्रह्म विष्णु ईश्वरादि देवता तहां प्राप्त हुए ॥९०॥ हे रामजी! उद्दालक मुनि ऐसी संपूर्ण भयको नाश करनेवाली पदवीको पाकर जीवन्मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥९१॥ हे रामजी ! वैराग्यका अभ्यास करके वेदांत शास्त्रके अर्थका अभ्यास करके शुद्ध बुद्धि करके और गुरुसेवा करके उत्तम पद पाता है अथवा एक शुद्ध एकाग्र बुद्धि करके ही उत्तम पद पाता है ॥ ९२ ॥ हे रामजी ! बोध करके युक्त और एकाग्र और निर्मल ऐसी शुद्ध बुद्धि होवे तो वैराग्यादि साधन विनाभी उत्तम पद पाता है ॥ ९३ ॥ हे रामजी ! यह दोनों यत्न करके सिद्ध करने योग्य हैं, दो कौन एक समाधि और चित्त चंचलवृत्तिसे रहित करना इनसे अंतःकरणमें शीतलता होवे तो तपका फलभी होता है ॥ ९४ ॥ हे रामजी ! जैसे उन्मत्त पुरुषका नाचना उन्मत्त पुरुषको और लोगोंको कुछ चमत्कार नहीं करता है वैसेही वासना क्षीण होनेसे चित्तभी विकार नहीं करता ॥९५॥ हे रामजी ! संपूर्ण जीवोंको जो अंतःकरणमें फुरणा होता है तैसाही बाहिरभी फुरणा होता है जो अंतःकरण तृष्णाके दाहसे तपा होवे तो उसको जगत्भी वनकी अग्निके दाहसा होता है ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! नक्षत्रमंडल, पृथ्वी, पवन, आकाश, पर्वत, नदियां और दिशा यह सबही अंतःकरण तत्त्वके फुरणेसे बाहिर भी फुरते हैं ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! एक सुरघ राजा हुआ था स्वर्ण-

जट देशका स्वामी सो राजा भील था मांडवऋषिके प्रसादसे ज्ञाता हुआ सो एक समयमें उस राजाकी प्रीति करनेवाला परिघ मुनिने चिरकालसे मिला करके राजाको आकर कहा ॥१८॥ हे राजन्! यह संसारजाल भारतखण्ड भूमिमें जो जो कर्म किया है सो सो कर्म सावधान चित्तवाले पुरुषको सुख करता है और व्याकुल चित्त-वालेको दुःख देता है ॥१९॥ हे राजन्! हम तुझसे प्रश्न करते हैं तू संकल्पसे रहित परम उपशमके कल्याणको देनेवाला परम विश्रा-मके स्थान ऐसी समाधियां अब करता है या नहीं करता है॥२००॥

तब राजाने कहा—हे भगवन्! मैं तुमको पूछता हूं सर्व संकल्पसे रहित होना कल्याणको करता है अथवा समाधि चढानी कल्याण करती है ॥ १ ॥ हे भगवन्! मार्गमें चलनेसे व्यवहार करनेसे संकल्पसे रहित होना कल्याण करने योग्य है जो चित्त साव-धान नहीं होवे तो समाधि कहां होती है यह मेरा मत है ॥ २ ॥

हे मुनि! जिनके चित्त संकल्परहित होनेसे सावधान है सो पुरुष जगत्के कार्योंको करतेभी हैं तोभी आत्मतत्त्वमें निष्ठावाले हैं सो पुरुष सदा समाधिस्थ हैं ॥ ३ ॥ हे मुने! पद्मासनभी बांधे दोनों हाथोंको अंजलि बनाय रक्खे प्राणभी चढावे परंतु जिसका चित्त संकल्परहित नहीं हुआ उसको समाधि क्या करेगी ॥ ४ ॥ हे मुने! तत्त्वका बोध जो है सो संपूर्ण वासनारूपी तृणको अग्निकी नाईं नाश करनेवाला है सोही समाधि नाम करके कहा है प्राण चढा करके चुप रहना समाधि नहीं है ॥ ५ ॥ हे मुने! सावधान बुद्धि होवे विषय-वासनासे रहित होवे यथायोग्य तत्त्वको देखनेवाली ऐसी जो बुद्धि सो समाधि नाम पंडित लोगोंकरके कही गई है ॥ ६ ॥

परिघ मुनिने कहा—हे राजन्! तू निश्चय करके तत्त्वज्ञान करके प्रबोधनको प्राप्त हुआ है आत्मपदको प्राप्त हुआ है अंतःकर-

णमें शीतल हुआ है अब पूर्णिमाके चंद्रमाकी नाईं शोभता है ॥ ७ ॥

वसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीके प्रति कहते भये—हे रामजी! जीना वही दिन है आनंद करनेवाली वही क्रिया है जिसमें तत्त्वविचार होता है और हृदयरूपी आकाशमें चैतन्य चन्द्रमाकी चांदनी प्रकाशमान होती है ॥ ८ ॥ हे रामजी ! सो पुरुष चिरकाल शोच करते हैं और जन्ममरणरूपी वनके झाड हैं जिनको आत्माके देखनेमें अनादर होता है कैसे है सो पुरुष महापापों करके युक्त है ॥९॥ हे रामजी ! महात्मा पुरुषोंके सत्संगसे संसारसमुद्र तरनेमें युक्ति प्राप्त होती है जैसे मलाहसे नदी तरनेको पक्की नाव प्राप्त होती है॥१०॥हे रामजी ! जिस देशमें सत्पुरुषरूपी महावृक्ष नहीं है कैसा है ज्ञानरूपी फल करके युक्त है आनंद करनेवाली शीतल छाया युक्त है ऐसे सत्पुरुष जहां नहीं मिले तहां एक दिनभी नहीं रहना ॥ ११ ॥ हे रामजी ! संसारमें मग्न भये आत्माके उद्धार करनेमें धन भी उपकार नहीं करते हैं मित्र और शत्रु और बांधव कोई उपकार नहीं करते हैं ॥१२॥ हे रामजी ! एक शुद्ध भया मनरूपी मित्र सदा सहचारी है तिस करके विचार करनेसे आत्माका उद्धार होता है ॥१३ ॥ हे रामजी ! आत्मा सर्व देवोंका ईश्वर है सो इतना मात्र विचारनेसे प्राप्त होता है किससे यह देह काष्ठ लोहाके बराबर जड जानना और आत्मा देहसे भिन्न चैतन्यरूप जानना ॥१४॥ हे रामजी ! एक भास नामा तपस्वी हुआ है उसका विलास नामा तपस्वी मित्र था विलास चिरकालसे भास तपस्वीको मिलकरके कहा ॥ १५॥ हे रामजी ! तुमको इस जगत्में आनंद है ना ? और तेरी बुद्धि चिंताज्वरसे रहित है ना? और तू अब आत्माको जानता है ना ? और तेरी पढी और अभ्यास की हुई विद्या अब फल देती है ना ? और अब तूं अब कुशली है ना ? ॥ १६ ॥

भासने कहा—हे विलास ! हे साधो !! तेरा आगमन मुझे आनंद देता है आज तुझकोमैंने आनंद करके देखा है तू मुझको मान करता है और न हमारा कुशल पूछता है परंतु यह संसारमें स्थित हुए हमको कुशल कहाँ है॥ १७ ॥ जबलग आत्मा नहीं जाना जबलग चित्तकी भूमिका क्षीण नहीं हुई तबलग संसार नहीं तरा तबलग हमको कुशल कहाँ है ॥१८॥जबलग चित्तसे प्रकट हुई आशा संपूर्ण छेदी नहीं जैसे दात्री करके झाड छेदे जाते हैं तबलग कुशल कहाँ है ॥१९॥ जबलग ज्ञान उदय नहीं हुआ तबलग समता उदय नहीं हुई जबलग आत्मबोध नहीं हुआ तबलग कुशल कहाँ है ॥२०॥ हे रामजी ! सो दोनों इस प्रकार करके आपसमें कुशल प्रश्न करते भये समय करके निर्मल ज्ञानको पाइकरके मोक्षको प्राप्त हुए ॥२१॥ हे रामजी ! संगती दो प्रकारकी है—एक बंधन करनेवाली है,एक मोक्ष देनेवाली है-मूढोंकी संगति बंधन करनेवाली है तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकी संगति मोक्ष देनेवाली है ॥ २२ ॥ हे रामजी ! जिनका अंतःकरणसे प्रसंग है तिनका संगम अग्नि बराबर देने करता है जिनका अंतःकरणसे प्रसंग नहीं है तिनका संग अमृतकी नाईं मोक्ष देता है ॥२३॥ हे रामजी ! सब पुरुषने सबके साथ सर्वत्र रहना सर्व काम भोगविषें रतभी रहना परंतु मन सबसे असंग करना ॥ २४ ॥ हे रामजी ! यह मन कहीं भी स्थित नहीं होता है न चेष्टामें न चिंतामें न वस्तुमें न आकाशमें न पातालमें न आगे न पीछे न दिशामें न भीतरके न बा[ह]रके विशाल भोगोंमें न इंद्रियोंकी वृत्तिमें न बाहिर प्राणोंमें न कपालमें न तालु स्थानमें न भ्रूमध्यमें न नासाग्रमें न नेत्रके तारामें न तारामंडलमें न अंधकारमें न प्रकाशमें न हृदयाकाशमें न जाग्रतमें न स्वप्नमें न सुषुप्तिमें न निर्मलमें न भोजनमें न जलपानमें न रक्तपित्तादिकमें न

चंचलतामें न स्थिरतामें न आदिमें न मध्यमें न अंतमें न दूरमें न समीपमें न पदार्थमें न बुद्धिमें न शब्द स्पर्श रूप रस गंधमें न मोहमें न आनंदवृत्तिमें न आवागमन चेष्टामें न कालकी कल्पनामें कहींभी स्थिर नहीं होता है ॥२५॥ हे रामजी ! यह मन केवल चैतन्य सत्तामें आलंबन करे तो सर्वत्र रससे रहित होकरके आत्मा-विषे रत होवे तो स्थिर होता है ॥ २६ ॥ हे रामजी ! जगत्का सत्यरूप और असत्यरूप अंतःकरण चैतन्यमें भासता है और आत्माका केवल एक रूप ज्ञान होनेसे संपूर्ण आत्मरूप भासता है जैसे सूर्यके प्रकाश होनेसे सर्वत्र प्रकाश ही होता है ॥२७॥ हे रामजी ! अनेक प्रकारके भूतोंके भेदकारण अंतःकरणही है आत्मा सर्वव्यापी होनेसे कारण है तौभी कारण नहीं है किससे आत्मा सर्वत्र समान सत्तावाला है ॥ २८॥ हे रामजी! जिसने अंतःकरणके उप-शम पाकरके निराशता भूषण करके अपने स्वरूपको शोभित किया है तिसको सप्तद्वीपा पृथिवी गौके खुरके बराबर तुच्छ होती है सुमेरु पर्वत मृत्तिकाके पिंड बराबर तुच्छ होता है दश दिशाका मंडल एक संपुटके बराबर तुच्छ होता है ॥ २९ ॥ हे रामजी ! नैराश्यवाले उत्तम पुरुषोंने लेना देना विहार ऐश्वर्यादिक जगतकी क्रिया अयत्नसे त्याग नहीं कर दी है ॥ ३० ॥ हे रामजी ! आत्मज्ञानी पुरुष बाला स्त्रीको आलिंगन करता है तौभी आत्मा ज्ञानकी उदारता करके उसके मनसे भस्मकी नाईं कामदेवके बाण आपही शिथिल होते हैं ॥ ३१ ॥ हे रामजी! जैसे व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुषके व्यसनको मनमें धारण करती है और घरके काममें तमाम दिवस लगी रहती है परंतु मनमें परपुरुषके संगको त्याग नहीं करती है तैसेही जो पुरुष परमतत्त्वमें विश्रामको प्राप्त हुआ है सो व्यवहार भी करता है तोभी उसको इंद्रादिक देवता भी परम

तत्त्वसे चलानेको समर्थ नहीं होते हैं॥३२॥ हे रामजी! केते पुरुष व्यवहारमें स्थित हैं सुन्दर वस्त्रभी धारण करते हैं परंतु जिनका अंतःकरण उपशम करके शीतल हुआ है सो पुरुष लोगोंको शिला समान जड और मूढ जाने जाते हैं॥ ३३ ॥ हे रामजी! तत्त्वज्ञान करके जौनसी भोग संपदा सेवन कर दिया है सो अंतमें दुःख देती है ॥ ३४ ॥ हे रामजी! यह संसार सन्तजनोंके साथ विचार करने योग्य है विचार करके देखने योग्य है इस संसारकी व्यवहार क्रीडा विचारसे शोभा देती है विचार विना दुःख देती है ॥३५॥ हे रामजी! यह संसारके भोग सर्पोंकी नाईं भयको और मृत्युको देनेवाले हैं और विचारसे भोगे तो आनंद देते हैं जैसे सर्प और जीवोंको भय देते हैं परंतु गरुड सर्पोंको भक्षण करता है तौभी गरुडको कुछ नहीं करता ॥ ३६ ॥ हे रामजी ! यद्यपि सूर्यका तेज शीतल हो जावे और चन्द्रमाका मंडल तप्त हो जावे तथापि उपशमवाले जीवन्मुक्त पुरुषोंको कुछ आश्चर्यरूप ज्ञान नहीं होता है ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! जगत्में जितनी आश्चर्यरूप अथवा साधारण लीला होती है सो सभी परमात्माकी शक्तिसे फुरती है तत्त्वविचारी पुरुष ऐसे जान करके देखनेमें इच्छा नहीं करता है ॥ ३८ ॥

श्रीरामचंद्रजीने वसिष्ठजी प्रति प्रश्न किया ।

हे भगवन्! यह प्राण और इंद्रियें देहमें निरंतर चलती हैं जैसे पक्षी आकाशमें उडते हैं, इन प्राणोंका और इंद्रियादिकोंका रोकना कैसे बने है सो तुम मेरे प्रति कृपा करके कहो॥ ३९ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीप्रति कहते हैं।

हे रामजी! शास्त्रके विचारसे संतजनोंके सतसंगसे वैराग्यके अभ्याससे और योगकी युक्तिसे और संसारकी वृत्तियों विषें

विश्वास त्यागनेसे अपने इष्ट देवताके ध्यानसे और सर्वत्र एक आत्माका तत्त्व जाननेसे और प्राणायामके दृढ अभ्याससे प्राणादिकोंका चलना रोका जाता है ॥४०॥ हे रामजी ! ओंकारको १६ सोलह बार उच्चारण करना दाहिनी नासिका, दाहिने हाथके अंगूठेसे बंद करनी और पवनको चढाना यह पूरक प्राणायाम कहा है और ओंकारको चौसठ ६४ बार उच्चारण करना दो नासिका बंद करके पवन रोकना यह कुंभक प्राणायाम कहा है और ओंकारको बत्तीस ३२ बार उच्चारण करना दाहिनी नासिका करके पवन उतारना यह रेचक प्राणायाम कहा है उसीका द्विगुण त्रिगुण करके बढा लेना इस प्रकार करके प्राणोंका चलना रोका जाता है ॥४१॥ हे रामजी ! प्राणायाम करनेमें ओंकारकी मात्रा तीन हैं उनके देवता ब्रह्मा विष्णु रुद्र, तीन अवस्था जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति और तीन प्रकारका अभिमानी जीव है। विश्व तैजस प्राज्ञ इससे लेकर औरभी बहुत अर्थ विचारना शास्त्रोंमें आचार्य लोगोंने कहा है सो योग करनेवाले पुरुषने गुरुमुखसे अभ्यास करना यह विस्तारभयसे कठिनता करके वार्त्तिकमें नहीं लिखा है ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! इस प्रकारके प्राण रोकनेके उपाय बहुत हैं अनेक आचार्योंके मुखोंसे प्रकट हुए हैं तिनको अपने अपने बुद्धिबल करके करनेसे प्राणोंका चलना रोका जाता है ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! योगकी युक्तियां अभ्यास करके दृढ हुई तो संसारके जीतनेका उपाय हो जाता है ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! सो युक्तियां अभ्यासे दृढताको प्राप्त होवें और वैराग्य करके युक्त होवें और वासनाका जो रोकना होवे तो प्राणायाम सफल होता है ॥ ४५ ॥ हे रामचंद्रजी ! प्राणायामके अभ्याससे प्राणोंका चलना क्षयको प्राप्त होनेसे मनभी शांत होता है तो केवल निर्वाणमात्र शेष रहता है॥४६॥हे रामजी! किया है विशाल

विचार जिसने तिसको मन और भोगादिक जो शत्रु हैं सो अल्प प्रमाणभी भेद नहीं कर सकते हैं जैसे मंद मंद पवन पर्वतको नहीं हिला सकता है ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! संवर्त्तगीतामें संवर्त्तने कहा है । रे मन पिशाच ! तू तृष्णारूपी पिशाचनी युक्त काम क्रोधादि यक्षोंसे संयुक्त मेरे देहरूपी घरसे बाहिर निकल ॥ ४८ ॥ रे मन ! तू बडा ठग है और जड है और प्रेतरूप है तुझे मेरे देहसे निकालनेसे मेरा देहरूपी घर अब विवेक संतोष धैर्यादिक संतजनोंके सेवने योग्य हुआ है ॥ ४९ ॥ अब मेरा मन मृत हुआ है और चिंताभी विचार मंत्र करके मृत हुई है और अहंकाररूपी राक्षसभी मृत हुआ है अब मैं शमताको प्राप्त हुआ हूं अब केवल बल स्वस्थ होकरके रहता हूं ॥ ५० ॥ अब मैं एक अद्वितीय और कृतकृत्य हुआ हूं और नित्य निर्मलरूप हुआ हूं और निर्विकल्प चैतन्य मेरा नाम है ऐसा जो मैं हूं मेरे ताईं मेरी नमो नमन नमस्कार है ॥ ५१ ॥ न मुझको आशा है न मेरे कर्म हैं न मेरेको संसार है न कर्तृभाव है न संदेह है न देह है ऐसे मुझको मेरा नमस्कार है ॥ ५२ ॥ मैं जगतका आदि हूं जगत्की रचना करनेवाला हूं मैं चैतन्यरूप हूं चौदह भुवन मैं हूं मेरा अंतर कहींभी नहीं है मैं सर्वत्र पूर्ण हुआ हूं ऐसे मुझको मेरा नमस्कार है ॥ ५३ ॥ इति संवर्त्तगीतायाम् । हे रामजी ! विंध्याचल पर्वतके कुंजमें वीतहव्यमुनिको विचारसहित तीन शतवर्ष निर्विकल्प समाधि हुई तिससे उपरांत प्रारब्धशेष करकेजीव चैतन्य मनोरूप होकरके जीवन्मुक्त दशा करके कैलासे पर्वतमें कदंब वृक्षके तले शत वर्ष मुनिभाव हुआ बहुरि शतवर्ष विद्याधरभाव हुआ. सत्ययुग त्रेता द्वारपर कलियुग इन चारों युगोंका एक युग होता है ॥ ५४ ॥ सो मुनि पांच युग प्रमाण इन्द्रभावको प्राप्त हुआ फिर कल्प ब्रह्माका दिनप्रमाणलों शिवका गण हुआ फिर सूय-

मंडलमें प्रवेश किया सूर्यकी आज्ञा करके सूर्यका गण पिंगल नामा तिसमें प्रवेश करके इतना विलास प्रारब्धशेष करके मनके फुरणेसे समाधिमें अनुभव किया फिर अपने नख करके देह पीडित होनेसे फिर देहमें प्रवेश करके विंध्य पर्वतमें एक दिनमात्र यह संपूर्ण विलास अनुभव करता भया ॥ ५५ ॥ सो मुनि दिनके अंतमें मनका समाधान करनेको एक विशाल विंध्यपर्वतकी कंदरामें फिर प्रवेश किया ॥ ५६ ॥ सो मुनिने अपने समाधानको नहीं त्याग किया इंद्रियोंकरके मन करके जो कुछ पूर्वकालमें उत्तरकालमें देखा है तिसको चित्तमें कल्पना करता भया ॥ ५७ ॥ मैंने इंद्रियोंका गण पहिलेही हार किया था अब विस्तार हुई चिंताकरके फिर उदय भया तिसको मैं फिर परिहार करता हूं॥५८॥ यह जगत् है अथवा नहीं है ऐसी कल्पनाको कोमल लताकी नाईं तोडकरके शेष रही आत्माकी सत्ता मात्रमें स्थित होता हूं जैसे अचल पर्वतके शिखरमें चढ करके निर्भय होकरके निवास करदिया है ॥ ५९ ॥ उदय भयेमें अस्त भये जैसा अस्त भयेमें उदय जैसा समदृष्टि होकरके समरसके आभास युक्त स्वच्छताको प्राप्त होकरके स्थित होता हूं ॥ ६० ॥ जाग्रत् भया सुषुप्तकी नाईं सुषुप्त भया जाग्रत्की नाईं तुरीय पदवीको आलंबन करके अचल होकरके स्थित होता हूं ॥ ६१ ॥ पर्वतकी नाईं एकांतमें अचल होकरके स्थित होता हूं अंतःकरण करके सर्वत्र अचल स्थित होता हूं आत्मसत्ता करके सर्वत्र समान स्थित होकरके संदेह रोगसे रहित होकरके स्थित होता हूं ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! सो वीतहव्य मुनि इस प्रकार आत्माके समाधानमें षट् (छः) दिन रहा तिसके अनंतर फिर आत्मबोधको प्राप्त हुआ ॥ ६३ ॥ सो फिर जीवन्मुक्त दशा करके चिरकाल स्थित हुआ पहिले

सरीखा फिर उद्वेगको नहीं प्राप्त हुआ और हर्षकोभी नहीं प्राप्त हुआ ॥ ६४ ॥ तिस वीतहव्य मुनिको चलनेको बैठनेको स्थित होनेको हृदयमें मनके साथ चित्तकी कथा होने लगी ॥६५॥ हे मन ! हे दुष्ट इंद्रियोंके स्वामिन् ! तू अब देख तैंने शम उपाय करके आनंदका विशाल सुख कैसा पाया है ॥६६॥ हे मन ! तिस कारणसे ऐसी रागरहित दशाको आलंबन करके आपही चंचलता त्यागना तू चलनेवालियों विषें बडा वेगवान् है ॥६७॥ भो भो इंद्रियरूपी चौरो ! तुम्हारी अब आशा हत हुई है और तुम्हारा नामभी न रहा है यह आत्मा तुम्हारी नहीं थी और तुमभी आत्माके नहीं थे तुम आत्माकी चोरी करते थे अब आत्माकी सावधानता करके तुम नष्ट हुए हो ॥ ६८ ॥ हे इंद्रिय चौरो ! तुम अब चले जाओ अब तुम्हारी मैंने आशा विफल की है तुम बडे ठेढे आशयवाले हो अब तुम आत्माके ग्रहण करनेको समर्थ नहीं हो ॥६९॥ हे इंद्रिय चौरो ! पहिले तुमको यह वासना थी क्या हम ही आत्मा हैं सो अब भूल गई है जैसे रज्जु जाननेमें सर्पकीभी भ्रांति नष्ट होती है॥७०॥ जौनसी अनित्य वस्तुमें आत्माकी भावना होवे सोही अवस्तुमें वस्तुकी भावना है सो विचार विना होती है अब विचार करके क्षीण भई है ॥ ७१ ॥ हे इंद्रिय चौरो ! तुम और स्वभाववाले हो हम और स्वभाववाले हैं ब्रह्म और स्वभाव है कर्त्ताका भाव और स्वभाव है भोक्ता और स्वभावका है ग्रहण करनेवाला और स्वभावका है यहां दोष कौन है और कैसा है और किसको है सो सबही अज्ञानसे है सो संपूर्ण भ्रम अब ज्ञानते नष्ट भया है ॥ ७२ ॥ जैसे काष्ठ बनमें और होता है और रज्जु वांसकी अथवा चर्मकी होती है वापी जलोंकी होती है और फल वृक्षोंके होते हैं यह सब सामग्री भिन्न भिन्न है और गुणज्ञ जो है सो सब गुण रसको

भोगते हैं ॥७३॥ इस प्रकारकी यह सामग्री दैवयोग करके मिल करके कार्य सिद्ध करती है तैसे हम तुम सब भिन्न भिन्न हैं अज्ञानसे हमारा तुम्हारा संबंध हुआ है सो अज्ञान अब नष्ट हुआ है ॥ ७४ ॥ जो मुझको पहिले स्वरूपकी विस्मृति भई थी सो अब विस्मृति विस्मरण हुई है स्वरूपकी स्मृति अब प्रकट स्मरण हुई है ॥७५॥ अब मुझको जो सत्य है सो सत्य भासता है और जो असत्य है सो असत्य भासता है असत्य भ्रम क्षीण हुआ है और सत्यरूप स्मरण हुआ है ॥ ७६ ॥ हे रामजी ! सो वीतहव्य मुनि इस प्रकारके विचार करके बहुत वर्षोंके गण मोक्षचिंतनमें रहता भया ॥७७॥ हे रामजी ! वीतहव्य मुनिकी मूढता दूर हुई यथार्थ पदार्थोंकी दृष्टि हुई ध्यानको अवलंबन करके सुखी होकरके निवास किया ॥७८॥ वीतव्य मुनि मन त्याग करने और ग्रहण करनेकी दृष्टिसे रहित हुआ ॥ ७९ ॥ वीतहव्य मुनि विदेह मुक्तिके भावको प्राप्त हुआ जन्म कर्मोंका अंत हुआ संसारका संग त्यागनेकी इच्छा हुई ॥८०॥ हे रामजी ! सो वीतहव्य मुनि पर्वतकी कंदरामें पद्मासन बांध करके स्थित हुआ अपने आत्मामें आपही कहता भया॥८१॥हे राग ! तू अब अपने रागभावको त्याग करके चला जा। हे द्वेष ! अब तू द्वेषको त्याग जा तुम्हारे करके मैंने संसारमें बहुत क्रीडा की है हे भोगो!तुमको मेरी नमस्कार है तुम्हारे करके मैंने संसारमें सुखभोगा है. हे कर्मभोग सुख!तुझको नमस्कार है जिससे मैंने कोटिशत जन्म अपना स्वरूप भुलाया है॥८२॥हे संसारके दुःख ! तुझको नमस्कार कि तुझसे संताप पाकरके मैंने आत्माका स्वरूप ढूंढा है इस कारणसे हे दुःख ! तैंने मुझे मोक्षमार्गका उपदेश किया है तू दुःख नामकरके मेरा मित्र है हे देह!तुझको नमस्कार है तूभी मेरामित्र है जिस कारणसे

संसारमें तेरा जीना साररहित है इस कारणसे मैंने अपनी आत्मपदवी पाई है ॥ ८३ ॥ हे देहकी स्थिति ! तुझको नमस्कार है अब हम तेरे प्रसादसे आत्माकी पदवीको जाते हैं ॥८४॥ प्रयोजनके आधीन जीवोंकी बहुत विषम गति है सैकडों जन्म पाकरकेभी देहके साथ वियोग होता है हे मित्र देह ! जिस कारणसे मैंने तेराभी त्याग किया है तू मेरा चिरकालका बंधु है तैंनेही आत्मज्ञानके वशसे अपने विषें क्षीणता धारी है आत्मज्ञान पाकरके तैंने अपना नाश किया है दूसरा देह करके तू नष्ट हुआ है तैंने ऐसा मान करके अपना नाश अंगीकार किया है इससे तेरेको नमस्कार है ॥८५॥ हे तृष्णे! मैं अब शांतिको प्राप्त हुआ हूं अब तू अकेली सुकने लगी है तू अब दुःख न कर मेरा तुझे नमस्कार है अब मैं आत्मपदको जाता हूं ॥ ८६ ॥ हे काम ! हे महाराज! मैं अब तुझसे उलटा हुआ हूं यह मेरा अपराध क्षमा करने योग्य है मुझमें उपशम दोष हुआ है तू मुझको आज्ञा कर मैं अब मंगलपदको जाता हूं ॥ ८७ ॥ हे तृष्णे ! हे मातः !! अब चिरकालसे चिरकाल पर्यंत आत्मयोगके दोष करके निश्चय करके मुझको तेरा वियोग हुआ है अब पिछले समयकी तुझको प्रणाम है ॥८८॥ हे सुकृत! हे पुण्य!! देव!!! मेरा तुझको नमस्कार है तैंने मुझको नरकोंसे निकास करके स्वर्गोंमें युक्त किया है ॥८९॥ हे पापवृक्ष! तुझको मेरा नमस्कार है कैसा है तू दुष्टकर्मरूपी क्षेत्रमें प्रकट हुआ है नरकही तेरी शाखा है नरकपीडा तेरे पुष्प हैं॥९०॥ हे मोह ! हे भाई !! तुझको भी मेरा प्रणाम है तू आजसे लेकर अदृश्य होवेगा तुझसे मैंने अनेक मूढियोंने भोगी है ॥९१ ॥ हे कंथे! तेरे ताईं मेरा नमस्कार है तू अंधकारविषे कंदरामें सहाय

करनेवाली है हे कंदरे ! तेरे ताईं नमस्कार है तू समाधिमें सहाय करनेवाली है. हे शांति ! तुझको नमस्कार है तू मुझको संसारके मार्गमें खेदयुक्त अवस्थामें विश्राम देनेवाली है सर्वत्र सहाय करनेवाली है. हे क्षमे ! तुझको नमस्कार है तू लोभादिक दोषोंको हरनेवाली है मैं सर्व संकटोंकरके खेदको प्राप्त हुआ हूं दोषोंसे भागता हूं शोकनाशके वास्ते तूनेही सहाय मुझे किया है ॥ ९२ ॥ हे दंडकाष्ठ ! तू संकटमें ऊंची नीची पृथ्वीमें कुंजोंमें हाथको अवलम्ब देनेवाला है ॥९३॥ हे देह ! तूभी अपनी अस्थियोंका पिंजरा रक्त मांसका पिंड नाडियां आंदरोंके जालको लेकर चला जा ॥९४॥ जिनसे जलोंको क्षोभ होता है ऐसे त्रिकाल स्नानोंको प्रणाम है संसारके अनेक व्यवहारोंको और अनेक प्रकारके मरणोंकोभी प्रणाम है तुम मेरे सबही पुराने मित्र हो ॥ ९५ ॥ अब प्राणभी चलेंगे प्राणोंकोभी प्रणाम है तुम्हारे साथ मैंनेभी बहुत योनियोंमें भ्रमण किया है पर्वतोंके कुंजोंमें और लोकांतरोंमें देशांतरोंमें नगरोंमें अनेक प्रकारोंकी मार्गयात्रामें विश्राम किया है स्थिति करी है यात्रा करी है ॥९६॥ यह ब्रह्मांडमें सो नहीं है जो मैंने तुम्हारे साथ नहीं किया है और करने बाकी रहा है गमन किया है नहीं गमन किया है दिया है और नहीं दिया है आलंबन किया है नहीं आलंबन किया है अब तुम अपनी दिशाको जाओ मैं अपनी दिशाको जाता हूं अब हमारा तुम्हारा संबंध हो रहा है ॥९७॥ जितने संग्रह किये हैं सो क्षयकरके अंतको प्राप्त होते हैं ऊंची पदवी संपदाकी चढाई उतरनेसे पात होनेसे अंतको प्राप्त होते हैं संयोग इष्ट जनोंका समागम वियोग करके अंतको प्राप्त होते हैं यह संसारका मार्ग है ॥९८॥ यह नेत्रोंका प्रकाश सूर्यमंडलमें जावे नासिकाकी गंध लेनेकी शक्ति वनके पुष्पोंमें चली जावे प्राण पवनका चलना

वायुमें लीन होवे कर्णोंका शब्द श्रवणकी शक्ति आकाशमंडलमें चली जावे ॥ ९९ ॥ मेरी जिह्वाकी रस ग्रहणकी शक्ति चंद्रमंडलमें चली जावे हे रामजी ! तिसते उपरांत वीतहव्य मुनि अज्ञान मात्रकोभी त्यागन करता भया प्रातःकालके आकाश जैसा निर्मल होता भया ॥४००॥ तिसको तब केवल प्रकाशमान तेज भासता भया सो मुनि क्षणमात्र तेजको विचारके तेजके फुरनेकोभी त्याग नहीं करता भया ॥ १ ॥ फिर मन करके तिस अवस्थाको लांघकर क्षणमात्रमें कालकी कल्पनाको लांघता भया फिर केवल चैतन्यका फुरणा मात्र हुआ फिर शब्दकी पश्यंती पदको प्राप्त होकरके सुषुप्तिकी प्राज्ञ अवस्थाको प्राप्त होकरके पर्वतकी नाईं अचल हुआ ॥ २ ॥ फिर तुरीय पदको प्राप्त हुआ फिर आनंदसे रहित और आनंदमय हुआ सत्तासे रहित और सत्तामय हुआ किंचिन्मात्रसे निहकिंचिन्मात्र हुआ न प्रकाशरूप न तमोरूप हुआ न चैतन्यरूप और अचैतन्यरूप हुआ यहां नाना प्रकरणही हैं ऐसी श्रुतिके निषेध पदवीको प्राप्त होकर वाणीके और मनके अगोचर हुआ ॥३॥ तब सो सर्वत्र समान और सर्व व्यापी और परम पवित्र और सर्व भावोंके अंतर्गत सबसे रहित हुआ ॥ ४ ॥ जो शून्यवादियोंका शून्य है ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंका ब्रह्म है विज्ञानवादियोंका विज्ञान है सांख्यदृष्टिवालोंका पुरुष योगवादियोंका ईश्वर शिवाद्वैतवादियोंका अद्वैत शिव कालवादियोंका काल है आत्मवादियोंका आत्मा है अनात्मवादियोंका अनात्मा है मध्यमवादियोंका मध्यमहै॥५॥समचित्तोंका समरूप हैजो सर्व शास्त्रोंका सिद्धांत है जो सबके हृदयमें विराजमान है जो सर्वरूप है सर्व जगत है जो कुछ कहनेमें श्रवणकरनेमें आवे सो वीहतव्य मुनि हुआ ॥६॥ तिससे परे उत्तम नहीं है जो तेजाकोभी प्रकाश करता है और अनुभवमात्र है जो

एक है और अनेकरूप है सर्व जनोंके रंजन करनेसे नहीं रंजन करनेसे रहित है जो सर्वरूप है और सर्वरूपसे रहित जो जो कुछ है सो २ कुछ नहीं है सो सो वीतहव्य मुनि हो चुका ॥ ७ ॥ जो जन्मसे रहित है और जगत्से रहित है जो एक है और अनेक हैं निर्मल है कालसहित कलारहित है आकाशसेभी निर्मलरूप है ऐसा ईश्वररूप क्षणमात्र करके स्थित हुआ ॥ ८ ॥

इति वीतहव्योपाख्यानम् ।

हे रामजी ! जो यह संपूर्ण मैंने तेरे ताईं पहिले वर्णन किया है और अब भी वर्णन करता हूं और आगेभी वर्णन करूंगा सो संपूर्ण त्रिकालदर्शी जो मैं हूं चिरकाल जीवनेवाला हूं मैंने जो कुछ विचारा है सो सब मैंने देखा है सो तेरे प्रति कहा है ॥ ९ ॥ हे महामते ! हे रामजी ! तू इस निर्मल दृष्टिको धारण करके ज्ञानको प्राप्त हो ज्ञानसे मुक्ति प्राप्त होती है ज्ञानसे अज्ञान क्षय होता है ज्ञानसे परम सिद्धि प्राप्त होती है ज्ञानसे दुःख नष्ट होता है और किसीसे सिद्धि नहीं होती है ॥ १० ॥ हे रामजी ! वीतहव्य मुनि ज्ञान करके संपूर्ण अज्ञानदशाको दूर करके सिद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥

श्रीरामजीका प्रश्न है । हे ब्रह्मविदांवर ! जीवन्मुक्त देहधारियोंको आकाशमें उडने आदिकी शक्ति कैसे नहीं देखी है यह मुझसे कहो ॥ १२ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं । हे रामजी ! जो आकाशगमनादिक सिद्धिका समूह है सो संपूर्ण क्रियाका वस्तुका स्वभाव है सो आत्मवेत्ता पुरुषोंने नहीं माना है ॥ १३ ॥ हे रामजी ! जो आत्मवेत्ताभी नहीं है और मुक्तभी नहीं हुआ है तौ भी द्रव्यशक्ति, कर्मशक्ति, क्रियाशक्ति औ कालशक्तिसे आकाशगमनादि सिद्धिको प्राप्त होता

है आत्मवेत्ता पुरुष इस सिद्धिको आदर नहीं करते हैं ॥१४॥ हे रामजी ! आत्मवेत्ता पुरुषोंका यह विषयभोग नहीं है आत्माविषे ही रत होते हैं आत्मविचार करके आत्मज्ञानके सुखमें तृप्त रहते हैं अविद्याके विलासमें प्रवृत्त नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ इतने जगत्के योगसिद्धि आदिक भाव हैं, तत्त्ववेत्ता पुरुष तिनको अविद्यासे प्रगट भयेको जानते हैं जिन्होंने अविद्या त्यागी है और आत्मवेत्ता हैं सो इनमें प्रीति कैसे करे है॥१६॥हे रामजी ! द्रव्यकी युक्ति देशकी युक्ति क्रियाकी युक्ति कालकी युक्ति यह सब युक्ति भली है तोभी परमात्मपदकी प्राप्तिमें नहीं उपकार करती है ॥ १७ ॥

श्रीरामचंद्रजी श्रीवसिष्ठजी प्रति प्रश्न करते हैं।

हे ब्रह्मन् ! चित्तका अस्त होनेसे मैत्री करुणादिक उत्तम गुण किसको और किस प्रकार करके फुरण होते हैं यह चित्तके धर्म हैं चित्त विना कहां फुरण होते हैं ॥ १८ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजी प्रति कहते हैं।

हे रामजी ! चित्तका नाश दो प्रकारका है एक स्वरूपसहित है और एक स्वरूपरहित है जीवन्मुक्तको स्वरूपसहित है और विदेहमुक्तको स्वरूपरहित है ॥१९॥ हे रामजी ! संसारकी सुखदुःखोंकी दृष्टि जिस धीर पुरुषको समदृष्टिसे आत्मचिंतनसे नहीं चला सकती है जैसे श्वासके पवन पर्वतको नहीं चला सकते हैं तिस पुरुषके चित्तको हमलोग नष्ट हुआ जानते हैं ॥ २० ॥ सो यह है इसमें इस प्रकारकी चिन्ता जिस पुरुषको व्याकुल नहीं करती है उसके चित्तको नष्ट हुआ मानते हैं ॥ २१ ॥ जिस पुरुषको आत्माकी कृपणता और उद्यम और मद और ईर्ष्या और हर्ष भिन्नवृत्ति नहीं करते हैं तिसके चित्तको नष्ट हुआ जानते हैं ॥ २२ ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्त पुरुषको मनोनाश होनेसे अन्तःकरणरूपी

हिमाचलमें मैत्री आदि गुणोंकी संपदा वसंत ऋतुमें वृक्षोंके नये दलोंकी नाईं आपही प्रकट होती है ॥ २३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका प्रश्न वसिष्ठजी प्रति ।

हे ब्रह्मन् ! यह संसार नाम करके दुःखकी लता है वह कैसी है अत्यंत विस्तार स्वरूपवाली है इसके मूल दृढ प्रकट हुए हैं मोहरूपी जलके सिंचनेसे वृद्ध हुई है इसका बीज क्या है उस बीजका भी बीज क्या है और बीजके बीजकाभी क्या बीज है सो मुझको कहो॥२४॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजी प्रति कहते हैं।

हे रामजी ! अन्तःकरणमें लीन हुए हैं उत्पत्तिके महारंभ जिसके, शुभ अशुभ कर्म महाअंकुर हैं जिसके ऐसा शरीरही संसारलताका बीज है ॥२५॥ हे रामजी ! उत्पन्न होने और नाश होनेकी दशाका भंडार है दुःखरूपी रत्नोंका संपुट है और आशाके वशसे प्रवृत्त होता है ऐसा चित्तही शरीरका बीज है ॥ २६ ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी वृक्ष कैसा है नाना प्रकारकी वृत्तिरूपी लताको धारण करता है इसके दो बीज हैं एक प्राणोंका चलना है दूसरी दृढ भावना है ॥२७॥ हे रामजी ! जिस कालमें नाडी मार्गमें प्राण नहीं चले तो फुरण होनेके अभावसे चित्त अंदर नहीं रहता है ॥२८॥ हे रामजी ! दृढ भावना करके आदि अंतकी विचारणा त्याग करके पदार्थका जो ग्रहण करना सो वासना कही है ॥२९॥ हे रामजी ! पदार्थकी भावनाके तीव्र वेगसे वासनाका निरंतर प्रवाह होता है तो और संपूर्ण ज्ञान भूल जाता है ॥ ३० ॥ हे रामजी ! इस चित्तके दो बीज हैं प्राणोंका चलना और वासना इन दोनोंमें एक क्षीण होनेसे दोनोंही शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! वासनाके वशसे प्राण चलता है प्राणके वशसे वासना

चलती है यह दोनों चित्तवृक्षके बीज और अंकुर हैं ॥३२॥ हे रामजी ! हृदयमें संवेदनके फुरणेको पाकरके प्राणका चलना और वासना दोनोंउदय होते हैं संवेदनको फुरणाही इन दोनोंका बीज है ॥ ॥३३॥ अहंभावका फुरणा त्यागनेसे प्राणका चलना और वासना दोनों मूलसहित नष्ट होते हैं ॥३४॥ हे रामजी ! अहंभावही फुरणेका बीज है अहंभाव विना फुरणा नहीं होता है जैसे तैल विना तिल नहीं रहता है॥३५॥ हे रामजी!अहंभावरूपी वस्तु अवलंबन जिसको नहीं है सो पुरुष फुरणेसे रहित हुआ है सो चाहे हजारों कार्य करे तोभी निर्विकार होता है ॥३६॥ हे रामजी!जिसका हृदय अहंभाव करके किंचित् मात्रभी लिप्त नहीं होता है उसका फुरणा सत्य ज्ञानरूप है सो जीवन्मुक्त कहा है ॥३७॥ हे रामजी ! इस ज्ञानके फुरणेका बीज सत्तामात्र चैतन्य कहा है सत्तामात्र चैतन्यसे ज्ञानका फुरणा होता है जैसे तेजसे प्रकाश होता है ॥ ३८ ॥

श्रीरामचंद्रजी श्रीवसिष्ठजीक प्रति प्रश्न करते हैं ।

हे ब्रह्मन् ! हे मेरा मान करनेवाले ! तुमने यह सबही बीज कहे हैं किस प्रयोगसे आत्मपद शीघ्र प्राप्त होता यह मुझको कहो ॥३९॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति कहते हैं ।

हे रामजी ! केवल सत्तामात्रकी कोटीमें स्थित होनेसे पौरुषके यत्न करके बलसे वासनाको त्याग करके आत्मपद शीघ्र प्राप्त होता है ॥४०॥हे रामजी ! तू जिस क्षणमें तत्त्व जानकरके सत्तामात्रमें स्थिति करेगा उसी क्षणमें भली प्रकार करके आत्मपदको पावेगा ॥४१॥ सत्तामात्रका स्वरूप ईश्वरादिक सविकल्प चैतन्यमें स्थिति करेगा तो बहुत यत्न करकेभी आत्मपदको पावेगा ॥ ४२ ॥ हे रामजी !

सत्तामात्र चैतन्यमें ध्यान करके रहेगा तो अधिक यत्नकरके ऊंची आत्मपदवीको पावेगा ॥४३॥ हे रामजी ! वासनाके त्यागनेमें तू यत्न करेगा तो तेरी संपूर्ण चिंता और रोग क्षणमें शिथिलताको प्राप्त होवेंगे ॥४४॥ हे रामजी ! पहिले जो यत्न कहे हैं तिनसे यह यत्न कठिन है. हे रामजी वासनाका त्याग सुमेरुपर्वतके उठानेसेभी कठिन है ॥४५॥ हे रामजी ! जबलग मन लीन नहीं हुआ तबलग वासनाक्षय नहीं होता है जबलग वासना क्षीण नहीं हुई तबलग चित्त क्षीण नहीं होता है ॥४६॥ हे रामजी ! जबलग तत्त्वज्ञान नहीं हुआ तबलग चित्तका उपशम कहां होता है जबलग तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं हुई तबलग वासनाका क्षय नहीं होता है ॥४७॥ हे रामजी ! तत्त्वज्ञान और मनका नाश और वासनाका नाश यह तीन आपसमें तीनोंके कारण हैं यह तीनों असाध्यही स्थित हैं ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! तिस कारणसे विवेकसहित पौरुष करके भोगोंकी इच्छाको दूरसे त्याग करके यह तीनोंही सेवने योग्य हैं ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! यह तीनोंही भले प्रकार वारंवार अभ्यास नहीं किये तो अनेक यत्नोंकरके और अनेक वर्षोंकरकेभी परमपदकी प्राप्ति नहीं है ॥५०॥ हे रामजी ! वासनाके परित्यागके बरोबर प्राणायामको तत्त्ववेत्ता जानते हैं तिससे प्राणायामभी करे ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! वासनाका परित्यागसे चित्त जो है सो अपने चित्तभावको त्यागन करता है और प्राणायामसेभी चित्तनाश होता है तिससे दोनोंमें जो तू चाहै सो कर ॥ ५२ ॥ हे रामजी ! व्यवहारमें असंग होनेसे संसारके भाव त्यागनेसे शरीरका नाश देखनेसे वासना प्रवृत्त नहीं होती है ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! वासनाका नाश होनेसे चित्त प्रवृत्त नहीं होता है जैसे पवनके चलने विना गरद आकाशमें नहीं चढती है ॥५४॥

हे रामजी ! प्राणायामके दृढ अभ्यासकी युक्ति करके सद्गुरुकी कृपा करके युक्ति करके प्राणायाम होता है ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! प्राणके चलनेके जीतनेमें यत्न बुद्धिवान् पुरुषको अवश्य करक करना एकाग्रचित्त करके वारंवार यत्न करना ॥ ५६ ॥ अथवा प्राण रोकनेके क्रमको त्याग करके जो तेरेको रुचे तो चित्तकोही रोकने चाहे तो बहुत काल करके उच्च पदको प्राप्त होवेगा ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! उत्तम युक्ति विना मन जीता नहीं जाता है जैसे मतवारा दुष्ट हाथी अंकुश विना नहीं जीता जाता है ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! आत्मज्ञानकी प्राप्ति और सत्पुरुषोंकी संगति और वासनाका त्याग और प्राणोंका रोकना यह युक्तियां चित्तके जीतनेमें बलवान् हैं इन्हकरके चित्त जीता जाता है जैसे वर्षाकी धारों करके पृथिवीकी गरद दूर होती है ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! यह युक्तियां होनेसे हठ करके इन्ह युक्तियोंको त्याग करके अंजनकी मुष्टि करके अंधेरा दूर करने चाहते हैं ॥ ६० ॥ हे रामजी ! जो पुरुष चित्तको नहीं जीतते हैं सो पुरुष यज्ञोंकरके तपोंकरके दानोंकरके और तीर्थयात्रा करके देवपूजा करके अनेक उपाधि चिंता करके वनमृगोंकी नाईं वृथा कालक्षेप करते हैं ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! चलतेका स्थित हुएका जाग्रत् हुएका शयन करनेका जिस पुरुषका विचारयुक्त चित्त नहीं है सो पुरुष मृत हुआ जानना ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! यह जगत् क्या है यह देह क्या है ऐसी ज्ञानदृष्टि करके निरंतर विचारकरके आप विचार करे और संतजनोंके साथ विचार करे ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् जो पुरुष है सो आनंद करके उदित रहता है संसारके मोहजालमें कहींभी मग्न नहीं होता है सदा असंग रहता है अपने आत्मा करके चक्रवर्ती राजाकी नाईं सबसे ऊपर विराजमान

होता है ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! जो कोई आत्मज्ञानी आत्माका प्राण रहनेवाला है और जो कोई धनको और सुखको देनेवाला है तिन दोनोंको आत्मवेत्ता पुरुष प्रीति करके मधुर समदृष्टि करके देखता है ॥६५॥ हे रामजी ! सो आत्मवेत्ता पुरुष सम्पूर्ण शुभ और अशुभ वस्तुके समूह विषें समदर्शी होता है अंतःकरणमें उदारचित्त होता है व्यापार करनेमें संसारके क्रमकरके युक्त है परंतु अन्तर्दृष्टि करके कुछ नहीं करता है॥६६॥ हे रामजी ! अथवा संपदाको प्राप्त होवे अथवा आपदाको प्राप्त होवे परंतु उदारबुद्धि पुरुष सबको स्वप्न समान जान करकेअपने स्वभावको नहीं त्याग करता है जैसे क्षीरसमुद्र मंदर पर्वत करके मंथनभी किया हैतौभी उसने अपनी उज्ज्वलता और श्वेतवर्णको नहीं त्याग किया ॥६७॥ हे रामजी ! सो पुरुष चक्रवर्ती राज्यको पाकरके अथवा महा आपदाको पाकरके सर्पयोनिको पाकरके इन्द्रपदवीको पाकरके हर्षरहित होता है और खेदसे रहित होता है जैसे चन्द्रमा कलाके बढने और घटनेमें नाशको नहीं प्राप्त होता है ॥६८॥ हे रामजी ! तू अपने आत्माको संपूर्ण आरंभोंसे र[illegible]त जान और अनेक भेदसे रहित जान और शान्तरूप जान नाना प्रकार कर्मफलोंसे सहित जान नाना प्रकार रूप वेशसे रहित जान और उदारचित्त हो तिस करके उत्तम दशा जो मोक्ष तिसको प्राप्त होवेगा॥६९॥ हे रामजी ! जो मैंने तेरे प्रति आत्मज्ञान उपशमसहित कहा है इससे कामादिकोंसे रहित भई ऐसी प्रकाश भई बुद्धि करके निर्मल आत्मपदको पाकरके शुद्ध आत्मदृष्टि करके इस संसारमें अनेक जन्मबन्धनों करके बद्ध नहीं होवेगा ॥ ४७० ॥

इति श्रीवासिष्ठसारे मोक्षोपाये उपशमप्रकरणं पंचमं समाप्तम् ॥ ५ ॥

॥ श्रीः ॥

वासिष्ठसार ।

अथ षष्ठं निर्वाणप्रकरणम् ।

वाल्मीकजी भारद्वाज प्रति कहते हैं ।

हे भारद्वाज ! उपशमप्रकरणके उपरांत तू छठे निर्वाण प्रकरणको श्रवण कर कैसा है ज्ञान करके निर्वाण पदवीको देनेवाला है ॥ १ ॥ चतुर्दश दिनमें प्रातःसमय सभामें आ प्राप्त हुए-

श्रीरामचन्द्रजीको वसिष्ठजी कहते हैं ।

हे रामचंद्रजी ! अब तत्त्वबोध वास्ते मैंने तेरे प्रति निर्वाण प्रकरण कहा है, हे दुष्ट शत्रुनको मारनेवाले ! तुम इस निर्वाण प्रकरणको सावधान मन होकर श्रवण करो ॥ २ ॥ हे रामजी ! वैराग्यके अभ्यासके वशसे वासनाके त्यागसे तैसे आत्मतत्त्वके बोधसे संसारसमुद्र तरा जाता है तिससे तुम तिन तीनोंमेंही अभ्यास करो ॥ ३ ॥ हे रामजी ! देहमें जबलग अहंकार है और दृश्य पदार्थ स्त्री-पुत्र-धनादिकमें जबलग आत्मभावना है और जबलग इन पदार्थोंमें ममता बनी है तबलग चित्तादिकोंका भ्रम क्षीण नहीं होता है ॥ ४ ॥ हे रामजी ! जबलग तू सबसे अधिक आत्मतत्त्वको नहीं प्राप्त हुआ जबलग सत्संगसे तेरी मूर्खता क्षीण नहीं हुई तबलग चित्तादिकों करके तुझको दीनता बनी है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! जबलग आशारूपी सर्पिणीके विषका मोह हृदयरूपी मंदिरमें है तबलग विचाररूपी चकोर हृदयमंदिरमें प्रवेश नहीं करता है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष देहादिकोंकी स्तुति नहीं करता है

और विश्वासभी नहीं करता है और तत्त्ववस्तु करके नहीं देखता है दूरसेभी दूर असत्य देखता है उसका चित्त लीन हो जाता है ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष अंतःकरणमें आत्मपरायण होता है, चैतन्यरूपी अग्निमें त्रैलोक्यरूपी तृणको होम करता है, ऐसे मुनिवृत्तिवाले पुरुषके चित्तादिकोंके भ्रम निवृत्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ हे रामजी ! काष्ठ और तृण आदिक जो हैं सो कुहाडेसे छेदनेसे वारंवार अग्नि करके दाह होनेसे फिरभी उत्पन्न होते हैं परंतु ज्ञानरूपी अग्निसे दग्ध हुआ मन फिर नहीं उदय होता है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जो संसारके व्यवहारमें अपने साथ शत्रुभाव करता है सो अपने पाप हरने करके नरकमेंसे तारनेको उदय भया जानना जो पुरुष तिसको इष्ट-मित्रकेसा देखता है सोही भला देखता है ॥ १० ॥ हे रामजी ! जो पुरुष संसारी लोगोंकी प्रीतिको और वैरको अंतःकरणसे निर्मल करता है जैसे नदी अपने तटके वृक्षोंको निर्मूल करती है सो पुरुष सर्व दोषोंको नाश करनेवाला है ॥ ११ ॥ हे रामजी! जिसको देहमें अहंकार नहीं है तिसकी बुद्धि कर्म करनेमें लिप्त नहीं होती है सो पुरुष इन सब लोगोंको मारे तोभी हत्यादोषसे बद्ध नहीं होता है ॥ १२ ॥ हे रामजी ! आत्मज्ञानरूपी शास्त्रके मंत्रको अंतःकरणमें भावना करके धारणकरनेसे तृष्णारूपी विषकी विषूचिका रोग क्षीण होता है जैसे शरहतुमें ओस गल जाती है ॥ १३ ॥ हे रामजी! जो निरंतर संपदा हैं, निरंतर आपदा हैं जो बालक अवस्था युवा अवस्था, वृद्धा अवस्था और मरणकी अवस्थासे लेकर संताप हैं जो अनेक सुखदुःखोंकी परंपरा करके मग्न होना है यह सबही घोर अज्ञानके अंधकारकी विभूति है ॥ १४ ॥ हे रामजी ! इन सबका मूल कारण अविद्या है सो प्रकृति कही है तिसको तुम तीन गुणोंके धर्मवालीको जानो, सो तीन गुणोंको तुम सुनो एक सत्त्व-

गुण दूसरा रजोगुण तीसरा तमोगुण यह तीन प्रकारका गुणोंका भेद है ॥१५॥ हे रामजी ! यह अविद्या गुणभेदसे नव प्रकारके भेदवाली है जो कुछ यह देखनेमें श्रवणमें जगत् है सो सबही इस अविद्यानेही विस्तार किया है ॥१६॥ हे रामजी! ऋषि,मुनि, सिद्ध, नाग, विद्याधर और देवता यह अविद्याका सात्त्विक भाग है ॥१७॥ हे रामजी ! इस अविद्याके सात्त्विक भागकेभी नाग और विद्याधर यह तमोगुणमें हैं, मुनि और सिद्ध रजोगुणमें हैं शिवजीसे आदि देवता सत्त्वगुणमें हैं ॥१८॥ हे रामजी ! यह आत्माही अपना स्वरूप जानने विना संसारमें भ्रमता रहता है और सोही आत्मा अपने स्वरूपको जाने तो संपूर्ण ज्ञानकी अवधिको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ हे रामजी ! स्थावर योनि जो है और पशु पक्षी जो हैं यह सबही जड धर्मवाले हैं सदा सुषुप्तिपदमें आरूढ हुए हैं ज्ञानसे रहित हैं वारंवार जन्मको पानेवाले हैं ॥ २० ॥ हे रामजी ! यहां वासनाका बीज रहा है सो सुषुप्ति जानना ज्ञानसे मोक्षसे रहित है यही वासना निर्बीज हुई है सो तुरीया कही है सो मोक्षकी सिद्धिको देती है ॥२१॥ हे रामजी ! वासना,अग्नि, स्नेह, शत्रु और विष यह सबही ज्ञानके तृणके असंगताके, सुजनताके और जीवनके साथ विरोध करते हैं तिसते अल्प प्रमाणभी शेष रहे तौभी बाधा करता है तो इनका शेष थोडाभी नहीं रखना ॥२२॥ हे रामजी! जिसकी वासनाका बीज दग्ध हुआ है, सामान्य सत्ता मात्र रूप हुआ है सो पुरुष देहसहित होवे भावै देहरहित होवे सो फिर जन्मादि दुःखका भागी नहीं होता है ॥ २३ ॥ हे रामजी ! जब अविद्या रूपसे रहित देखी तबही शीघ्र गल जाती है जैसे बर्फका पिंड सूर्यकी धूपमें गल जाता है ॥ २४ ॥ हे रामजी ! यह देह रक्त, मांस और अस्थियां इनका यंत्र बना है इसमें मैं कौन हूं ऐसा जब

आपही विचार करे तो अविद्या तत्क्षणही सर्व प्रकारकी लीन होती है ॥२५॥ हे रामजी ! यह प्रपंच आदिमें और अंतमें असत्यरूप है इस प्रकार करके सब प्रपंचको असत्य जाननेसे जो सत्यरूप रूप बाकी रहे तिसको अविद्या क्षय होनेका साक्षी जाने ॥२६॥ हे रामजी ! इस अविद्याका स्वरूप अपने नाम करके स्वभाव करके रहित जानता है. हे रामजी ! जिह्वाका स्वाद जिह्वा विना और किसीसे नहीं प्रतीत होता है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! अविद्या तो कहीं नहीं है यह सबही एक अखंड परब्रह्म है जिससे सत् और असत् सबही विस्तारयुक्त प्रकाश किया है ॥ २८ ॥ हे रामजी ! घट, पट, गाडी, नाव और सबही जो कुछ दृष्टिगत होता है यह आत्मा नहीं है सब भिन्न भिन्न है, ऐसा कहनेसे अविद्या उदित होती है जो ऐसा विचारे यह घटपटादि सबही परब्रह्म है ऐसा विचार करनेसे अविद्या गलित होती है ॥ २९ ॥ हे रामजी ! मैं तुम्हारे प्रति आत्मज्ञान वास्ते वारंवार कहता हूं कि हे रामजी ! अभ्यास विना आत्मभावनाका उदय नहीं होता है॥३०॥ हे रामजी!सो अविद्यारूपीलता तेरे हृदयरूपी वृक्षमें आरूढ भई है इसको जानके अभ्यासके विलासरूपी खड्ग-प्रहारोंकरके मोक्षसिद्धि वास्ते छेदन करो ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! जनक राजा ज्ञेय वस्तुको जान करके आत्मज्ञानके अभ्यासमें तत्पर हुआ जैसे विहार करता हुआ तैसे तूभी आत्मज्ञानके विलास करके विहार कर ॥३२॥ हे रामजी ! जिस आत्मज्ञानका निश्चय करके विष्णु अनेक अवतार लेकरके पृथ्वीमें विहार करता भया और शिवजी गौरीको अंगमें धारण करके आत्मनिश्चय करके विहार करता है, जो निश्चय ब्रह्माको सृष्टि करनेमेंभी स्थिर रहता है तिसको तूभी धारण कर ॥३३॥ जो निश्चय विद्या पठन करते बृह-

स्पतिको है, जो दैत्यगुरु शुक्रको है, जो सदा भ्रमण करनेवाले सूर्यको है, जो चंद्रमाको है,जो पवन और अग्निको है, जो नारद और पुलस्त्य मुनिको है, जो मुझको और अंगिरा मुनिको है, जो प्रचेता और भृगुको है, जो निश्चय क्रतुको, अत्रिको और शुकजीको है ॥३४॥ हे रामजी ! जो निश्चय और राज्य करते राजऋषियोंको है और तप करते ब्रह्मऋषियोंको जीवन्मुक्तोंको है सो निश्चय तुमको भी होवे ॥३५॥ हे रामजी ! ब्रह्मवेत्ता है सोभी ब्रह्म है सब लोकभी ब्रह्म है, सब भूतभी ब्रह्म है, हम भी ब्रह्म है, तुमभी ब्रह्म हो और हमारा शत्रु और मित्र बांधवभी ब्रह्म है ॥३६॥ हे रामजी ! अज्ञानीको सर्व जगत् दुःखमय है और आत्मज्ञानीको सर्व ब्रह्मांड आनंदमय है, जैसे अंधेको जगत् अंधकारयुक्त है और नेत्रवालेको सदा प्रकाशयुक्त है ॥ ३७॥ हे रामजी ! जैसे बर्फ,ओस, बिन्दु, किणके, तरंग, लहरी और फेन यह सब जलसे प्रकट हुए हैं और जलरूप हैं और जलमेंही हैं तैसेही जो देह है और जो इंद्रियां हैं, जो देखते हैं. जो बालपनासे लेकर अवस्था हैं, जाग्रतादि अवस्था हैं, जो क्षय और वृद्धि हैं, जो जन्म मरण है, जो ज्ञान और अज्ञान है, जो बंध-मोक्ष है सो सबही ब्रह्मरूप है और ब्रह्मही है ॥३८॥ हे रामजी ! ब्रह्मवेत्ता पुरुष जो है सो ब्रह्मको कर्मसे और कर्तासे करनेसे और कारणसे सहित और निर्विकार और स्वयंप्रकाश अपने आत्माको जानते हैं ॥३९ ॥ हे रामजी ! रक्तभी हम हैं और मांसभी हम हैं, अस्थियांभी हम हैं और देहभी हम हैं और चैतन्यताभी हम हैं और ब्रह्मभी हम हैं ऐसी सत्य भावना है ॥४०॥ हे रामजी ! आकाशभी हम हैं और स्वर्गभी हम हैं और सूर्य, चंद्रमा, ताराभी हम हैं और दिशा, पृथिवीभी हम हैं और घटपटस्वरूप करके हमही ब्रह्म हैं यहां सत्य भावना है ॥४१॥ हे

रामजी ! हम चैतन्यरूप आत्माकी उपासना करते हैं और कैसा है आत्मा सर्व संकल्पके फलको देनेवाला है और सर्व जगत्को प्रकाश करता है सर्व ग्रहण करने योग्य पदार्थकी अवधिका अंत है॥४२॥हे रामजी ! फिर कैसा है चिदात्मा, सर्व अवयवोंमें विश्रांत है, सर्व अवयवोंसे परे है, निरंतर चैतन्यरूप है ॥४३॥ हे रामजी! घटमें और पटमें, तीरमें और कुहामें समान वर्तमान है और जाग्रत्‌मेंभी सुषुप्ति जैसा अचल है ॥४४॥ अग्निमें उष्णरूप है और बर्फमें शीतलरूप है, अन्नमें स्वादरूप है और अंधेरेमें कृष्णरूप है चंद्रमामें श्वेतरूप है ॥४५ ॥ हे रामजी ! सूर्यमें तेजरूप है और अंदर और बाहिरमें समान प्रकाशरूप है जोभी समीप है तो भी दूर है ॥४६॥ हे रामजी ! मधुर आदिक रसोंमें मधुररूप है, तीक्ष्ण आदिक रसोंमें तीक्ष्णरूप है, सबही पदार्थोंके समूहोंमें व्याप्त है ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! जाग्रत्‌में, स्वप्नमें स्थित है, तुरीयामेंभी है, तुरीयासे परे पदमेंभी है सदा सत्तारूपकरके व्याप्त है ॥४८॥फिर वह कैसा है चिदात्मा जिसके सर्व संकल्प शांत हुए हैं सर्व कौतुकोंसे रहित है, संपूण आरंभ जिसके गत भये हैं॥४९॥ फिर वह कैसा है चिदात्मा निष्कौतुक है और निरारंभ है, निश्चेष्ट है निस्पृह है, सर्वगत है और निराकार है, सर्व जगत्के अंतर्गत है, अपार है, एकरूप है, अमर्याद है और चैतन्यताका आरंभरूप है ॥ ५० ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् मैं हूँ यह मेरा है, सबही एकरूप हम और तुम यह सबही कल्पना मात्र है ऐसा विचार करनेवाले मुझको कृतकृत्यता हुई है, जगत् भावे स्थित होवे भावे नष्ट हो जाय मैं अब चिंताज्वरसे रहित हुआ हूं ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! महात्मा पुरुष जो भये हैं सो ऐसे निश्चयवान् मुक्त हो

करके सर्व व्यसनोंसे रहित हुए सत्य और असत्यरूप पदमें संशय रहितहुए सम सुखमें स्थित हुए शांतपदमें प्राप्तहुए॥५२॥ हे रामजी! इस प्रकार करके धीर पुरुष पूर्णबुद्धि समदृष्टि हुए और रागद्वेषसे रहित हुए जीवितमें और मरणमें भय और प्रीतिको नहीं करते भये॥५३॥ मोहस्थानमें मोहित नहीं होते भये और आपदामें मगन होते नहीं भये और शोकोंकरके रोदन नहीं करते भये शुभप्राप्तिमें हर्षको नहीं प्राप्त होते भये जैसे तुम पूर्णचित्त होनेसे पूर्णचित्त होते भये ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! प्रसंगसे प्राप्त भये कर्मको केवल करते भये परंतु आसक्त नहीं होते भये आरंभसे रहित होते भये दूसरे मानो मेरुपर्वत है ऐसे दृढ और अचलचित्त होते भये ॥ ५५ ॥ हे रामजी जैसी ज्ञानदृष्टि जनकादिकोंको रही तैसी ज्ञानदृष्टिको तुम पाकरके अहंकारसे रहित होकरके जैसा क्रम व्यवहारको प्राप्त होवे तैसे कर्मको करो सुख करके विहार करो॥५६॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न श्रीवसिष्ठजी प्रति।

हे ब्रह्मन् ! भलेप्रकार करके ज्ञानका विलास करके वासनाका लय होनेसे मैं अब जीवन्मुक्तपदमें निश्चय करके विश्रांत भया हूं ॥ ५७ ॥ हे गुरुजी ! यह मुझको संशय है प्राणायाम करके वासनाका लय होनेसे जीवन्मुक्तपदमें विश्राम कैसे होता है यह मुझको कहो ॥ ५८ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीके ताईं कहते भये।

हे रामजी ! किसीको योग असाध्य है और किसीको ज्ञानका निश्चय असाध्य है हे साधो! मेरा यही मत है प्राणायामके योगसे ज्ञानका निश्चय सुख करके साध्य है ॥५९ ॥ हे रामजी ! प्राणवायुका और अपानवायुका रोक करके देहकी दृढता करके और

अंतःकरणकी एकाग्रता करके योगभी अनंतसिद्धिको जिस प्रकार देता है तिसकोभी तुम श्रवण करो ॥ ६० ॥ हे रामजी ! मेरुपर्वतकी पद्मरागकी ईशानकोणमें आम्र नामक कल्पवृक्ष है उसके नीचे सुवर्णमय पृथ्वी है तिसकी दक्षिण दिशाकी शाखाके कोटरमें निवास जिसका ऐसा भुशुंड नामा काकसा चिरंजीवी नाम पक्षी भया न तो ऐसा कोई आगे होना है ऐसी चिरंजीवियोंकी कथा प्रसंगमें इंद्रकी सभामें शांतातप मुनिसे श्रवण करके काकभुशुंडके स्थानमें प्राप्त भये मुझको भुशुंड काक उठ करके आगे आ मिला अपने संकल्पसे प्रकट हुए दोनों हाथ करके पाद्य, अर्घ्य,आसन गंध,पुष्प,धूप, दीप, नैवेद्य, नीराजन, पुष्पांजलि, प्रणाम, प्रदक्षिणा करके पूजा करके अपने हाथ करके दिया. कल्पवृक्षके दलोंके आसन ऊपर बैठेको अत्यंत प्रेम करके मधुर अक्षरयुक्त वचन कहता भया. काकभुशुंड कहता है;हे भगवन् ! अहो आनंद भया है;तुमने चिरकालसे मेरेको बहुत अनुग्रह दिखाया है दर्शनरूपी अमृतका सिंचन करके कल्पवृक्षसहित मुझको अभिषेक किया है ॥६१॥ हे मुने ! मेरे चिरकालसे किये पुण्यके समूह करके तुम प्रेरित किये हो तो तुमने कहींसे आगमन किया है ॥ ६२ ॥ हे मुने ! तुम मान्यजनोंकेभी मान्य हो तुम महामोहके संसारसमुद्रमें चिरकालसे विहार करते हो तुम्हारे चित्तके समभावकी स्थिति अखंडित होना ॥ ६३ ॥ हे मुने ! तुमने आनेके क्लेश करके शरीरको क्यौं खेद किया है.हम तुम्हारे वचन सुना चाहते हैं हमको आज्ञा कहने योग्य है ॥ ६४ ॥हे मुने ! अब मेरेको तुम्हारे दर्शनसेही सर्वज्ञता भई है तुम्हारे आवनेके पुण्य करके तुमने हमको सावधान किया है ॥६५॥ हे मुने ! तुम्हारे आवनेका कारण हमने जाना है चिरंजीवियोंकी कथा वार्तामें चिरकालसे हमारा स्मरण

तुमको भया है तिस कारणसे यह हमारा स्थान तुम्हारे चरणों करके तुमने अब पवित्र किया है ॥ ६६॥ हे मुने ! तुम्हारा आव-नेका कारण जाना है परंतु अब तुम्हारे वचनरूपी अमृतपानकी वांछा बहुत प्रकट भई है ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! सो भुशुंडकाक चिरंजीवी त्रिकाल निर्मल ज्ञानसंयुक्त मुझको ऐसा कहता भया तो हमने भुशुण्ड काकको वचन कहा ॥ ६८॥ हे पक्षियोंके महा-राज ! तुमने सत्य वचन कहा है हम तुमको आज देखनेको आये हैं तुम चिरंजीवी हो अंतःकरणमें शीतल हो, अहो बडा आनंद है तुमको कुशलसे देखा है और इस संसारकी मायामें मग्न नहीं भये हो सावधान चित्त हो संसारकी माया अत्यत भयानक है जन्म-मरणादि खेदोंकरके खंडित करनेवाली है ॥६९॥ हे भग-वन् ! तुम मेरे इस इस संशयको सत्य करके छेदन करो तुम किस कुलमें जन्मे हो और ऐसे पूणज्ञानी कैसे हुए हो ॥ ७०॥ हे भगवन् ! तुम्हारी आयुषा कितनी है और तुम कितने वृत्तांतको स्मरण करते हो ऐसे चिरंजीवी तुम हो तुमको यह निवासका स्थान किसने दिखाया है ॥ ७१ ॥

भुशुंडजी कहते भये । हे मुनियो!तुम पूछते हो सो सबही तुमको मैं कहता हूं यह हमारी कही कथा तुम सावधान होकर श्रवण करना ॥७२॥ हे मुने ! तुम्हारे जैसे पुरुष त्रिलोकमें पूजनीय चरणारविन्द हैं सो जिस कथा प्रसंगको श्रवण करते हैं जिस करके सम्पूर्ण पाप और दुःख नाशको प्राप्त होते हैं जैसे बादलकी घटा उदय होनेसे सूर्यकी किरणोंका संताप शांत होता है । अब अपना जन्म कहते हैं ॥ ७३ ॥ हे मुने ! जया, विजया, जयंती, अपरा-जिता, सिद्धा, रक्ता, उत्पला और अलंबुसा ये शिवजीकी अष्ट-योगिनी हैं सो अष्टयोगिनी परमानन्द समाधिके वास्ते वाममार्ग

करके भैरव तुंबरूकी पूजा करती भईं अपनेसे भया शिवजीका अनादर जिसका फल ज्ञानदृष्टिका प्रतिबंध है सो अष्ट मातृका अपना प्रभाव दिखानेके वास्ते भोजनके अर्थ शिवजीको यज्ञमें बलिप्रदानके पशुकी नाईं पार्वतीको मारकरके देती भईं फिर पार्वतीको संजीवन करके शिवजीको विवाह देती भईं शिवजीको प्रसन्न करती भइ तिनमें अलंबुसा योगिनीका वाहन चण्डकाकने मधुपान करके मत्त हो करके उसमें प्राप्त भई जो सप्त ब्रह्माणीके रथकी हंसनी तिनके संग क्रीडासे इक्कीस (२१) पुत्र चण्डकाक होते भये ब्रह्माणीके आराधनका प्रसाद करके होते भये सबही आत्मज्ञानको प्राप्त होते भये पिता चण्डकाकने सबको निवासके स्थान दिखा दिये सबही चिरंजीवी होते भये और परमपदको प्राप्त होते भये तिन एक विंशति (२१) भाइयोंमें एक मैं भुशुण्ड-काक हूं परमेश्वरकी नेत करके अत्यंत चिरंजीवी हूं जीवन्मुक्त हूं भयके निमित्त प्राप्त भये मैंभी भयरहित हूं जगत्की मायाको देखताभी हूं पिताने दिखा दिया कल्पवृक्षकी लताके मंदिरमें निवास करता हूं और कालक्षेप करता हूं आनंदसे रहताहूं ॥ ७४ ॥ हे मुने ! तुम्हारे आनेसे अब मैं आनन्द करके पूर्णमन भया हूं जैसे मंदर पर्वतके भ्रमणसे क्षीरसमुद्र क्षीरकी लहरों करके पूर्ण होता है ॥७५॥ हे मुने ! इससे परे मैं अपने कुशलको और नहीं मानता हूं संपूर्ण भोगवासनाका त्याग करनेवाले संत जनोंका समागम जो होता है यही परम लाभ है ॥७६॥ हे मुने ! यह संसारके भोग क्षणभंगुर हैं इनसे क्या प्राप्त होता है ? सत्संगरूपी चिन्तामणिसे सर्व सार परमानंद प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ हे मुने ! तुम कैसे हो स्नेहयुक्त,गंभीर और मनको हरनेवाले मधुर उदार और धीरवाले हो इस त्रैलोक्यरूपी कमलमें तुम एक भ्रमरकी नाईं विहार करते

हो ॥७८॥ हे ब्रह्मन् ! हमको परमात्माका तत्त्व प्राप्त भया है तोभी तुम्हारे दर्शनसे हमारे अशुभ कर्म शांत भये हैं आज हमारा जन्म सफल भया है, हे साधो ! संतजनोंका समागम संपूर्ण संसारके भयको शांत करता है ॥७९॥ अब अपना वृत्तांत कहते हैं हे ब्रह्मन् ! अनेक घोर युगोंके उलट पलट होते हैं और पवनभी घोर प्रलय करनेवाले बहुत हैं तोभी यह हमारे निवासका कल्पवृक्ष स्थिर रहता है कदाचित्भी कंपायमान नहीं होता है ॥८०॥ यह कल्पवृक्ष जो है सो और लोकोंमें रहनेवाले सर्व प्राणियोंको अगम्य है इस कारणसे हमही यहां एकांत सुख करके निवास करते हैं ॥ ८१ ॥ ऐसे उत्तम कल्पवृक्षमें निवास करते हमको संसारकी आपदा कहां है ? हे मुने ! श्रेष्ठ चित्तकी व्याकुलता करके आपदा होती है ॥८२॥ हे मुने ! जब ब्रह्माजीका दिन समाप्त होता है तब कल्पके अंतमें त्रिलोकीकी प्रलय होती है तब हम इस अपने निवासके कल्पवृक्षको त्याग करते हैं जसे कृतघ्न पुरुष उत्तम मित्रका त्याग करता है॥८३॥तब मैं संपूर्ण कल्पनाको त्याग करके केवल आकाशमें रहता हूं मायाके संपूर्ण धर्मोंको जीत लेता हूं जैसे वासनारहित मन अचल होता है ॥८४॥ हे मुने! जब प्रलय करनको बारह सूर्य प्रचंड उदय होते हैं तब हम योग करके वारुणीजलकी ध्यान धारणा करके शीतल हो रहते हैं ॥८५॥ हे मुने! जब जगत्को उलटा पलट करनेको प्रलयकालके पवन प्रचंड बहते हैं तब हम पर्वतोंकी धारणा करके अचल हो रहते हैं ॥ ॥८६॥ हे मुने ! जब सुमेरु पर्वतसे आदि जगत् सात समुद्रोंके एकत्र भये जलमें गलित होता है तब हम पवनकी ध्यानधारणा करके पवनरूप होय रहते हैं ॥८७॥ हे मुने ! जब ब्रह्माके दिनांतमें ब्रह्मांडका प्रलय होता है तब हम सुषुप्ति अवस्थाकी अचल

धारणा करके आनंदमय होते हैं ॥८८॥ हे मुने ! जब ब्रह्मा दूसरे कल्पके आदिमें फिर सृष्टि करता है तो मेरे संकल्पसे इस पर्वतके शिखरमें फिर यही कल्पवृक्ष हमारे निवासके वास्ते प्रकट होता है ॥८९॥ हे मुने ! जो जगत्का वृत्तांत मुझको स्मरणमें है सो तुम मुझसे सुनो इस पृथ्वीके मैं केवल बडे भारी वृक्ष और बडी शिला करके पूर्ण तृणवृक्षोंसे वन पर्वतसे रहित पृथ्वीको स्मरण करता हूं ॥९०॥ हे मुने ! दश हजार और दश शतवर्ष प्रमाण उस पृथ्वीको केवल भस्म करके पूर्ण भईको स्मरण करता हूं ॥ ९१ ॥ दश हजार वर्ष प्रमाण मृत भये दैत्योंकी अस्थियों करके पूर्ण भई पृथ्वीको स्मरण करता हूं ॥९२॥ इस प्रकार करके चार युगप्रमाण घने पवतोंकरके पूर्ण भई लोकोंके संचारसे रहित इस पृथ्वीको स्मरण करता हूं॥९३॥ हे मुने! दक्षिण दिशाको अगस्त्यमुनि विना स्मरण करता हूं एक विन्ध्याचल पर्वतकरके नक्षत्रमंडलपर्यंत पूर्ण भये जगत्को स्मरण करता हूं ॥९४॥ हे मुने ! एक जगत्की सृष्टिको पुरुषोंसे और असुरोंसे रहित केवल देवतामयको स्मरण करता हूं ॥९५॥ हे मुने ! एक जगत्के सर्गको सुरापन करनेवाले मदोन्मत्त और शूद्रोंसेभी निषिद्ध ऐसे ब्राह्मणोंकरके संयुक्त बहुत हैं नाथ जिसमें और धर्ममर्यादासे रहितको स्मरण करता हूं ॥९६॥ हे मुने ! एक जगत्के सर्गको वृक्षोंकरके निरंतर पूर्ण भई पृथ्वीवालेको और समुद्रकी कल्पनासे रहितको अपने आप पुरुष उत्पन्न होते हैं जिसमें ऐसेको स्मरण करता हूं ॥ ९७॥ हे मुने ! किसी सर्गको पर्वत और पृथ्वीसे रहित और आकाशमेंही देवता और मनुष्य स्थित रहते हैं और चंद्रमा सूर्यके प्रकाशसे रहित और अपने आप प्रकाश भयेको स्मरण करता हूं ॥ ९८ ॥ हे मुने ! किसी सर्ग इंद्र विना और

राजा लोकविना और उत्तम अधम मध्यम भेद विना स्मरण करता हूं ॥ ९९ ॥ हे मुने ! विष्णुको हंसवाहनको याद करता हूं ब्रह्माको गरुडवाहनको याद करता हूं और शिवजीको गरुडवाहनको और हंसवाहनकोभी याद करता हूँ और ब्रह्माविष्णुको वृषभवाहनको याद करता हूं ॥१००॥ हे मुने ! हे वसिष्ठजी ! अब तुम ब्रह्माके पुत्र हो पूर्व कालमें अष्टम सर्गमें तुम हमको मिले हो तेरा अब अष्टम जन्म याद करता हूं किसी सर्गमें तुम आकाशसे उत्पन्न होते हो किसीमें जलसे उत्पन्न होते हो किसीमें पवनसे उत्पन्न होते हो किसीमें पर्व-तसे उत्पन्न होते हो किसीमें अग्निसे उत्पन्न होते हो ॥ १०१ ॥ हे मुने ! यह पृथिवी पांच पूर्व सृष्टिमें समुद्रमें कूर्मरूपी भगवान्‌जीने पांच बार निकासी भई मैंने देखी है ॥१०२॥ हे मुने ! इस समुद्रमें संपूर्ण औषधीके रस पा करके देवता असुर पांच वार मंथन करते मैंने देखे हैं ॥१०३॥ हे मुने ! हिरण्याक्ष असुर यह पृथ्वी पातालको तीन बार ले जाते मैंने देखा है ॥ १०४ ॥ हे मुने ! श्रीभगवान् विष्णुजी जमदग्निसे रेणुकाका पुत्र हो करके मेरे देखतेही छठी बार क्षत्रियोंका क्षय करता भया ॥ १०५॥ हे मुने हे कलियुगोंके सैकडेमें विष्णुके बौद्धावतार शत प्रमाण देखे हैं ॥ १०६ ॥ हे मुने ! सात त्रिपुरासुरोंके क्षय देखे हैं दक्षके यज्ञका दो बार नाश होते देखा है दश बार शिवजीसे इंद्रके विनाश होते मैंने देखे हैं ॥१०७ ॥ हे मुने ! शिवजीका और विष्णुका आपसमें बाणासुरके वास्ते आठ बार संग्राम होते मैंने देखे हैं जिनम ज्वरोंका आपसमें युद्ध भया है ॥ १०८ ॥ हे मुने ! युगोंके प्रलय करके उलटा पलट होने करके पुरुषोंकी बुद्धिकी न्यून अधिक होनेसे क्रियाकांडका अनेक भेदोंकरके वेदोंकी उलटा पलटी होते देखी है ॥ १०९ ॥ हे मुने ! यह महारामायण नामा इतिहास शत लक्ष प्रमाण ज्ञान-

शास्त्रको मैं स्मरण करता हूं जिसमें ज्ञान हाथमें फल सरीखा अर्पण किया है. रामचंद्रजीकी नाईं व्यवहार करना रावणकी नाईं व्यवहार नहीं करना, वाल्मीकि मुनिने पहिले रचन किया है आगे फिरभी करेगा और फिरभी बनेगा तिसको तू तत्त्व करके जानेगा॥१०॥ हे मुने ! वाल्मीकि नामा जीवने अथवा और किसीने वाल्मीकीय रामायण अब वारंवार करता है विस्मरण भया फिर रचन कराता है कदाचित् आगेका बनाही मिल जाता है ॥ ११॥ हे मुने ! इस महारामायणके बराबर दूसरा महाभारत इतिहास व्यासनामा जीवने अथवा और जीवने पहिलेका विस्मरण भया सातवीं बार फिर रचन करता है ॥ १२ ॥ हे मुने ! श्रीरामचंद्र नामा विष्णुका अवतार राक्षसोंके क्षय वास्ते अब एकादशवां जन्म होवेगा॥१३॥ हे ब्रह्मन् ! विष्णु भगवान् नरसिंहरूप धारण करके त्रैलोक्यको पीडा करनेवाले हिरण्यकशिपु दैत्यको तीसरी बार मारते भये जैसे सिंह मदवाले हाथीको मारता है ॥१४ ॥ हे मुने ! पृथिवीका भार हरनेवास्ते वसुदेवके घर विष्णुजीका अब षोडशवां (१६) जन्म होता है ॥ १५ ॥ हे मुने ! यह जगत्की भ्रांति सच्ची कदाचित् नहीं है जो कदाचित् दृष्टि होती है सोभी जलमें बुद्बुदाकी नाईं मिथ्याही फुरण होती है ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मन् ! शत बार पुरुषोंको स्त्रीभावको प्राप्त होतेको याद करता हूं कलियुगम सत्ययुगके आचारको याद करता हूं, सत्ययुगमें कलियुगके आचारको याद करता हूं ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! कितने सर्ग वेदोंसे रहित वेदोंके अर्थोंसे रहित अपनी इच्छासे वर्त्तमान भयेको याद करता हूं॥१८॥ हे मुने ! केते सर्ग मनके मननव्यापारसे उत्पन्न भयेको याद करता हूं पृथिवीके विकारसे रहित भये पवनरूप भयेको ऐसे दश सर्गों को याद करता हूं ॥ १९ ॥

वसिष्ठजीका प्रश्न यक्षराजके प्रति ।

हे यक्षराज ! तुम जैसे पुरुष त्रैलोक्यमें विचरण करते हैं और लोक व्यवहारभी करते हैं तौभी तुमको मृत्यु बाधा क्यों नहीं करती है ॥ १२० ॥

भुशुंडजी श्रीवसिष्ठजीको कहते हैं ।

हे मुने! तुम सर्वज्ञ हो और जानतेभी हो और जिज्ञासु सरीखे मुझको पूछते हो यह मैं जानता हूं क्या स्वामी यों होते हैं सो अपने सेवकको जान करकेभी बोलनेमें प्रीति करके प्रगल्भ करते हैं ॥२१॥ तो हे महाप्रभो ! जो तुम पूछते हो सो मैं तुमको प्रकट कहता हूं सत्पुरुषोंकी आज्ञा पालन करनीही आराधना है ॥२२॥ हे प्रभो ! वासनारूपी सूत्रकी डोरी दोषरूपी मुक्तामणियुक्त है सो जिसके हृदयमें ग्रथित भई नहीं है तिसको मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥२३॥ हे प्रभो ! मानसी जो चिंता है सो कैसी है श्वासरूपी वृक्ष छेदनेको शस्त्र है और देहबंधनकी लताकी डोरी है सो जिसको भेद नहीं करते हैं तिसको मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! यह आशा कैसी है देहरूपी वृक्षके ऊपर सर्पसमूह जैसी चढी है चिंतारूपी शिर फणावाली है सो जिसके चित्तको दाह नहीं करता है तिसको मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥२५॥ हे प्रभो ! यह लोभरूपी अजगर है कैसा है राग और द्वेष जिसका क्रूर विष है अपना मनरूपी छिद्र जिसका मंदिर है सो जिसको भक्षण नहीं करता है तिसको मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥२६॥ हे प्रभो ! यह लोभरूपी अग्नि कैसी है विवेकरूपी जलको सम्पूर्ण पान करती है और देहरूपी समुद्रका वडवानल है सो जिसको दाह नहीं करता है तिसको मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥२७॥ हे प्रभो ! जिसका चित्त एक निर्मल परम पवित्र आत्मपदमें विश्रांत हुआ है तिसको

मृत्यु बाधा नहीं करती है ॥२८॥ हे प्रभो ! यह जगत् देवता असुरसहित गंधर्व विद्याधर किन्नरसहित मनुष्य स्त्रीगणसहित है इसमें शुभ करनेवाला और स्थिर कुछ नहीं है ॥ २९ ॥ वृक्षसहित राजा सहित पर्वत नगरसहित है ॥ ३० ॥ नाग और असुरसमूह सहित असुरोंकी स्त्रियोंसहित है संपूर्ण पातालसहित इस प्रपंचमें सुंदर और कुछ नहीं है ॥ ३१ ॥ हे मुने ! यह जगत्की क्रिया चिन्तारोगसहित है दुःखसमूहसंयुक्त है और नित्य तुच्छ है इनमें शुभ और स्थिर कुछ नहीं है ॥ ३२ ॥ हे मुने ! पृथिवीका एक चक्रवर्ती राज्य श्रेष्ठ नहीं है पराई कथाप्रसंगभी वर्णन श्रेष्ठ नहीं है पराये कार्यका विवेकभी वर्णन श्रेष्ठ नहीं है, हे मुने ! इनसे चिरंजीवी होना श्रेष्ठ नहीं होता है ॥ ३३ ॥ हे मुने ! मानसी चिन्ता और रोगयुक्त चिरंजीविता अच्छी नहीं है मरणभी अच्छा नहीं है दृढ मूढताभी अच्छी नहीं है नरककी विषम स्थिति भी अच्छी नहीं है ॥३४ ॥ हे मुने ! इस प्रकारकी जगत्क्रिया अनेक समस्त रचना मूढता युक्त होवे तो अच्छी नहीं है यह पदार्थ सबही चिरसे कल्पना करनेसे दुःख देनेवाले हैं इन्हमें महात्मापुरुष स्थितिको कैसे मानते हैं ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! आत्मचिन्ता संपूर्ण दुःखोंका अंत करनेवाली है चिरकालसे धारण किया संसाररूपी दुष्ट स्वप्नोंके भ्रमको हरनेवाली है ॥३६॥ हे मुने ! जैसी आत्मचिन्ता संसारदुःखको हरनेवाली है तैसेही आत्मचिन्ताके समान प्राणचिन्ताभी संसार सुप्नके भ्रमको दूर करनेवाली मैंने मानी है इस प्राणचिन्ताको अनेक योगी लोकोंने मोक्षवास्ते सेवन किया है ॥ ३७ ॥

श्रीवसिष्ठजीका प्रश्न पक्षिराज प्रति ।

हे पक्षिराज! तुम सर्व संशयको छेदन करनेवाले हो तत्वज्ञानी हो चिरंजीवी हो यथायोग्य मेरेको कहो प्राणचिंता क्या कही है ॥ ३८ ॥

भुशुंडकाकजीका उत्तर वसिष्ठजीके प्रति ।

हे मुने ! तुम भुशुंडकाकको दर्शन करके जीवदान देतेहो भुशुंडकाकको आत्मदृष्टिका लाभ देनेवाले हो संपूर्ण वेदांतके वेत्ता हो सर्व संशयको नाश करनेवाले हो मेरेको उपहासके वास्ते प्रश्न करते हो जिस कारणसे तुम ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्माके पुत्र हो मैं काक हूं महा मलिन जीव हूं मेरेको तुम्हारा प्रश्न करना उपहासही है॥३९॥अथवा मेरेको इतना कहनेमें क्या अर्थ है ? मैंने सर्वज्ञान तुमसेही शिक्षित किया है तुम्हारेको प्रश्नका उत्तर करनेसे फेर भी अभ्यास करके संशयरहित होवोंगा ॥ ४० ॥ हे मुने ! प्राणचिंताका समाधान मेरा कहिआ तुम सावधान होकर श्रवण करो इडा और पिंगला यह दोनों नाडियां इस देहमें नासिकाके दाहने वाम पार्श्वोंमें स्थित हैं ॥४१॥ हे मुने ! इस देहमें छः चक्र कमलरूप हैं सो अस्थियोंके और मांसके बने हैं और कोमल हैं इन्हके ऊपरभी नाल है और नीचेभी नाल है और इन्हके दल आपसमें मिले हैं ॥४२॥ हे मुने ! इन षट्चक्र कमलोंके नाम और स्वरूप और स्थान तुम्हारेको सुनावते हैं प्रथम कमल मूलाधारचक्र है सो गुदास्थानमें है इसके चार ४ दल हैं व श ष स यह चार अक्षर चार दलोंमें हैं १ दूसरा कमल स्वाधिष्ठानचक्र है सो लिंगस्थानमें है इसके छः दल हैं ब भ म य र ल यह छः अक्षर इसके छः दलमें हैं । २ तीसरा कमल मणिपूरकचक्र सो नाभीस्थानमें है इसके दश १० दल हैं ड ढ ण त थ द ध न प फ यह अक्षर दश दलमें हैं ३ चौथा कमल अनाहतचक्र है सो हृदयमें है १२ इसके १२ द्वादश दल हैं क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ यह बारह अक्षर बारह दलोंमें हैं ४ पाँचवां कमल विशुद्धचक्र सो कंठमें कहा है इसके १६ षोडश दल हैं अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः यह सोलह अक्षर इसके दलोंमें हैं५

छठा कमल आज्ञाचक्र है सो ललाटमें है इसके दो२दल हैं ह क्ष यह दो अक्षर इसके दलोंमें हैं६यह छः चक्रोंके छःकमल हैं सो संपूर्ण देहमें चलनेवाले पवनके स्पर्श करके प्रकाशमान होते हैं हे मुने ! यह छः कमलोंके पत्र मंदपवनके स्पर्शसे चलते हैं तिन पत्रोंके चलनेसे पवन वृद्ध होता है सो पवन इस देहमें आठ कम अस्सी हज़ार एक शत एक (७२१०१) नाडीमें भ्रमण करता है तिसमें हृदय और गुदा नाभि और कंठ और सबही अंग इस पवनके प्रकट होनेके मुख्य स्थान हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे मुने ! यह स्थानोंको कल्पना करके केती नाडियां नीचेको चलती हैं केती नाडियां ऊपरको चलती हैं तिनमें प्रवेश करके देहमें पसरता है॥४५॥ हे मुने ! सो पवन प्राण अपान, समान; उदान और व्यान इत्यादि नाम करके वर्त्तमान है हृदयमें प्राण पवन है, गुदामें अपान पवन है, समान पवन नाभिमें है, उदान पवन कंठस्थानमें है, व्यान पवन सर्व देहमें है,यह अनेक चेष्टा करके अनेक नामवाला है पांच पवन औरभी हैं नाग१ कूर्म २ कृकल ३ देवदत्त ४ धनंजय ५ नाम हैं ॥ ४६ ॥ हे मुने ! इनमें दो पवन प्रधान हैं प्राण और अपान,प्राण ऊपरको चलता है अपान नीचेको चलता है ॥ ४७ ॥ हे मुने ! प्राण और अपान यह दोनों पवन प्रकट हैं और प्रधान कहे हैं शरीररूपी नगरको पालनेवाला जो पवन है तिसका मनरूपी रथ है तिसके यह दोनों चक्र हैं ॥४८॥ हे मुने ! उन दोनोंकी मर्मके अनुसार गति है यह प्राण और अपान पवनोंकी देहकी स्थिति पर्यंत प्रतिबंधको नहीं प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ हे मुने ! यह पवन इस देहमें सुषुप्ति अवस्थामेंभी निरंतर चलता रहता है इस कारणसे प्राण पवनको ब्रह्मरूपताभी कही है ॥ ५० ॥ हे मुने ! कमलके नालके सूत्रका

हजारवां अंशसेभी प्राण अपानकी गति सूक्ष्म है देहमें विद्यमान हैं तोभी अलक्ष्य है प्राणायामके अभ्याससे और सूक्ष्म नाडियोंमें चलनेसे सूक्ष्म गति कही है ॥ ९१॥ हे मुने ! जाग्रत भये और सुप्त भयेकोभी यह प्राणायाम उत्तम है जो प्राणायामको जानता है तिसको जिस प्रकार करके प्राणायाम कल्याणके वास्ते कहा है तिस प्रकारको तुम श्रवण करो॥९२॥ हे मुने ! यह प्राणपवन मूलाधारचक्र गुदा स्थानसे ऊपरको चढता है, सो क्रम करके छः चक्रोंको भेद करके कपालस्थान ब्रह्मरंध्रचक्र पर्यंत चढता है कपालस्थानमें एक हजार (१०००) दल कमल है तिसमें योगीजन प्राणायाम चढाते हैं और लोगोंको इस प्रकारका ज्ञान नहीं है ॥ ९३ ॥ हे मुने ! तीन प्रकारकी पवनकी गति है रेचक,पूरक और कुंभक प्राणोंका चलना रेचक है चढाना पूरक है,स्थित होना कुंभक है इनके भेद तुमको सुनाता हूं॥९४॥ हे मुने ! हृदयकमलके अंदरसे प्राण पवनोंको बाहिरके सन्मुख जो होता है स्वभाव करके और यत्न विना तिसको धीरपुरुष रेचक जानते हैं॥९५॥ हे मुने ! बाहिरको चले जो प्राण पवन है तिनकी शिर पर्यंत गतिको आधा पूरक कहते हैं शिरसे नासिकाद्वारसे अथवा मुखद्वारसे बाहिर बारह उंगली प्रमाण बाहर प्रकट होनेको अर्ध रेचक कहते हैं ॥९६॥ और हे मुने ! बाहिरसे नासिकाको अथवा मुखको प्रवेश करके अंदरको अपान पवनके स्थान गुदा पर्यंत पवनकी जो गति है तिसकोभी धीर पुरुष पूरक जानते हैं ॥ ९७ ॥ हे मुने ! बाहिरको सन्मुख हुआ जो प्राणपवन तिसको नासिकातें शिर पर्यंत गतिको बाह्यपूरक जानते हैं ॥९८॥ और बाहिरसे अंदरको प्रवृत्त हुआ जो पवन तिसकी नासिकासे शिरपर्यंत जो गति है तैसेही शिरसे हृदय पर्यंत जो पवनकी गति है तिसकोभी दूसरे आंतरपूरकको जानते

हैं यह दो प्रकारका आंतरपूरक कहते हैं ॥५९॥ हे मुने ! बाहिरको सन्मुख हुए प्राणपवनकी हृदयसे नासिका पर्यंत जो गति तिसको योगिजन बाह्यपूरक कहते हैं ॥६०॥ हे मुने ! नासिकाग्रसेभी बाहर निकल करके बारह अंगुल प्रमाण जो गति है तिसकोभी दूसरे बाह्य पूरकको कहते हैं॥६१॥हे मुने! बाहिर गया जो प्राणपवन सो जब तक अंदर अपानस्थानमें नहीं प्राप्त हुआ तबतक प्राण पवनकी पूर्ण स्थिति होती है तिसको बाहरका कुंभक कहते हैं ॥६२॥ हे मुने ! जो प्राणपवनका अंदरके सन्मुख होता है जबलग अपान वायुका उदय नहीं हुआ तबलग प्राणपवनकी गतिको बाहरके रेचकको कहते हैं ॥६३॥ हे मुने ! द्वादशांत कही मूलाधार चक्र तिससे उदय होक-रके स्थूलरूपको प्राप्त हुआ अपान पवनकी जो स्थिति तिसको दूसरे पूरकको कहते हैं ॥६४॥ हे मुने ! बाहिरके और अंदरके यह कुंभक रेचक पूरक जो प्राण-अपानके गतिके स्वभाव हैं,तिनको जान करके पुरुष फिर जन्म नहीं पाता है ॥ ६५ ॥ हे मुने ! यह पूरक रेचक आठ (८) प्रकारके हैं और दो प्रकार कुंभकके हैं यह दश प्राणप-वनकी गति है सो देह पवनके स्वभाव हैं स्मरण करनेसे मुक्तिको देनेवाले हैं सो हम तुम्हारे प्रति कहते हैं ॥६६॥ हे मुने ! जिसका मन यह प्राणायामके व्यापारमें लगा है बाहिरके व्यापारको त्याग करता है तिसका मन थोडे दिनोंकरके निर्मल पदको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ हे मुने यह प्राणायामका अभ्यास करनेवाले पुरुषका चित्त बाहिरकी इंद्रियोंके विषयोंकी वृत्तिओंविषे रतिको नहीं बांधता है जैसे कुत्ताकी चमडीमे ब्राह्मण प्रीतिको कदापि नहीं करता है ॥ ६८ ॥ हे मुने ! अपान पवन चंद्रमाकी कला युक्त है काहेते अपान पवनकी अंदरको नीमि गति है इससे अपान पवनकी कल्प प्राणायाम करके अंदरके स्थिति रहे यहां शोक नहीं करना

बनता है ऐसी पदवीकी प्राप्ति होती है ॥६९॥ हे मुने! प्राण पवनमें सूर्यकी कला है जिस कारणसे प्राण पवनकी गति ऊर्ध्व है इस प्राण पवनकी गति प्राणायाम करके अंदर स्थिति करके पुरुष फिर जन्म नहीं पावता है ॥७०॥ हे मुने! यह प्राणायामकी दृष्टिको धारण करके मैं अचल पदमें स्थित भया हूं सुमेरुपर्वतभी चला जावे तोभी मैं चलायमान नहीं होता हूं॥७१॥हे मुने ! चलते भय स्थित भये और जाग्रत् भये सुप्त भये मेरेको आत्माविषें स्थित भई समाधि मेरी सुप्तमेंभी नहीं चलती है॥७२ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं यह योगदृष्टिमें स्थित भया हूं, भूत भविष्यत् वर्त्तमानको चिंतन नहीं करता हूं इस कारणसे चिरंजीवी भया हूं ॥७३॥ हे ब्रह्मन्! मैं भावकी चिंताको और अभावकी चिंताको इष्ट चिंताको अनिष्ट चिंताको एक समान जानता हूं तिस कारणसे निर्विकार होयकर चिरकालसे जीवता हूं ॥ ७४ ॥ हे मुने! मैं प्राण और अपानके संयोगकी युक्तिको चिंतन करता हूं आपही अपने आत्माविष संतुष्ट भया हूं तिस कारणसे चिरसे जीवता हूं ॥७५॥ हे मुने! यह आज मेरेको प्राप्त भया है यह और प्राप्त होवेगा ऐसी चिंता मेरेको नहीं है मैं अपनी अथवा और किसीकीनिंदा और स्तुति नहीं करताहूं तिससेचिरंजीवी भया हूं॥७६॥हे मुने! मैं सर्व त्यागको धारण करता हूं जीवनेका उद्यमभी मैंने त्याग दिया है और मेरा मन चंचलतासे रहित भया है शोकसे रहित भया है और स्वस्थ भया है और सावधान भया है तिससे चिरंजीवी हों॥७७॥हे मुने!मैं काष्ठको और सुंदर स्त्रीको तृणको और अग्निको और बर्फको समदेखता हूं आज मेरेको सिद्ध क्या भया है और प्रातःकाल क्या सिद्ध होवेगा ऐसी चिंता मेरेको नहीं है तिससे चिरंजीवी भया हूं॥७८॥ हे मुने! जन्ममरण दुःखोंसे और राज्यलाभादि सुखोंमें मैं भयसे हर्षसे रहित भया हूं और

यह मेरेको अपनेसे बंध है और यह परायेसे बंध है ऐसाभी मैं नहीं जानता हूं. तिससे चिरंजीवी हुआ हूं ॥७९ ॥ हे मुने । मैं अचल दृष्टि करके आसक्तिरहित दृष्टिकी प्रीतिवाली सुंदर दृष्टि करके सर्वत्र एक सत्यरूप आत्माको देखता हूं तिससे चिरंजीवी हूं ॥८०॥ हे मुने ! मस्तकसे लेकर पादपर्यंत इस देहमें मेरा अर्थ कोई नहीं है, इस प्रकार करके अहंकाररूपी कलंकसे रहित हुआ हूं और जो मैं कर्म करता हूं जो भोजन करता हूं सो सबही मुझको प्रीति और निंदासे रहित है उससे मैं चिरंजीवी हुआ हूं ॥८१ ॥ हे मुने ! जिस कालमें मैं कुछ जानता हूं तिस समयमें मेरी बुद्धि ज्ञानिके गर्वको धारण नहीं करती है और मैं बल करके समर्थ होता हूं तोभी किसीको दबा नहीं लेता हूं और संताप होनेसे खेदयुक्त नहीं होता हूं और दरिद्र होकरके किसीसे याचना नहीं करता हूं तिससे मैं चिरंजीवी हुआ हूं ॥८२॥ हे मुने! जोजो पदार्थ पुराने हैं और भिन्न हुआ हूं क्षोभको प्राप्त हुआ हूं घस गया है घट जाता है सबको मैं नवीन और उत्तम जानता हूं सुखी लोगोंको देखकर सुखी होता हूं और लोगोंके दुःखमें दुःखी होता हूं सर्व लोकका मित्र और सर्व जनका प्रिय हूं तिससे मैं चिरंजीवी हुआ हूं ॥८३॥ हे मुने!आपदामें पर्वतकी नाई अचल रहता हूं और संपदामें जगत्‌का मित्र होता हूं भावमें और अभावमें अपनेको कुछ नहीं मानता हूं इससे चिरंजीवी हुआ हूं ॥८४॥ हे मुने! न तो मैं किसीका हूं न मेरा कोई है न तो मैं अपना हूं मैं पराना हूं न मैं पराया हूं इस भावनाम मेरा चित्त है तिससे चिरंजीवी भया हूं ॥ ८५ ॥ हे मुने ! घडाभी चैतन्य है वस्त्र भी चैतन्य है, वनवृक्षभी चैतन्य है और नाव गाडी भी चैतन्य है ऐसी भावना मेरेको है तिससे मैं चिरंजीवी भया

हूं ॥ ८६ ॥ हे मुने ! इस कारणसे मैं त्रैलोक्यरूपी कमलमें भ्रमरकी नाईं विचरण करता हूं भुशुंड नामा काक हूं चिरंजीवी कहिया हूं ॥ ८७ ॥ हे मुने ! जैसा हूं जिस प्रकार वर्त्तमान हूं जो मेरे हैं यह सब मैंने कहा और तुमभी जानते हो सर्वज्ञ हो यह मेरा कहना तुम्हारी आज्ञा करने मात्रसे है ॥ ८८ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं । हे पक्षीराज भुशुंडजी ! "अहो इति आनंदे" तुमने मुझसे अपना वृत्तांत कहा है वह कैसा अद्भुत है और तुम्हारा वचन वेदशास्त्रका भूषण है और परम विस्मयका कारण है ॥ ८९ ॥ हे भुशुंडजी ! तुम महात्मा हो और अत्यंत चिरंजीवी हो जो तुम साक्षात् दूसरे ब्रह्मको देखते हैं सो पुरुष धन्य हैं ॥ ९० ॥ हे रामजी ! उसके उपरांत मैं भुशुंड काकसे बिदा होकरके चलनेकी आज्ञा लेता भया तब भुशुंड काकने सुवर्णकमल और सुवर्णपुष्पों करके और मोतियोंके अर्घकरके पूजन करके बिदा किया आकाशमें तीन योजन भुशुंड काक मेरे पीछे साथ आता भया तब मैंने प्रार्थना करके भुशुंडकाकको पीछा अपने स्थानको फेर दिया तदनंतर मैं अपने सप्त ऋषियोंके मंडलमें चला आता भया ॥ ९१ ॥ हे रामजी ! यह भुशुंड काकका वृत्तांत तुम्हारे प्रति कहा है इसको तुम अंतःकरणमें विचार करके जो कार्य तुमको रुचे सोई तुम करो ॥ ९२ ॥

वाल्मीकिजी भरद्वाज प्रति कहते हैं ।

हे भरद्वाज ! निर्मलबुद्धि पुरुष यह भुशुंड काककी कथाको श्रवण करता है सो पुरुष अनेक भय करके बडी दुस्तर ऐसी संसार नदीको तर जाता है ॥ ९३ ॥ हे भरद्वाजजी ! फिर रामचंद्रजीने वसिष्ठजीको प्रश्न किया यह शरीररूपी घर किसने रचन किया

है । ऐसा प्रश्न किया तो वसिष्ठजी कहते भये ॥९४॥ हे रामजी ! यह शरीर गृह कैसा है अस्थियां इसकी स्तंभकी स्थूणा है और रक्तमांस करके इसको लिप्त किया है नव इसके द्वार हैं यह किसीने रचा नहीं है ॥ ९५ ॥ हे रामजी ! रक्तमांस अस्थियोंकरके रचन किये जो देह है सो हजारांही हैं तिनकी संख्याकी कल्पना कछु नहीं है ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! तुम रात्रिमें शय्यामें सुख करके शयन करके स्वप्नमें जिस देह करके अनेक देशांतरमें भ्रमण करते हो सो तुम्हारा स्वप्नका देह अब कहां है और किसने रचा है॥९७॥ हे रामजी ! जाग्रत् अवस्थामेंभी मनोरथके फुरनेमें जिस देह करके स्वर्गादिक लोकोंमें और देशांतरमें भ्रमण करते हो सो देह तेरा प्रत्यक्ष कहां है ॥ ९८ ॥ हे रामजी ! स्वप्नांतरमें स्वप्न होता है तिस स्वप्नांतरके स्वप्नमें जिस करके तू देशांतरमें विचरता है सो स्वप्नांतरके स्वप्नका तेरा देह अब कहां है तिसको तुम कहो ॥९९॥ हे रामजी ! इस संसारको तुम दीर्घ स्वप्नको जानो अथवा दीर्घ चित्तके भ्रमको जानो अथवा दीर्घ मनके मनोरथको जानो ॥ २०० ॥ हे रामजी ! जैसे पुरुष भयभीत स्वभाववाला है सो अपने संकल्पकी रचनामें भयको नहीं प्राप्त होता है तैसेही निर्मलबुद्धि पुरुष अपने संकल्पकी रचनासे भये संसारम भयको नहीं प्राप्त होता है ॥ १ ॥ हे रामजी ! तत्त्वका भले प्रकार विचार करके अपने आत्माका स्वभाव निर्मल होता है जैसे शुद्ध सुवर्ण-तांबाकी नाईं फिर मलको नहीं ग्रहण करता है ॥ २ ॥ हे रामजी ! यह जगत् केवल आभासमात्र है न यह सत्य है न असत्य है इस प्रकार करके और कल्पनाका जो त्याग करना तिसके भली तरहसे विचारको ज्ञानी लोक जानते हैं ॥ ३ ॥ हे रामजी ! मैं देहादिक नहीं हूं यह भोग मेरेको नहीं है

और सत्यभी नहीं है यह सबही संकल्पके रचने मात्र है सब व्यर्थ है अनर्थके लिये भासता है ऐसी भावनासे सबही वृथा होता है ॥ ४ ॥ हे रामजी ! तत्त्ववेत्ता पुरुषको दो प्रकारकी दृष्टि करने योग्य है, दो प्रकार कौन हैं यह संपूर्ण विश्व मैं हूं अथवा संपूर्ण चैतन्य यही है और सब यह आडंबर मात्र है और व्यर्थ है ऐसी दृष्टिसे यह प्रपंच अनर्थ करनेके लिये नहीं भासता है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! सबको आत्मरूप जानना अथवा सबको चतन्यरूप जानना यह दो प्रकारकी ज्ञानदृष्टि सत्य है और अतिशय करके सिद्धिको देती है इन दोनोंमें जिसको तू सुन्दर मानता है तिसको तू सेवन कर ॥६॥ हे रामजी ! हे निर्मलबुद्धे ! ! इन दो प्रकारकी ज्ञानदृष्टियों कर युक्त होकरके तू विहार करता हुआ रागद्वेषके क्षयको कर और अपने कल्याणको सिद्ध कर ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जो कुछ पुरुषार्थ इस लोकमें सबसे उत्तम कहा है आकाशमें और पृथिवीमें और स्वर्गमें सो सबही रागद्वेषके क्षय होनेसे सिद्ध होता है ॥८॥ हे रामजी ! रागद्वेषही मनको मलीन करनेवाले हैं जिसके रागद्वेषरूपी सर्प नष्ट नहीं भय ह सो पुरुष कल्पवृक्षके पासभी रहे तोभी उसको कुछ प्राप्त नहीं होता है ॥९॥ हे रामजी ! जो लोग ज्ञानवान् नियमवान् और चतुर हैं और शास्त्र पढनेवाले हैं जो रागद्वेषके अधी— सो शृगालों सरीखे हैं तिनको धिक् है उनका सब कुछ वृथा है ॥१०॥ हे रामजी ! यह मेरा धन पराये लोकने खाया है यह धन मेरेको दिया है इस प्रकारका जो व्यवहार है सोही रागद्वेषका स्वरूप है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! धन, बन्धु, मित्र ये संसारमें वारंवार आते हैं चले जात हैं, विचारवान् पुरुष इनमें राग क्यों नहीं करते हैं और विराग क्यों करते हैं इनमें रागद्वेषसे क्या सिद्ध होता है ॥१२॥ हे रामजी ! तुम सावधान हो ज्ञानवान् हो

मैंने तुमको यह ज्ञान समझादिया है मैं सूर्यलोक पर्यन्त निर्बिकार आनंदमय देखता हूं ॥ १३ ॥ हे रामजी ! बोधको प्राप्त हो आज तेरेको बोधका समय है सत्य वस्तुको विचार करके देख इस व्यर्थ भ्रमको त्याग कर तिस कारण करके तेरेको जन्म नहीं होवेगा दुःख भी दोषभी नहीं होवेंगे भ्रमभी नहीं होवेंगे तू सबही संकल्पको त्याग करके आत्मसुखमें सावधान स्थित हो ॥ १४ ॥ हे रामजी ! तुम महात्मा हो विकल्प जिसके सब गलित भये हैं संपूर्ण दोषजाल तुम्हारे नष्ट भये हैं तुम्हारी ज्ञानदृष्टि सुखको और सारको प्राप्त भई है और सुषुप्तिकी नाईं अचल भई है और सौम्यभी भई है अब तुम चित्तको शुद्ध करने वास्ते उपशमको धारण करो और आत्माके स्वरूपमें सावधान स्थिर हो ॥ १५ ॥

वाल्मीकिजी भरद्वाजके प्रति कहते भये ।

हे भरद्वाज ! श्रीरामचंद्रजी इतना वचन वसिष्ठजीका कहा श्रवण करनेसे स्वस्थ समचित्त आत्मस्वरूपमें विश्रांत और परमानंदमें अपनी इच्छापूर्वक प्राप्त होनेसे और तहां सभामें सर्व देवता, ऋषि, राजा, नगरके लोग, देशदेशांतरके लोग सबही आनंदको प्राप्त होनेसे वसिष्ठजीका वचनामृत रामचंद्रजीके मनकी स्थिति वास्ते जो प्रकट होता भया सो वचनरूपी अमृत विश्रांत होता भया जैसे क्षेत्रोंमें खेती सिद्धहोनेसे बादलोंका वर्षाजल विश्रांत होता है ॥१६॥ इससे उपरांत आधा मुहूर्त समय गये पीछे श्रीरामचंद्रको फिर आत्मबोध होनेसे कहनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी रामचंद्रको फिर तिस पूर्वले अर्थको कहते भये ॥१७॥ हे रामजी ! तू भली तरहसे बोधको प्राप्त भया है और आत्मतत्त्वकोभी प्राप्त भया है इसी प्रकार इस अर्थको पाकरके स्थित हो यही सबका सार है जैसे सुमेरु पर्वत त्रैलोक्यमें सार है ॥१८॥ हे रामजी ! यह संसारचक्र सदा भ्रमता

रहता है संकल्प इसके मध्यकी नाभि है जैसे चक्रके मध्यकी नाभी किसी प्रकारकी करके रोके जावे तो चक्र नहीं भ्रमता है तैसे संसार-चक्रकी किसी नाभि संकल्प है जिसको प्रतिबंध करनेसे संसारचक्र नहीं भ्रमता है ॥१९॥ हे रामजी ! सो मनके संकल्परूपी क्षोभको प्राप्त भये संते संसारचक्रको भावे कितना रोके तोभी संकल्पके वेग करके निरंतर भ्रमता है ॥२०॥ तिससे हे रामजी ! निर्मल बुद्धि करके और सुजनता करके युक्त शास्त्रज्ञान करके युक्त ऐसा अपने यत्न करके जो प्राप्त नहीं भया सो कहींभी नहीं प्राप्त होता है ॥२१॥ हे रामजी! जो चित्रमें लिखा जो नर है तिसते देहधारी नर अत्यंत तुच्छ है चित्रका नर कैसा है सदा प्रसन्न है और क्लेशरहित है देहधारी नर कैसा है दुःख करके मलीनमुख हो और देहके पात और देहके छेदके भय-युक्त है ॥२२॥ हे रामजी ! तिससे जो यह मांस रक्तमय देह है सो चित्रमें लिखे देहसेभी तुच्छ है ऐसे रक्तमांसके तुच्छ देहमें तुम जैसे विवेकी जनोंको क्या प्रीति है और क्या विश्वास है॥२३॥हे रामजी ! यह देह दीर्घ स्वप्नका है अथवा चित्त संकल्प करके कल्पना किया है इसको भूषण किये संते अथवा दूषण किये संते चैतन्यरूप आत्मा-की क्या हानि है और लाभ क्या है ॥२४॥ हे रामजी ! यह अहं-कार नामा वेताल कैसा है निःसार है और संपूर्ण संतजनों करके निंदित किया है सो कहींसे अकस्मात् आकरके चित्तरूपी घरमें प्रविष्ट भया है॥२५॥हे रामजी ! इस अहंकार नाम वेतालके अधीन होनेसे नरक फल प्राप्त होता है तिससे तूभी यह दुर्मति अहंकारके चाकर भावको मत प्राप्त हो ॥२६॥ हे रामजी ! यह शून्य जैसे देहमें चित्तरूपी यक्षने प्रवेश करके जो कुछ किया है सो कहा नहीं जाता है किससे जिससे महात्मा पुरुष भय करके समाधि करनेमें

रत होते भये ॥२७॥ हे रामजी ! जौनसे अहंकार नामधारी पिशाचने अपने वश किये हैं सोही पुरुष नरकरूपी अग्निको प्रज्वलित करनेको काष्ठभावको प्राप्त होते भये ॥ २८॥ हे रामजी ! जौनसे चित्तरूपी यक्षने जीते हैं तिनको जो आपदा होती है सो आपदा सैकडों वर्षों करकेभी नहीं गणी जाती है॥२९॥हे रामजी ! जौनसा पुरुष चित्त यक्ष करके दृढ दबा लिया है तिसको गुरु और बांधव रक्षा करनेको समर्थ नहीं होते हैं॥३०॥हे रामजी ! जिसका चित्तरूपी वेताल शांत भया है तिस पुरुषको गुरु, शास्त्र और बांधव सबही रक्षा करनेको समर्थ होते हैं ॥ ३१॥ हे रामजी ! भोगोंको बाहिर करे और संतजनोंके चरणोंको आश्रय करे अपने उत्तम अर्थको विचार करके एक आत्माको सेवन करे॥३२॥हे रामजी ! यह देह अपवित्र है और तुच्छ है और दुःखका पात्र है और पापका मूल है ऐसे देह करके अर्थ कुछ नहीं मानना देह चितारूपी चंडी महाभयानक है॥३३॥हे रामजी ! यह देह रचा और किसीन है और घोर यक्षने और किसीने आक्रांत किया है दुःख और किसीको है और दुःख भोगनेवाला और कोई है यह चिंता मूर्खताके चक्रको भ्रमण करावती है ॥३४॥ हे रामजी ! इसमें यह परम ज्ञानदृष्टि है सो महामोहको विनाश करनेवाली है तिसको तुम श्रवण करो जो ज्ञानदृष्टि पूर्वकालमें शिवजीने मेरेप्रति कही है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! एक समय मैं कैलासपर्वतमें गंगाके तटकुंजमें निवास करता भया शिवजीको प्रसन्न करने वास्ते तप करता भया तब पाद्य अर्घादिकों करके शिवजीका पूजन करके फिर प्रदक्षिणा प्रणाम मैं करता भया तिससे उपरांत मेरेको अनुग्रह वास्ते प्रसन्न होय करके सदाशिवजी पार्वतीसहित आ करके मेरेको वचन कहते भये ॥ ३६ ॥

ईश्वरजी कहते भये-हे ब्रह्मन् ! तेरे अंतःकरणकी वृत्तियां उपशम करके शोभायमान और कल्याण करनेवाली हैं सो परमात्मा विषे विश्रांत भई हैं ना ॥ ३७ ॥ हे मुने ! हम तेरेको कुशल प्रश्न करते हैं तेरा तप विघ्नरहित होता है ना ? और तेरेको कल्याण है ना और तेरेको प्राप्त होने योग्य सार पदार्थ प्राप्त भया है ना और संसारकी भय संपदा तेरी शांत नहीं भई है ॥३८॥ हे रामजी ! ऐसा वचन सदाशिवजीके कहते संते मैंने बहुत विनतीयुक्त वाणी करके शिवजीको वचन कहा तिसको तुम श्रवण करो ॥३९॥ हे त्रिनेत्र ! जो तुम्हारा स्मरण करनेवाले हैं सो पुरुष कल्याणयुक्त हैं दुर्लभ कुछ नहीं है और इन्हको संसारके भय नहीं होते हैं ॥ ४० ॥ हे ईश्वर ! जो पुरुष तेरे स्मरणके आनंद करके परिपूर्ण चित्त हैं तिन्हको जो प्रणाम नहीं करता है ऐसा इस जगत् मंडलमें कोई नहीं है ॥ ४१ ॥ हे स्वामिन् ! सो देश उत्तम है सो नगर ग्राम उत्तम है सो देश और पर्वत उत्तम है जहां तेरा स्मरण करनेमें एकाग्र बुद्धिवाले जन निवास करते हैं ॥४२॥ हे शिवजी ! जिस जीवका पुण्य फल देनेको प्रकट होता है जिससे शुभ कर्म वर्त्तमान होते हैं और जिसका कल्याण आगे होना होवे तिसको तुम्हारा स्मरण होता है ॥४३॥ हे जगत्पते ! तेरा स्मरण कैसा है ? ज्ञानरूप अमृतका कलश है धृतिरूप चांदनीका चंद्रमा है और मोक्षरूप नगरका द्वार है ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! तुम्हारे स्मरणरूप उदार चिंतामणिको प्राप्त होकरके मैंने संपूर्ण आपदाके शिर ऊपर चरण दिया है ॥४५॥ हे रामजी ! प्रसन्न भये शिवजीको इतना कह करके मैंने फिर प्रणाम करके जो वचन कहा तिसको तुम श्रवण करो ॥४६॥ हे भगवन् ! तेरे प्रसादसे मेरी संपूर्ण दिशा आनंद करके पूर्ण भई है परंतु एक संदेश मैं तुमको

पूछता हूं तिसका निर्णय तुम मेरेको कहो ॥४७॥ हे देव ! प्रसन्न बुद्धि करके मेरेको कहो जो सर्व पापके क्षयको करे और सबही कल्याणको वृद्ध करनेवाला होवे ऐसा जो तुम्हारे पूजनका विधान है सो कैसे होता है ॥ ४८ ॥

ईश्वरजी कहते भये—हे ब्रह्मन् ! तू ब्रह्मवेत्ता जनोंमें श्रेष्ठ है देव पूजाके उत्तम विधानको तुम सुनो जिसको एक वार श्रवण करनेसे संसारसे मुक्ति होती है ॥४९॥ हे ब्रह्मन् ! हम तेरेको प्रश्न करते हैं तूभी जानता है जो देवता है, कौन हैं. हे मुने ! ना विष्णुदेव है, ना शिव देवता है; ना ब्रह्मा है, ना इंद्र है ना वायु है ना सूर्य है, ना पवन है, ना चंद्रमा है, ना ब्राह्मण है, ना क्षत्रिय है, ना देहरूप है, ना चित्तरूप है, ना तू है, ना मैं हूं. ना देव लक्ष्मीरूप है ॥५०॥ हे मुने ! जो किसी करके सिद्ध नहीं भया और आदि अंतसे रहित ऐसा जो प्रकाश होना सोही देव कहा है सो कैसा है स्वरूपसे रहित है. हे मुने ! ऐसे प्रकाशस्वरूपवाले देवका आद्यंतसहित और पांचभूतोंकरके बनेहुए देहादिकमें कहांसे होना है ॥५१॥ हे ब्रह्मन् ! ऐसे स्वभाव करके स्वयं प्रकाशमान आत्माको देव कहते हैं और जो प्रकाश है सो उपाधिक है और क्रिया करकेबना है ब्रह्मा विष्णु रुद्र इत्यादिक सबही उपाधि करके बने हैं ॥ ५२ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो सदा सर्वदा एक जैसा प्रकाश है सो केवल आत्मामें है सो आपही प्रकाशमान है तिसको स्वयं प्रकाश कह्या है ऐसा प्रकाशरूप देव है सो नामरूपसहित और गुणक्रियासहित और उत्पत्ति विनाशसहित और क्षय-वृद्धिसहित ऐसे ब्रह्मादिकमें कहां है जिसमें आदि अंतसे रहित और किसीसे बना नहीं ऐसा अपने स्वभाव करके अखंड प्रकाश होवे तिसको देव कहते हैं चैतन्य कहते हैं शिव कहते हैं सोही आत्मा महादेव है

तिसकोही तू मेरे स्वरूपवाले देवको जान ॥५३॥ हे मुने ! सोही आत्मा देवता नाम करके कह्या है तिसकाही पूजन करने योग्य है सोही आत्मा परम देवता है तिससेही यह सत्तावाला और सत्तारहित संपूर्ण जगत् भासता है और उत्पन्नही भया ॥५४॥ हे ब्रह्मन्! जिन्होंने स्वयंप्रकाश आत्मा देवताका तत्त्व नहीं जाना तिनको मूर्तिवाले देवताकी पूजा गंधपुष्पादिकों करके कही है कैसे जिस पुरुषसे जो जन प्रमाण मार्ग नहीं चला जावे तिसको एक कोश प्रमाण मार्ग चलनेको कह्या है॥५५॥हे ब्रह्मन् ! रुद्रादिकोंकी पूजासे इतने प्रमाणवाला बहुत थोडे प्रमाणवाला फल प्राप्त होता है सो भोगसे उपरांत क्षयको प्राप्त होता है और आत्माकी पूजासे अखंड और प्रमाणरहित फल प्राप्त होता है ॥५६॥ हे मुने ! जो पुरुष अखंड और स्वाभाविक फलको त्याग करके और नाश होनेवाले फलको चाहता है सो पुरुष कल्पवृक्षोंके वनको त्याग करके करीर वृक्षोंके वनके फलोंकी इच्छा करके जाता है ॥ ५७ ॥ हे मुने ! आत्मा देवकी पूजामें ज्ञान, समदृष्टि और शांति यह तीन उत्तम पुष्प कहे हैं सोही एक आत्मा शिव है और चैतन्यमात्र है और निर्मल हैं सोही देवता है तिसको सर्वत्र व्याप्त भयेको देखना यही देवताका ध्यान है जो देवताकी पूजाको जानते हैं सो इस प्रकारकी पूजा करते हैं ॥ ५८ ॥ हे मुने ! शमबोधादिक पुष्पों करके आत्माको जो पूजना है तिसकोही देवपूजा जानते हैं जो काष्ठ पाषाणकी मूर्तियोंकी पूजा है सो देवार्चन नहीं है ॥५९॥ हे मुने! आत्माही देवता है ज्ञानही तिसकी पूजाविधि है इस पूजाको त्याग करके जो पुरुष नामधारी मूर्तिवाले देवताका पूजन करते हैं सो पुरुष चिरकालपर्यंत क्लेशके पात्र होते हैं॥६०॥ हे मुने। जिन्होंने परमात्माका तत्त्व जाना है ऐसे जो संतजन हैं सो आत्मज्ञान विना

और देवताका पूजन नहीं करते हैं जो करते हैं तोभी बालकोंकी समान क्रीडा करते हैं ॥६१॥ हे ब्रह्मन् ! आत्माही देवता है सोही भगवान् शिव है और जगत्का परम कारण है सो ज्ञान करके पूजने योग्य है सो सर्वदा जानने योग्य है ॥६२॥ हे मुने ! तू इस आत्माको चैतन्यताके आकाशको मान और अविनाशी जान जीव जान अपने स्वभावको जान सोही पूजनीय है पूजने योग्यका आत्मा है उसको जाननाही उसका पूजन है ॥६३॥ हे मुने ! यह देह देवताका मंदिर है और जीवही शिवरूपी देवता है अज्ञानरूपी निर्मलको त्याग करके सोहंभाव करके पूजन करे सोहंभाव क्या कहिये "सः शिवः अहं" सो शिव मैं हूं ॥६४॥

श्रीवसिष्ठजीका प्रश्न॥ हे महाराज ! चैतन्याकाश क्या कहिये और मायाका स्वरूप यह जगत् कैसे भासता है और आत्माके पूजनमें आत्माको जीवादि भाव कैसे होता है इसको तुम मेरे प्रति कहो चैतन्य और चैतन्यका आकाश आत्मा और जीव चैतन्यकी सत्ता और जगत् यह एक है अथवा भिन्न है यहभी कहो ॥६५॥

ईश्वरजी कहते हैं। हे मुने ! सर्वत्र चैतन्यरूप आकाश भासता है कैसा है पारावारकी मर्यादासे रहित है जिसकी चैतन्यता प्रलयकालमें शेष रहती है आकाश कैसा है जैसे गृहमें सर्ववस्तु निकासनेसे शेष अंदरमें आकाशही रहता है तैसेही मायासहित जगत्का लय होनेसे आकाशकी नाईं एक चैतन्य शेष बाकी रहता है ॥ ६६ ॥ हे मुने ! जो जो सूर्य चंद्रादिक आपही प्रकाशमान होते हैं तिनका प्रतिबिंबका प्रकाश अपनेमें नहीं होता है जलादिक उपाधिमें प्रतिबिंब होता है ॥६७॥ हे मुने ! आत्मा स्वयंप्रकाश है माया संकल्परूप है प्रतिबिंब जीव है तिस आत्माके प्रकाशसे जगत्में सत्ता है ॥ ६८॥ हे मुने ! इसी रीति करके जगत् स्वप्नके

और संकल्पके नगर जैसा भासता है सो चैतन्यके प्रकाशसे भासता है इस कारणसे जगत् चैतन्यरूप है चित्रका आधार दिवाल सरीखा भिन्न नहीं है ॥६९॥ हे मुने! सो आत्माका चैतन्य विकाररहित होनेसे और प्रतिबंधरहित होनेसे और संकल्पद्वार करके फुरनेसे आकाशकी नाँई दृश्य होता है सो चिदाकाश अपने चेतनसे सृष्टि आदिमें प्रकाश होता है तिसको जगत् कहते हैं ॥७०॥ हे मुने! तिस कारणसे स्वप्नके नगर जैसा अथवा संकल्प नगर जैसा जो यह जगत् यहां भासता है तिसमें चिदाकाशसे विना दूसरा कुछ कहांसे है ॥७१॥ हे मुने! सृष्टि आदिसे सब कुछ जाननेमें स्वर्गपातालादिकमें चिदाकाशसे भिन्न क्या है जाननेवाले तत्त्ववेत्ता कह देवे तिससे सर्वत्र चैतन्यमात्रही है ॥७२॥ हे ब्रह्मन्! यहां भेद कोई नहीं है आकाश है परमाकाश है ब्रह्माकाश है जगत् है चित् है यह सब नाम भेद है वस्तु एक ही है जैसे बीजके अनेक अंकुर और वृक्ष और फल बीज होते हैं वह बीज एकरूपही सबमें एक है, दो हैं इत्यादि भेद केवल नाममात्र है ॥ ७३ ॥ हे मुने! जैसे अंतःकरणके ज्ञानरूपी फुरना आकाश स्वप्नमें जगद्रूप करके भासता है तैसे ही जाग्रत् नाना स्वप्नमें सो संविदका फुरणारूपी आकाश जगद्रूप भासता है ॥७४॥ हे मुने! इस प्रकार करके यह संपूर्ण विश्व केवल परमात्मा है और ब्रह्म है और परमाकाश है और यही सनातन देव है ॥७५॥ हे मुने! तिस आत्मारूपी देवको जाननाही पूजन है यही परम कल्याण है इससेही सर्व शुभ प्राप्त होता है सो आत्माही स्वर्गादिकका मूल आधार है तिसमें यह नाना प्रकारका विश्व स्थित भया है ॥७६॥ हे मुने! तिस परमात्मारूप देवके पूजनसे अखंड सुख फल प्राप्त होता है कैसा है कि जो साधन सामग्रीसे बनता नहीं है और आदि अंतसे रहित है बाहि-

रके साधन जो हैं कर्म क्रियादिक तिन करके सिद्ध नहीं होनेवाला है ॥ ७७॥ हे मुने ! तुम आत्मतत्त्व जाननेमें सावधान हो तिस कारणसे तुम्हारेको प्रकट कहा है तुम मूढ लोकोंसरीखे नामधारी देवताको पूजनेके योग्य नहीं हो जिसमें पुष्प धूपादिकोंका महासामग्रीका संग्रह करने बनता है सो वृथा है ॥७८॥ हे मुने ! जो पुरुष मूढबुद्धि है बालकोंकी नाईं जिनके चित्त हैं तिनको पुष्पधूपादिकों करके नामधारी देवताकी कृत्रिम पूजा कही है॥७९॥हे मुने ! अपने संकल्प करके किये जो पदार्थ और विधानक्रम हैं तिन करके नामधारी कृत्रिम देवताकी पूजा करके बाल बुद्धि पुरुष संतोषको प्राप्त होते हैं ॥ ८०॥ हे मुने ! सो मूढ पुरुष अपने संकल्पसे रचना किये द्रव्यों करके देवता पूजन करके जो जिस देवतासे फलको पावते हैं सो मिथ्या फलको पावते हैं अखंड सुख तिनको नहीं होता है ॥८१॥ हे मुने ! हस्त पादादि अंगावला जो देवता पूजाको कलपन किया है तहां अपने चैतन्यका संकल्प फुरने विना और सार क्या है सो तुम कहो॥८२॥ हे मुने ! संसार केवल चैतन्यमात्र है इसका सार चैतन्यही है सो ही चैतन्यात्मा देव सर्वरूप है तिससे ही सर्वदा सुख प्राप्त होता है ॥८३॥ हे ब्रह्मन् ! सो देव दूर नहीं है और दुर्लभ भी किसीको नहीं है सो सदा संपूर्ण देहोंमें चैतन्य सत्ता करके व्याप्त है जैसे आकाश सर्व ब्रह्मांडमें व्याप्त है ॥ ८४ ॥ हे मुने ! सो आत्माही कर्म करता है, सोही भोजन करता है, सोही धारण करता है, सोही चलता है, सोही श्वासको लेता है सोही अंतःकरण करके जानता है सोही त्वचा करके अंगोंको जानता है ॥ ८५ ॥ हे मुने ! जैसे वसंतऋतु पुष्प अंकुरादिकोंकी इच्छासे रहित है तो भी स्वभाव करके अंकुरोंको प्रकट करता है तैसे ही चिदात्मासे इच्छा-

रहित ही जगत्‌की संपदा स्वभाव करके प्रकट होती है ॥८६॥ हे मुने! कितने कहते हैं आत्माकी इच्छा करके भोगोंके वास्ते सृष्टि होती है, कितने कहते हैं चिदात्माकी क्रीडाकी इच्छा करके संकल्पसे सृष्टि होती है, परंतु यह विचार कोई नहीं, कारण आत्मा इच्छारहित है उसको भोगकी और लीलाकी कोई इच्छा नहीं है जैसे सूर्यके उदय होनेसे स्वभाव करके प्रकाश होता है तैसेही आत्माकी सत्ता करके जगत्‌की सृष्टि होती है ॥ ८७ ॥ हे मुने! जैसे शरदृतुमें निर्मल चंद्रमाके संगमको पाकरके जगत्‌के पदार्थोंकी शोभा सर्वत्र लक्षित होती है तैसे चैतन्यरूपी चंद्रमाके बिंबकी सत्तामें संगमको पाकरके जगत्‌के पदार्थोंकी संपदा चैतन्यसत्ताविषें सर्वत्र लक्षित होती है जगत्‌के संपूर्ण पदार्थोंकी संपदाका लक्षित होनेकी चैतन्यसत्ता ही आधार बनी है ॥८८॥ हे मुने! जैसे रसायनका जल सिंचनेसे लोहके अनेक भार सुवर्ण होते हैं तैसे चैतन्य सत्तारूपी रसायनको व्याप्ति करके जगत्‌के पदार्थ समूहकी माला स्वरूपकरके भासती है और आनंदप्रेम आदि फलको प्राप्त होती है ॥ ८९ ॥ हे मुने! जो तुमको ऐसा संदेह होवे कि चैतन्यसत्ता रसायनकी नाईं व्याप्त हो करके पदार्थरूप करके फुरे है तो जडता कैसे बनी है जैसे जलमें डूबे भये पदार्थका सूखना नहीं बने है इसमें हम समाधान करे हैं दृष्टांत करके हे मुने! चैतन्यकी छाया करकेही जडताभी उदय होती है जैसे मंदिरादिक जो हैं सो सूर्यके तेज करके प्रकाशमान होते हैं तिनके अंदर स्तंभादिकभी सूर्यके तेजसेही प्रकाश होतेहैं परंतु बाहिर सूर्यका प्रकाश प्रकट हैऔर अंतरमें काष्ठमृत्तिका पाषाणादिकोंके प्रतिबंधसे सूर्यकी सत्ता करके अंधेरा होवे है तैसेही चैतन्यसत्ताकी व्याप्ति करके देह इंद्रियादिक भासता है परंतु देहइंद्रियादि घटपटादिकोंमें चैतन्यसत्ता स्पष्ट नहीं

अनुभव होती है तिनकेअभ्यासकरकेअंतःकरणमें जडता होती है ९०

श्रीवसिष्ठजीका प्रश्न। हे महाराज! तुमने कहा जो चैतन्य सर्वव्यापी और सर्वगत है चैतन्य तो एक सरीखा है पुनः यह देह चैतन्यमय है सो मूर्च्छा और निद्रा मरणादिकमें जड कैसे होवे है और नेत्र, श्रवणादिकके होनेसे अंधा बहिरासा कैसा होता है॥ ९१ ॥ फिर इस देहको लोक प्रत्यक्ष अनुभवसे कहते हैं यह देह आगे चैतन्य था अब जड होगया है ऐसा कहना योग्य नहीं है सो कैसे चैतन्य सत्ताकी व्याप्ति करके भासता है सो चैतन्य अविनाशी है और निर्विकार है और सदा एकरस है ॥ ९२ ॥

श्रीसदाशिवजी वसिष्ठजी प्रति कहते हैं।

हे ब्रह्मन् ! जो तुमने प्रश्न किया है सो तुमको हम कहते हैं तुम सबको श्रवण करो तुमने यह महान् प्रश्न किया है तुम ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो ॥९३॥ हे मुने ! इस देहमें चैतन्यता व्याप्त है और सर्वभूतोंमें व्याप्त है सो दो प्रकार करके कह्या है एक चलायमान कही है और एक परा कही है सो अचल है जो चलयमान है सो देह इंद्रियादिक पदार्थोंमें आसक्त भई है जैसी तिनकी उपाधि करके ज्ञाता ज्ञान कर्त्ता और भोक्ता इत्यादिक स्वभाववाली कही और जो पराचित निर्विकार है इसी चित्तको उपाधिक भेद करके चलस्वभाव कहा है॥ ९४ ॥ हे मुने ! सो चलस्वभाव चैतन्यसत्ता बुद्धिमें अपने संकल्प आप ही रूपांतरको प्राप्त भयी जैसी स्थित जैसे सुंदर शीलवाली स्त्री अपने संकल्प करके परपुरुष संयोगको ध्यान करके स्वप्नादिकमें व्यभिचारिणी स्वभावको अनुभव करती है॥ ९५ ॥ जैसे कोई पुरुष क्रोध करके क्षणमें और जैसा हो जाता है तैसे यह चैतन्यसत्ता अपने संकल्प विकल्प करके और

स्वभाव जैसी होती है परंतु अपने स्वभावको नहीं त्यागती है॥९६॥ हे मुने! सो चैतन्यसत्ताही अपने संकल्प करके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पंचभूत, देश, काल और चौदह भुवन, सप्त द्वीपादि और क्षणसे लेकर वर्ष युग कल्प प्रमाण होकरके आपही जीव होकरके बुद्धि मन और चित्त इन्द्रिय देहरूप होता है ॥ ९७ ॥ हे मुने! सो चल स्वभाव चैतन्यसत्ता मन होकरके संसारको अवलंबन करती है जैसे उत्तम ब्राह्मण अपनेको चंडाल माननेसे चंडालरूपको प्राप्त होता है ॥९८॥ हे मुने! सो चल स्वभाव चैतन्यसत्ता अनंत संकल्पों वाली है अपने जडताके संकल्पोंकरके स्थूलरूप होती है सो जड-संकल्पसे मोहको प्राप्त होती है जैसे जल अत्यंत शीतलता करके पत्थरभावको प्राप्त होता है ॥ ९९॥ हे मुने! सोही अपने संकल्पसे भई हुई भय दृष्टिमें भीत होकरके पलायन करती है जैसे पुरुष निर्जल स्थानमें वनमें अंधकारमें अपने संकल्पसे कल्पना किये वेतालके भयकरके पलायन करता है॥२००॥हे मुने! जैसे ऊटनी कांटेवाले और कडुए पत्रोंको चाबती है और अत्यंत मीठे जानती है तैसे दुःख-मय विषयोंको सुख करके मानती है ॥१॥ हे मुने! सोही अपने संकल्पके वेगसे भयभीत होती है जैसे गर्दभी अपने बोलनेके शब्दसे भयभीत होकरके भाग जाती है हे मुने! इसके तुल्य मूढ कोई नहीं है बालस्वभावभी नहीं है और चंचल स्वभावभी नहीं है निर्बलभी नहीं है ॥२॥ हे मुने! सोही अपनेको दुःखी मान करके झूठे विषयसुखोंका संग्रह करती है कैसी है मानों स्वप्नको प्राप्त भई है मानो मदोन्मत्त है मानो मोह करके मूर्च्छित भई है ॥ ३ ॥ हे मुने! यह चैतन्यसत्ता अपने अपने संकल्पकी उपाधि करके इस प्रकार चंचल स्वभाव भई है वास्तव विचारे तो इसमें दृश्य दर्शन और द्रष्टा यह भेद कोई नहीं है जैसे पत्थरमें तेल नहीं है कर्म और कर्ता

और क्रियाभी नहीं है, जैसे चन्द्रमामें श्यामता नहीं है प्रमाण करनेवाला प्रमाण करने योग्य और प्रमाण यह भेदभी नहीं है जैसे आकाशमें अंकुर नहीं उगे हैं ॥ ४ ॥ चेतना और चेतने-योग्य और चेतन करनेवालेका भेदभी नहीं है जैसे स्वर्गके नंद-नबागमें खदिर वृक्ष नहीं होता है और हम तुम इतर पुरुषकाभी भेद नहीं जैसे अम्बरमें पर्वतभाव नहीं होता है देहरहित और देह-सहित यह भेदभी नहीं है जैसे कज्जलमें शंख जैसी श्वेतता नहीं होती है ॥ ५ ॥ अनेकरूपता और एकरूपताका भेद नहीं है जसे अणुमें सुमेरु नहीं है शब्द और शब्दको अर्थका भेदभी नहीं जैसे रेतीमें लता नहीं होती है नास्ति और अस्तिका भेद नहीं है जैसे सूर्यमण्डलमें रात्रि नहीं है और वस्तु और अनही वस्तु यह भेदभी नहीं है जेसे तुषारमें उष्णता नहीं है और शून्यता और अनहीशून्यताका भी भेद नहीं है जैसे आकाशमें महा आकाश नहीं है ॥६॥ हे मुने ! जो निर्विकल्प चैतन्यसत्ता है सो सर्वगत है और एक स्वभाव है और निर्मल है सबको प्रकाश करती है सर्व तेजोंको मशाल सरीखी प्रकाश करनेवाली है ॥७॥ जो निर्विकल्प चैतन्यसत्ता है सो अपनेही चेतनसे चिद्भावको प्राप्त भई है सोही चलस्वभाववाली चैतन्यसत्ता चित्त भई है जैसे साधु पुरुष दुष्ट जनोंके संग होनेसे असाधु जैसा होता है ॥ ८ ॥ सो निर्विकार चित्सत्ता उपाधि करके विकारयुक्त भासती है उपाधि विना शुद्धही है जैसे सुवर्ण मल करके तांबाकी नाई होता है मल जलावनेसे शुद्ध सुवर्ण होता है ॥ ९ ॥ इस शुद्ध चित्सत्ताका अभाव जाननेसे संसार प्रतीत होता है और केवल शुद्ध चित्सत्ता जाननेसे असत्यरूप संसार शांत है ॥ १० ॥ हे मुने ! इस चित्सत्ताको संसारदशामें चढावनेकी रथरूपी जीव

भाव है जीवको संसारमें प्राप्त करनेको अहंकार रथरूप है अहंकारको बुद्धि रथरूप है और बुद्धिको मन रथरूपी है और मनको इंद्रियोंका गण रथरूपी है और इंद्रियगणको प्राण रथरूपी है प्राणको स्थूल देह रथरूप है और स्थूलदेहको अश्व वृषभादिकों करके चलनेवाला काष्ठरचित रथ है ॥११॥ हे मुने ! इस रथकी गति कर्म है जरा और मृत्यु इसके पिंजरारूप है इस प्रकार करके यह संसारचक्र प्रवृत्त होता है ॥१२॥ हे मुने ! इस संसारचक्रका मुख्य प्राणही रथ कहा है मनके संकल्प विकल्प कल्पनाका मूल रथ प्राण है प्राण करकेही मन प्रवृत्त होता है यहां प्राण पवन है तहांही मन प्रवृत्त होता है यही जीवरूपी पक्षीको जरामरणमें भ्रमावनेवाला चक्र है ॥१३॥ हे मुने ! पवनसंकल्प विना आकाशमें लीन और संकल्परहित होनेसे प्राण भी नहीं प्रवृत्त होता है जैसे तेजके अभाव होनेसे रूप नहीं दृश्य होता है ॥१४॥ हे मुने ! चित्तके फुरने और प्राणकी नाडियोंमें प्रवृत्त होनेसे मन द्विगुण होय करके प्राणमार्गमें प्रवृत्त होता है ॥१५॥ हे मुने ! सो चित्तसत्ता चित्तमें ज्ञानरूप करके फुरती है सो इस देहमें सर्वत्र है प्राणके प्रवृत्त होनेसे क्षोभको प्राप्त होती अनुभव होती है ॥१६॥ हे मुने ! परमात्माने देहरूपी गाडियोंके खैंचने निमित्त मन और प्राण दृढ काम करनेवाले जोतनेके बलस्थानमें अधिकारी किये हैं ॥१७॥ हे मुने ! सूक्ष्म शरीर पवनरूप होकरके उठावता है हृदयमें स्थित है भूतकी नाईं भ्रमावता है तब शरीरको जीवता कहते हैं ॥१८॥ हे मुने ! जब सूक्ष्म शरीर क्षीण होता है तो चित्त शून्य हो जाता है तब इस देहको मृत भया कहते हैं ॥ १९ ॥ हे मुने ! इस प्रकार करके अनेक देहधारियोंके देह जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं इसमें शोक और आश्चर्य नहीं मानना ॥२०॥ हे मुने ! चैतन्य-

सत्तारूप समुद्रमें यह अनेक देहरूपी बुदबुदे फुरते हैं ऐसेही अथवा इन देहोंसे विलक्षण हैं तिनको विचारवान् पुरुष अहंता और ममता करके शोक हर्षको नहीं करते हैं ॥ २१ ॥ हे मुने ! जो पदार्थ अपने संकल्पसे रचन किया है सो संकल्पके त्यागसे क्षय होता है जैसे मनके मनोरथ रचना है जैसे गंधर्वनगर फुरे हैं वास्तव जाननेसे लय हो जाते हैं॥ २२ ॥ हे मुने ! जैसा संकल्प करनेमें खेद होता है तैसा संकल्प त्यागनेमें खेद नहीं है संकल्पका क्षय और गंधर्वपुर यह दोनों संकल्पके उदयमें सृष्ट भये हैं संकल्प क्षयमें नहीं रहते हैं ॥२३॥ हे मुने ! पुष्ट भये केवल मनके संकल्प करके यह संसारदुःख प्राप्त भया है. तिस संकल्पके क्षय करनेमें कौनसी दीनता है ॥२४॥ हे मुने ! मनुष्य अल्प प्रमाण संकल्प करने करके दुःखमें मगन होता है और किंचिन्मात्र भी संकल्प नहीं करे तो अखंड सुखको पावे है ॥ २५ ॥ हे मुने ! जबलग तेरी बुद्धि संकल्परूपी अजगर सर्पसे नहीं छूटी है तबलग तेरेको कल्पवृक्षोंके बगीचामेंभी आनंद नहीं होवेगा ॥ २६ ॥ हे मुने ! जैसे पवनोंके वेग करके वर्षाऋतुके बादलोंके उड गये संते शरदृतुमें आकाश निर्मल होता है तैसे तू भी विवेकरूपी पवन-वेग करके अपने संकल्परूपी बादलोंको उडाय करके परम निर्मल-ताको धारण कर ॥ २७ ॥ हे मुने ! संकल्पोंकी नदी महाप्रचंड प्रवाहवाली है. विवेकसहित मन करके सुकाइ करके तिसमें बहे जाते अपने आत्माको सावधान करके मनके संकल्पोंसे रहित हो जावो ॥ २८ ॥ हे मुने ! यह तेरा मन संकल्परूपी पवन करके सूके पुराणे पत्रक और तृणके समान उडता है. तिसको त्याग करके चैतन्यस्वरूप आत्माका आश्रय करके स्वस्थ होवो ॥२९॥ हे मुने ! जैसे संकल्प उदय करके गंधर्वनगर फुरे है और संकल्पके

आभासके क्षय होनेसे क्षीण होता है. तैसे संसारका भ्रम संकल्पके उदयसे फुरे है. संकल्पके लयसे लीन होता है ॥३०॥ हे मुने ! तुम ऐसी भावना करो कि, मैं एक अद्वितीय आत्मा हूं, ऐसी भावना करके युक्त होवो तो तुम केवल आत्माही हो ॥३१॥ हे मुने ! जो कछु स्थूल सूक्ष्म जड चैतन्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दृष्ट होता है श्रवण होता है, मन करके वाणी करके चिंतनमें कहनेमें आवे है सो संपूर्ण एक अद्वितीय शिवरूप है कैसा है शांत है वाणीके कहनेसे परे है, ॐकारकी चौथी मात्रामें है, सोही परम गति है ॥ ३२ ॥

श्रीवाल्मीकिजी भरद्वाज प्रति कहते हैं ।

हे भरद्वाजजी ! शिवजी इतना वचन कहते भये, तदनंतर परमपदमें विश्रांतिको पाय करके मुहूर्तमात्र मौनको धारण करते भये. कैसे हैं शिवजी ? निर्मल ज्ञानदृष्टियुक्त है. परमपद कैसा है ? सर्व विकारके परिणामसे परे है, और शांत शब्द है नाम जिसका ऐसे जो सदाशिवजी वसिष्ठजी करके सहित स्थित होते भये ॥ ३३ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं–हे रामजी ! सदाशिवजी क्षणमात्र ध्यानमें मग्न होय करके नेत्रकमलोंको निमीलन करते भये परमपदके आनंदम स्थित होय करके मेरे सन्मुख नेत्रकमलोंकरके देखते भये फिर मेरे प्रति वचन कहते भये ॥ ३४ ॥

सदाशिवका वचन ।

हे मुने ! अपने तू संकल्पादिकोंको त्याग करके आत्मसत्ताको मनमें प्रमाण कर आत्मसत्ताका अर्थ जान करके धारणकर अनर्थरूपी संकल्पको त्यागकर जैसे पवन अपने वेगकरके पुष्पोंकी सुगंध लेता है ॥३५॥ हे मुने ! परमात्मा विचार करके शांत भये संकल्प-

को नहीं शांत भये संकल्पोंको परित्याग करता है; याते तू धीर-बुद्धि है,आत्मस्वरूपको देखनेवाला बन इसमें संशय नहीं है॥३६॥ हे मुने ! ब्रह्मा और विष्णु और हर इनसे लेकर जेते देवतादिक हैं सो सबही परमात्मासे प्रकट भये हैं जैसे समुद्रसे जलके बिन्दु प्रकट होते हैं ॥ ३७ ॥ हे मुने ! सो सबही भ्रममात्र स्वरूप है परमात्मासे प्रगट भये हैं. स्थित भये हैं तोभी भ्रमके बीज हैं संसाररूपी कल्पनाके जालके कर्त्ता हैं ॥ ३८ ॥ हे मुने ! यह अविद्या परमाकाशमें हजारों तरहसे उदय होती है.कैसी है,वेद और वेदोंके अर्थके भेदवाली है यथार्थ और अयथार्थकी भेदबुद्धि करके जीवोंको बंधन करनेवाले मोहजालकी जडोंकी माला है ॥ ३९॥ तिस कारणसे यह अविद्या अंतरहित है. वारंवार उदय होती है. अपने देशकालको सिद्ध करती है, इसका क्रम केवल नाममात्रसे कहा है ॥ ४० ॥ हे मुने ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिकोंको परमात्मा परमेश्वर जो है सो प्रकट करनेका पिता है. तत्त्ववेत्ता पुरुषोंने माना है सोही मूलका बीज है.जैसे पत्तोंका महावृक्ष मूल कारण होता है ॥४१॥ सो परमात्मा सूर्यकी नाईं स्वयंप्रकाश है सबको सत्ता देनेवाला है. तत्त्वेत्ता पुरुषके सोही वंदना करने योग्य है.और पूजने योग्य है तत्त्ववेत्ताको सदैव प्रत्यक्ष है वास्तव विषय सोही है. सर्वकालमें सर्वत्र उदय भया है ॥ ४२ ॥ हे मुने ! तिसका न तो आवाहन है न उसका मंत्र है.और पूजाकी विधिभी कोई योग्य नहीं है ऐसे परमात्माको सदैव आवाहन बना है जिस कारणसे सो सर्वव्यापी है. सर्वांतर्यामी है.सर्वत्र प्राप्त होनेवाला है आपही चैतन्यरूप है॥ ४३ ॥ हे मुने ! तत्त्ववेत्ता पुरुष जौनसी दशाको पावते हैं, तिस तिससेही आनंदरूप आत्माके स्वरूपको पाते हैं. जो कुछ रूप करके दृष्ट होता है, और श्रवण होता है,

मनके संकल्पमें आवता है, सो सब परमात्मा स्वरूप है ॥ ४४॥ हे मुने! तत्त्ववेत्ता पुरुष इस परमात्माके स्वरूपको सर्वत्र देख करके सदा सुखी होते हैं; वह कैसा है स्वरूप ? जन्म, जरा, मरण, शोक भयको दूर करनेवाला है, तिस पुरुषको अग्निमें भूंजे बीजकी नाईं फिर जन्मका अंकुर नहीं होता है ॥४५॥ हे मुने! सो परमात्मा देव तत्त्ववेत्ता पुरुषोंने अपना सदा आत्मा जाना है, बाहिर ब्रह्मांडमें अंदर अपने हृदयमें सर्वकाल अनेक प्रकार क्रम करके पूजा जाता है॥४६॥ हे मुने! हे महाबुद्धे!! बाहिर स्थूल मूर्तिमें जबलग जिस प्रकार करके सो देव पूजित करा जाता है, तिसको भी तुम हमारेसे श्रवण करोगे ॥ ४७ ॥ हे मुने! जेते पूजाके क्रम हैं, तिन सबमें देहरूपी मंदिर पवित्र चाहिये, तिस कारणसे देहमें ममता अहंकारका तिसको त्याग करके परमात्मा देव पूजने योग्य है ॥ ४८ ॥ हे मुने! तिस आत्माका ध्यान करना ही पूजन है और तिसका पूजनका क्रम कोई नहीं है, तिस कारणसे त्रैलोक्यको आधाररूपी आत्माका नित्यही ध्यान करके पूजन करे ॥ ४९ ॥ हे मुने! सो देव सर्वत्र चैतन्यरूप है सर्वत्र लक्षित करने योग्य प्रकाश स्वरूप है; सबको प्रकाश करनेवाला है, और सबके अंतःकरणमें अन्तर्य्यामीरूप करके चिदात्माप्रकाश है जिस करके सो चिदात्मा अहंकार शरीरादिकमें सबका सार बना है, तिसकी सत्ता करके अहंकारादिक शरीरादिकको वर्त्तमान है सोही सबका सार है ॥ ५० ॥ हे मुने! सो मर्यादारहित परम आकाशरूप है; अति विस्तार करके पृथिवी आकाशमें परिपूर्ण है, अन्तमें रहित है, सबसे नीचे पातालरूपी आकाशमें जिसके चरणकमल हैं ॥५१॥ हे मुने! अन्तसे रहित है, ऐसा दश दिशामंडलमें परिपूर्ण भया है भुजामण्डल जिसका नाना प्रकारके देखनेमें महाप्रमाणवाले, महातेजवाले शस्त्र ग्रहण

किये हैं जिसने ॥ ५२ ॥ हे मुने ! जिसके हृदयकमलके एक कोणमें अनेक ब्रह्मांडोंके समूह आपसमें स्थित हैं, प्रकाश करनेका परम कारण है, आकाशकी नाईं मर्यादासे र ि त हैं, उदार है स्वरूप जिसका ॥ ५३ ॥ हे मुने ! जिसके नीचे और ऊपर और चारों दिशा, चारों विदिशामें निरन्तर ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, शिवादिक देवतागण शोभायमान हैं ॥ ५४ ॥ हे मुने ! यह जितनी ब्रह्मांडमें भूतोंकी मंडली है, सो सब तिसकी रोममाला है और नानाप्रकारके स्वरूप करनेवाली और त्रैलोक्यको बन्धन करनेवाली तिसकी अनेक इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्तिसे लेकर शक्तियां जाननी ॥५५॥ हे मुने। यही सबका परम देव है, संतजनोंको यही सदा पूजनीय है, चतन्यसत्ता मात्र करके अनुभव स्वरूप है और सर्वगत है, सबका आधार है, और घडेमें, वस्त्रमें, गर्त्तमें, कंदरामें, गाडीम, मनुष्यमें सत्ता करके स्थित है ॥५६॥ यही शिव है, यही रुद्र है, यही ब्रह्मा है, यही विष्णु है, यही इन्द्र है, यही कुबेर है, यही यम है यही अनेक प्रकारकी नाम संज्ञाका आधार है, और केवल सत्तामात्र शरीर है ॥ ५७ ॥ हे मुने ! संपूर्ण जगत्के जालको विवर्जित करनेवाला है और काल भगवान् उसका द्वारपाल है यह पर्वतोंकरके चौदह भुवनोंकरके युक्त संपूर्ण ब्रह्माण्डमंडल इसके देहके एक किनारेमें स्थित है, कोई एक अंगके अंश मात्र ताको प्राप्त भया है ॥ ५८ ॥ हे मुने ! तिस देवको इस प्रकारसे चिन्तवन करे अनेक कर्ण नेत्र युक्त है, अनेक शिर युक्त है, अनेक भुजा करके शोभित है, सर्वत्र देखनेकी शक्तियुक्त है, सर्वत्र सूंघनेकी शक्तियुक्त है, सर्वत्र स्पर्शकी शक्तियुक्त है, सर्वत्र रसग्रहणकी शक्तियुक्त है, सर्वत्र शास्त्रकी शक्तियुक्त है, सर्वत्र शास्त्र श्रवणकी शक्तियुक्त है, सर्वत्र मननशक्तियुक्त है ॥ ५९ ॥ सर्व

प्रकारसे मनकी मननक्रियासे परे है. सर्व प्रकारसे मनका परमानंदरूप है; सदैव सबका कर्त्ता है, संपूर्ण संकल्पके फलोंको देनेवाला है सर्व भूतोंकी अंतःकरणकी अवस्थामें स्थित है, सबहीको सर्व प्रकारसे साधन करनेवाला है ॥६०॥ हे मुने ! इस प्रकारके तिस देवका ध्यान करके तदनंतर विधि करके पूजन करे, इसके पूजाके विधानको ब्रह्मवेत्तामें श्रेष्ठ तुम हमसे श्रवण करो सो यह देव अपने स्वरूपको जानने मात्र स्वरूप है सो पुष्प धूपादिकोंकरके पूजित नहीं होता है दीपकरके अन्नदानादिकों करके चंदन, केशर, कपूर, कस्तूरी आदिक लेपनसेभी पूजित नहीं होता है॥६१॥ हे मुने! नित्य प्रति क्लेशरहित होकरके अमृतरूप अपने आत्मस्वरूपके लाभसे पूजित होता है. यही इसका परम ध्यान है, यही इसकी पूजा कही है, जो निरंतर अंतःकरणमें शुद्ध चैतन्य मात्रको जानना ॥ ६२॥ हे मुने ! तत्त्ववेत्ता पुरुष देखता है, और श्रवण करता है, स्पर्श करता है, सूंघता है, भोजन करता है, चलता है, शयन करता है, श्वास लेता है, बोलता है,त्याग करता है, ग्रहण करता है. संपूर्ण कर्म करता हुआ शुद्ध चैतन्यमात्र होवे ऐसे ध्यानरूपी अमृत करके पूर्ण हुए, अपने आत्माको ईश्वर जाने ॥६३॥ हे मुने! ऐसे ध्यानरूपी अमृतके स्वादयुक्त होने करके पुष्प धूपादिकसे रहित होने करके आत्मस्वरूपकी पूजा होती है ॥ ६४ ॥ हे मुने! ध्यान करना और अर्घ्य देना और पाद्य देना सो सब शुद्ध चैतन्यका जानना है, ध्यानकरके जाननाही पूजाका पुष्प है यही संपूर्ण ध्यानोंसे परे ध्यान है समस्त क्रिया तिस देवको अर्पण करनाही पूजन है ॥६५॥ हे मुने ! ऐसे पूजन विना सो देव कदाचितभी प्राप्त नहीं होता है तिसके ध्यानसे पुरुष परमानंदरूपी प्रसादको प्राप्त होता है संपूर्ण भोग सुखोंकी संपदाको प्राप्त होता है ॥६६॥

हे मुने ! यह जीवरूपी देवता देहरूपी गृहमें ऐसे ध्यान करके आनंदको भोगता है. इस प्रकार क्षणमात्रभी आत्माका पूजन करे वह मूढ पुरुषभी गोदानके फलको पाता है और जो दो घडी प्रमाण पूजन करे तो अश्वमेध यज्ञके संपूर्ण फलको भोगता है ॥ ६७ ॥ हे मुने ! ध्यान करके पुष्पादिक मानसिक पूजा एक घडी मात्र करे तो राजसूय यज्ञके फलको भोगता है. और मध्याह्न काल पर्यंत पूजन करे तो लक्ष राजसूय यज्ञके फलको भोगता है जो पुरुष संपूर्ण दिन पूजन करे तो परमपदको पावता है. यही परमयोग है और यही परम क्रिया है ॥ ६८ ॥ हे मुने ! यह सबसे उत्तम बाह्य पूजन कहा है यह परम पवित्र है. अविद्याके अंत करनेका परम कारण है. इस करके जो अविद्याको तर जावें तिस पुरुषको संपूर्ण देवता, असुर, यक्ष, गंधर्व, मनुष्योंके समूह तिसको हमारे स्वरूप जान करके पूजन करते हैं. सो पुरुष परम पदको प्राप्त भया जानना ॥ ६९ ॥ हे मुने ! जौनसा पूजन पवित्र करनेवालेसेभी पवित्र है जो संपूर्ण पाप अविद्याके तमको क्षय करनेवाला है सो अंदरका पूजन है तिसको अब हम तुमको सुनावते हैं ॥७०॥ यही आत्मचिंतनरूपी पूजा संतजनोंने चलते हुवे, स्थित हुवे, जागते हुवे, शयन करते हुवे, नित्य करी है, तिसमें अंतःकरणमें स्थित भये शिवरूप परमेश्वरको सबकी प्रतीति करनेवालेको अपने आत्माको आपही ध्यावे ॥ ७१ ॥ हे मुने ! देह लक्षणवाले लिंगोंमें शांतरूप स्थित है, और मृत्तिकादि लिंगोंसे रहित है. और प्रतिमा मूर्तिसे वर्जित है, ऐसे ईश्वरको जैसा अपनेको शुद्ध बोध होवे सोही जिसका लिंगरूप है. ध्यानमें लीन होनेसे रहित है. और ध्यानसे चित्तवृत्तिके उच्चाटनरहित है. ऐसे अपने आत्माको देवतारूप जान करके पूजा करे ॥ ७२ ॥ हे मुने ! अपने देहमें

ज्ञानरूपी जो आत्माका प्रकाश है तिसको यही देवता है. ऐसी भावना करे मेरेको अनेक प्रकार मनकरके नेत्रोंकरके चिंतन करे और देखे जो शक्तियां हैं, सो नाना प्रकारवाले निरंतर सेवन करता है. जैसे सुंदर अनेक प्रकारके भूषणयुक्त कामिनी सुंदर पुरुषको सेवती हैं ॥ ७३ ॥ हे मुने ! मन तो मेरा द्वारपाल है. वह कैसा है त्रैलोक्य मेरेको निवेदन करता है परमार्थकी शुद्ध चिंता मेरी द्वारपालनी है और बुद्धि मेरी शक्ति है और क्रियाशक्ति मेरी दूसरी स्त्री है; और नाना प्रकारके ज्ञान मेरे अंगोंके भूषण हैं और पञ्च ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय सहित मेरे देहरूपी मंदिरके द्वार हैं ॥७४॥ यह मैं हूं यह सो पुरुष है इस प्रकार करके अनंतरूप है, और भेदसे रहित स्वरूप है जिसका; एक आनंदसे पूर्ण भया है स्वरूप जिसका और अपनी सत्ता करके सबको पूर्ण करनेवाले हैं ऐसा मैं स्थित भया हूँ ॥७५ ॥ हे मुने ! सो देव इस प्रकारकी आत्मसत्तामें स्थित है; अपने स्वरूपके फुरणारूपी दैवी शक्तिको आश्रय करके देवताभाव करके परिपूर्ण होकरके स्थित है और दुःखदीनतासे रहित स्वरूप करके स्थित है ॥ ७६ ॥ सो देव अस्त नहीं होता है, उदय नहीं होता है, संतुष्ट नहीं होता है, और क्रोधीभी नहीं होता है, तृप्त नहीं होता है, क्षुधाको नहीं जानता है, चलता भी नहीं है, वांच्छा भी नहीं करता है, त्याग भी नहीं करता है॥७७ ॥ हे मुने ! और सबमें एक समान है सबके समान आचारयुक्त है. सबके समान निवास युक्त है. सबके समान आकारयुक्त है; निर्मलता करके सौम्यतायुक्त है और सब प्रकारकरके सर्वत्र सदैव सुंदर आशययुक्त है ॥७८॥ पिपीलिकासे ब्रह्मातक सर्व जीवोंमें एक सोऽहं है. सर्व ब्रह्मांडमें जिसकी ज्ञान विचारवाली मति कहीं भी किसी प्रकार करकेभी कदाचित्भी विच्छेदको नहीं प्राप्त होती

॥७९॥ और दीर्घसेभी दीर्घ देवता पूजनकोभी निरंतर करता है. अपनी चैतन्यतायुक्त देह इसकी देवता है तिस देहरूपी देवताको जसे भोग्य वस्तु प्राप्त होवे तिस वस्तु करके सर्व प्रकार करके पूजन करता है॥८०॥ हे मुने! तिस कारणसे तिस देवताको सब प्रकारकी सम बुद्धि करके चैतन्य मात्र देवताको देवताकी नाईं जैसा प्राप्त भया क्रम करके सर्व प्रकारके अर्थ करके पूजन करे ॥८१॥ हे मुने! इस पूजनमें नवीन वस्तुके निमित्त संग्रहके थोडा यत्न नहीं करना जैसा भक्ष्य भोज्य अन्नपान अनेक प्रकार ऐश्वर्य करके युक्त शयन और सवारी जैसी मिले तसी सुंदर अन्नपानके भोगकी सामग्रीके विलास करके पूजन करे॥८२॥ हे मुने! सुख-प्राप्ति करके पीडा प्राप्त करके चिंतारोग करके मोह भय करके संपूर्ण उपद्रव दुःख करके जैसा होवे तैसे करके आत्माको संबोधन करके पूजन करे ॥८३॥ हे मुने! जैसी जगत्की मरण जीवन स्वप्नादिक चेष्टा प्राप्त होवे; दारिद्र्य अथवा राज्य जैसा माया प्रवाह करके प्राप्त होवे, तिस संपूर्ण करके आत्माका पूजन करे ॥८४॥ हे मुने! नाना प्रकारकी देह, मन,इंद्रियोंकी चेष्टारूपी पुष्पोंकरके शुद्ध चैतन्यरूप आत्माकी पूजा करे,नानाप्रकारके कलह और नाना प्रकारके विलास करके युक्त स्त्रियोंके विहारों करके शत्रुमित्रोंके राग द्वेषों करके सौम्यरूप आत्माकी पूजाकरे ॥८५॥हे मुने! संतजनोंके हृदयमे प्राप्त भई चंद्रकिरणकी नाईं शीतल है.और मधुर बोलना जिसका धर्म है, ऐसी सर्व भूतोंकी मत्री करके सर्वांतर्यामी आत्माकी पूजा करे॥८६॥ हे मुने!पाप कर्म और पापी जनोंकी त्यागरूपी उपेक्षा करे.दीन दुःखी जनोंमें दयारूपी करुणा करके पुण्यवान् जनोंमें हर्षरूपी मुदिताकरके और शुद्ध भई शुद्ध आचारप्रवृत्ति करक और आत्मस्वरूपके

बोध करके आत्माकी पूजा करे ॥ ८७ ॥ हे मुने ! निषेधरहित जो भोग हैं, तिनके सेवन करके और निषेधवाले भोगोंके त्याग करके सदा बोधयुक्त आत्माका पूजन करे ॥ ८८ ॥ हे मुने ! जो जो भोग पदार्थ नष्ट हो जावे तिसके त्याग करके जो जो भोग प्राप्त होवें तिस ग्रहण करके और सदा सर्वदा एक रस करके आत्माका पूजन कहा है ॥८९॥ हे मुने ! सदैव इष्ट चेष्टामें और अनिष्ट चेष्टामें एक समान दृष्टि धारण करनी ऐसी आत्मपूजाके व्रतको धारण करे ॥ ९० ॥ हे मुने ! जो जो इसको शुभ प्राप्त होवे और जो जो अशुभ प्राप्त होवे तिस तिस सबको केवल आत्माके अधीन करे ॥ ९१ ॥ हे मुने ! जौनसा विषयभोग अंतकालपर्यंत शुभ होवे और जो अंतकाल पर्यंत दुःखदायी है तिस संपूर्णको सम जाने इस प्रकार आत्मपूजाका व्रत धारण करे॥९२॥ यह मैं हूं सो मैं हूं यह मैं हूं यह मैं नहीं इस प्रकारके विभाग त्याग करे सबही ब्रह्म है ऐसे निश्चय करके आत्माकी पूजाका व्रत धारण करे ॥९३॥ हे मुने! चाहे पदार्थका त्याग करे और अनचाहेका भी त्याग करे. और दोनोंको एक समान करे इस प्रकार करके आत्माकी पूजा करे ॥ ९४ ॥ हे मुने ! ना किसीकी वांछा करे ना किसीका त्याग करे. सबको दैव गति करके स्वभावसे प्राप्त भयेको जाने. जैसे नदियोंके जल समुद्रके साथ मिलते हैं तैसे भोग भूमिका मिलती है इसमें तुच्छ बडी वस्तुविषें उदासीन नहीं होना ॥ ९५॥ हे मुने ! जगत्में अनेक पदार्थ उदय होते हैं और पतितभी होते हैं. देश काल और क्रिया योगसे जो कुछ शुभ अशुभ प्राप्त होते हैं और नष्ट होते हैं जैसे आकाश नाश वृद्धिको प्राप्त नहीं होता है तैसे असंग रहे रागद्वेषसे असंग रहे आत्मपूजाके व्रतको धारण करे॥९६॥ हे मुने ! यह आत्माके पूजनका विधान कहा है. इसमें जैसा आत्मा कहा

है तिस प्रकार करके विधि करके आत्माकी पूजा करे एक आत्मस्वरूपके आनंदरस करके एक रस भावना करे. खट्टा, कडुआ, तीक्ष्ण, कषैला, मीठा, सलूना और रससहित और रसरहित यह इंद्रियोंके जानने योग्य रसोंकी भावना नहीं करे. एक ज्ञानामृत करके एक रस होवे॥९७॥ हे मुने ! तिस चैतन्यस्वरूपके ज्ञानामृतकी एक रसता करके सबही क्षण अमृतमें होजाता है इसमें मन लीन होवे तो विकाररहित होता है. क्लेश दुःखसे रहित होता है यही आत्माका पूजन कहा है ॥९८॥ हे मुने ! जैसे समदृष्टि पुरुषको पूर्ण चंद्रमाकी नाईं आत्मज्ञान करके पूर्ण होने योग्य है तैसे निर्मल होने योग्य है स्वरूपानंद करके पूर्ण होने योग्य है सर्वज्ञ होय करके भी पाषाणकी नाईं संसारदशामें जड होना योग्य है अंतःकरणमें निर्मल होना योग्य है और बाहिर मूढोंकी नाईं संसार कार्यमें आसक्त होने योग्य है॥९९॥ हे मुने ! सो पूर्ण ज्ञानी लोकव्यवहारकी रंजनारूपी मलसे मुक्त होता है ज्ञान करके पूर्ण होता है और आत्माकी उपासना करता है॥४००॥ हे मुने ! तुम देशकालकी क्रिया करण कर्मकरके उदय भये संपूर्ण वस्तु समूहके दुःखोंके भ्रम करके रहित होकरके अपने शरीरको चेतनेवाले सर्वात्मा ईश्वरकी नित्यप्रति पूजन करो और सदा शांत भई समस्त आशा जिससे ऐसी बुद्धि करके सावधान रहो ॥ १ ॥ हे मुने ! आत्मा सबही कार्य कारण भेदसे रहित है और इंद्रिय मनके व्यवहारसे परे है, अंतःकरणमें चित्काल करके व्याप्त है तिसको पूज्य पूजकके भाव कहां है परंतु यह भ्रम तिसमें कहांसे उदित होता है यह कथनमात्र ही है ॥ २ ॥

श्रीवसिष्ठजीका प्रश्न ईश्वरजी प्रति ।

हे महाराज ! हे ईशान ! ! जिस आत्माको तुमने बुद्धिसंयुक्त

इंद्रियोंकी अदृश्यता कही है तो हे महाराज! फिर पुरुष तिसको कैसे प्राप्त होते हैं. यह तुम कहो ॥ ३ ॥

ईश्वरजी वसिष्ठजी प्रति कहते हैं ।

हे मुने ! तिसको मुमुक्षु जन गुरु शास्त्रकी युक्ति करके होते हैं तिस युक्तिको तुम श्रवण करो जो मुमुक्षु पुरुष होता है तिसमें अविद्याका सात्त्विक अंश रहता है सो केवल सात्त्विक विद्याके भागवाले शास्त्रोंकरके और नामों करके श्रेष्ठ सात्त्विक विद्या करके अश्रेष्ठ अविद्याको दूर करता है. जैसे धोबी मलीन जल करके वस्त्रोंको पहिले मलीन करके वस्त्रोंकी मलीनताको दूर करता है ॥४॥ फिर जैसे ताल वृक्षका फल कठिन होता है, काकादि पक्षियोंकरके भेदा नहीं जाता है. जब पक करके आपही पडे तो भिन्न होता है. तो काकादिक आवे अथवा नहीं आवे परंतु अकस्मात् पक्का तालफल वृक्षसे गिर पडा तहां अकस्मात् तत्काल काक आगया उसको फलके रसको भोग प्राप्त भया. अब इस दृष्टांतको पहिलेसे युक्ति करके दार्ष्टांतके साथ मिलावते हैं॥५॥ हे मुने ! महावाक्य प्रमाण शुद्ध सतोगुणके भाग करके भई ब्रह्माकार वृत्ति करके अविद्याका पटल दूर होता है. तिसके साधन शम दमादिक हैं. अंतःकरणको शुद्ध करनेसे केवल शुद्ध सतोगुणके अविद्या अंश हैं सच्छास्त्र, सद्गुरु, सत्संग और ईश्वरके नामगुण यहभी अविद्याके सतोगुणी अंश हैं इन करके श्रवण; मनन, निदिध्यासन होने करके श्रेष्ठ अविद्याके अंशभागों करके अंतःकरणको पटकी नाईं छादन करनेवाली तामसी अश्रेष्ठ अविद्याको दूर करने वास्ते मुमुक्षु पुरुष अनेकजन्मोंसे निष्काम यज्ञ, दान, तप, ईश्वराराधन करके पुण्यसंचयसे पवित्र अंतःकरण होयकरके गुरु शास्त्रोपदेश युक्ति श्रवणादिकोंको करनेसे काकतालकी नाईं अकस्मात् अविद्या दूर भई

संत ब्रह्मको साक्षात्कार करके चिरकाल स्थित रहते हैं ॥६॥ हे मुने ! चिरकाल अभ्यास करके अंतःकरण शुद्ध होनेसे अविद्या पटल दूर होनेसे स्वभावकरके शुद्ध चैतन्यको केवलआत्मविचारसे अपनेमेंही सर्वगत, एकरस, अद्वितीय, अखंड, सत्, चित् आनंद परमात्मा परब्रह्मको देखते हैं ॥७॥ हे मुने!सो आत्मा केवल शास्त्रार्थों करके गुरुओंके वचनों करके नहीं जाना है किंतु आत्मबोधसे जाना है । साधनोंके चिरकाल अभ्याससे, सद्गुरुओंकी सेवासे, सच्छास्त्रोंके विचारसे, सच्छिष्योंके उपदेशसे, सत्पुरुषोंके सत्संगसे, आचार अंतःकरण होनेसे अविद्याकी निवृत्ति आत्म स्वरूपकी प्राप्ति और ब्रह्मसाक्षात्कार होता है. केवल नाम मात्र कथासे नहीं होता है। जैसे दिनमें लोकोंका संचार स्वभाव करके आपही होता है आत्मविचारवालेको आत्मज्ञान और आत्मस्वरूपका लाभ आपही स्वभाव करके होता है ॥८॥ हे मुने ! यही आत्माका पूजन है इसको जानकरके जो करे सो पुरुष यहां परमात्माकी आज्ञाके वशवर्ती हम लोक प्राप्त होवें हैं तिस परमपदको प्राप्त होता है॥९॥

श्रीवसिष्ठजीका प्रश्न ईश्वरजी प्रति ।

हे महाराज ! इस जगत्को गंधर्वनगरकी नाईं और स्वप्नके नगरकी नाईं जानते हैं, तोभी महादुःखसेभी महादुःख देनेवाले समर्थ हैं इस दुःखके निवृत्त होनेकी किसी युक्तिको कहो॥ १०॥

श्रीईश्वरजी वसिष्ठ प्रति कहते हैं ।

हे मुने! इस जगत्का दुःख वासनाके वशसे है,जो जगत् वासनामें होवे तो वासना नष्ट नहीं होती है; और जगत्का दुःखभी निवृत्त नहीं होता है. और वासनासे जगत् दूर हो जावे तो जगत्का दुःख मृगतृष्णाके जलकी नाईं तीन कालमें असत्य प्रतीत होता

है ॥ ११ ॥ हे मुने! इस कारणसे वासना क्या तत्त्व है? किसको है? वासनामें क्या तत्त्व हैं? हे मुने! जैसे स्वप्नके पुरुषका मृगतृष्णाके जलका पान करना कहींभी सत्य प्रतीत नहीं होता है तैसे जगत्की प्रतीति वासना मात्र जाननी ॥ १२ ॥ हे मुने! जगत्की सत्यतामें और देह-गेहादिकोंकी अहंता ममतामें और मृगतृष्णाके जलमें सत्य प्रतीति जो करे तिस पुरुषको उपदेश करनेवालेको धिक्कार है॥१३॥हे मुने! तत्त्वज्ञानी विवेकी पुरुषको उपदेश करते हैं, और बालकको, विक्षिप्त पुरुषको, भ्रांतियुक्त पुरुषको, दुष्टको, दुर्जन संगतिवालेको उपदेश नहीं करते हैं और जो कोई मूढ पुरुषको उपदेश करता है सो पुरुष सुवर्णके रंगकी नाईं सुंदर अपनी कन्याको स्वप्नमें देखे पुरुषको देखता है ॥ १४ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजी प्रति कहते हैं।

हे रामजी! नीलकंठजी इतना कहकर मेरेको पुष्पांजलि दे अपने गणोंकरके संयुक्त आकाशको चढ जाते भये॥१५॥हे रामजी! तिस त्रिलोकनाथजीके जानेसे मैंभी क्षणमात्र तिसका स्मरण करके तिनके कहे देवता पूजनको अंगीकार करता भया और लौकिक पूजनको त्यागता भया जैसे शांतवृत्तिवाला पुरुष लोकव्यवहारको त्याग देता है आत्मविचारको अंगीकार करता है ॥ १६ ॥

इति शिवगीता संपूर्णा।

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीको कहते हैं।

हे रामजी! तदनंतर तिस कालसे अबलग उसी क्रम करके एकाग्र होकरके आत्माके अर्चनको करता रहा हूं ॥ १७ ॥ हे रामजी! ग्रहण करना और ग्रहण योग्य पदार्थका संबंध संपूर्ण देहधारी जीवोंको एक समान है परंतु योगी जनको आत्मस्वरूपमें सावधान रह-

नाही आत्मपूजन कहा है॥१८॥हे रामजी! धन और बांधवोंके वियोगसे बहुत दुःख प्राप्त होनेसेभी इसी आत्मविचार दृष्टिको धारणकरके हे शुभ व्रत करनेवाले! तूभी विचारको दृढ कर ॥१९॥ हे तात! तू शुद्ध चिन्मात्ररूप है तेरेसे जगत् भिन्न नहीं है इससे तेरेको त्याग करने और ग्रहण करनेकी कल्पना कही है ॥ २० ॥ हे रामजी! सबही चैतन्य है ऐसे ज्ञानको पाकरके सुषुप्ति अवस्थाकी नाईं आत्मस्वरूपमें मग्न होनेकी स्थितिको तू प्राप्त भया है परंतु अबसे लेकर स्वरूपानंदकी आसक्तिसे परे शुद्ध चिन्मात्र तुरीयावस्थास्वरूप हो जाना श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका वचन-हे गुरुजी! आजसे लेकर स्वर्गकी वांछा मैं नहीं करता हूं और नरकका द्वेष नहीं करता हूं जैसे मंदर पर्वत समुद्रमंथनके उपरांत अडोल रहे तैसे आत्मस्वरूपमें एकाग्र स्थित रहूंगा ॥२२॥ हे गुरुजी! तुम्हारी कृपासे अब मेरा मन संपूर्ण कल्पनाके गलनेसे संकल्परहित भया है, वांछाभी इससे गलित भई है और उदार निश्चययुक्त भया है त्रैलोक्यमें जितनी ऐश्वर्य आनंदप्राप्तिकी प्रसन्नता होती है तिससेभी अति प्रसन्नरूप भया है अंतःकरणमेंही आनंद पूर्ण भया है उत्तमसेभी अति उत्तम भया है ॥२३॥

श्रीवसिष्ठजीका वचन-हे रामजी! जो जो तू केवल शरीर करके अथवा इंद्रियोंकरकेयुक्त वर्त्तमान जैसा आवे तैसे अर्थमें वर्तनेवाले असंग मन करके जो कर्म करे तो तैने नहीं किया है तिस कर्मसे तू असंग है ॥२४ ॥ हे रामजी! जैसे प्राप्त होनेके क्षणमें वस्तु तुष्टि करता है तैसेही नहीं प्राप्त होनेके क्षणमें तुष्टिको नहीं करता है इस जगतमें इस प्रकार करके पदार्थ कौन नहीं भोगता है सबही भोगते हैं परन्तु वस्तुकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें मनको असंग करनेसे पदार्थ भोगनेका दोष नहीं है ॥२५॥ हे रामजी! लोकव्यवहार

ऐसा है पदार्थ वाहनेमें जैसी तुष्टि होती है तैसी पदार्थकी हानिमें तुष्टि नहीं होती है ऐसे क्षण सुखवाली वस्तुमें अज्ञान बालक प्रीतिको धारण करते हैं विवेकी जन तिसमें प्रीतिको नहीं करते हैं ॥२६॥ जिसकी वांछा कालमें तुष्टि होती है तिसके सुख दुःखका कारण वांछाही है और तिसकी तुष्टि जो है सो तुष्टिमें अंतको प्राप्त होती है तिससे भोग पदार्थोंकी वांछाका परित्याग करो॥२७॥हे रामजी! तुम अब आत्मज्ञानरूपी पर्वतके ऊपर चढे तो फिर अहंभावरूपी महागर्तमें पडनेके योग्य नहीं हो ॥२८॥ हे रामजी! यहां कुछ पदार्थ फुरे नहीं और फुरेभी तोभी जैसा फुरा तैसा चला जाय चित्त फुरणे नहीं फुरणेकी प्रतीतिसे रहित हो जावे तिसको तुम वासनारहित जानो सोही समता और कोमलता कही है ॥२९॥ हे रामजी! जो पुरुष वासनारहित इंद्रियोंकरके कर्म करता है तो विकारको नहीं प्राप्त होता है, जैसे आकाश पर्वतादिक प्राणियोंके उत्पत्ति नाशमें क्षोभको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ हे रामजी! ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इन तीनोंको अपनी शांत वृत्तिके अनुभवमें अभाव करे तो फिर जन्मको नहीं पावेगा ॥३१॥ हे रामजी! चित्तके फुरणे नहीं फुरनेमें संसारके उदय और क्षय होते हैं तिससे वासनाके रोकनेसे और प्राणोंके संयमसे चित्तको फुरनेसे रहित करे ॥३२॥ हे रामजी! प्राणके उदय और लय होनेसे संसारके उदय प्रलय होते हैं तिस प्राणको संयमके अभ्याससे उदयरहित करो ॥३३॥ हे रामजी! मूढताके उदय प्रलयसे कर्मोंके उदय क्षय होते हैं तिससे गुरु शास्त्र और संयम करके मूढताको भी दूर करो ॥३४॥ हे रामजी! यहां चित्त उदय नहीं होवे सो अखंड स्वाभाविक सुख है सो स्वर्गादिकमेंभी नहीं है जैसे मारवाडके स्थलमें शीतल गृह नहीं होता है ॥३५॥ हे रामजी! चित्तका उपदेश

होनाही अखंड सुख है सो मनवाणीमें कहा नहीं जाता है क्षय वृद्धिसे रहित है सो न उदय होता है शांतभी नहीं होता है ॥ ३६ ॥ हे रामजी ! तत्त्वज्ञानीका चित्त, चित्त नाम करके नहीं है सो चित्त केवल चैतन्यमात्र है नाम करकेही चित्त है अज्ञान करके चित्त बना है ज्ञान करके चैतन्यमात्र है मलसहित सुवर्ण तांबा भासता है मलरहित होनेसे शुद्ध सुवर्णमात्र होता है ॥३७॥ हे रामजी ! शिलामें जैसे कमलोंका बन नहीं होता है मारवाडकी रेतीमें जैसे जलका प्रवाह नहीं बनता है तैसे शुद्ध चैतन्यमें प्रपंच नहीं बनता है॥३८॥ हे रामजी ! परमात्मा चैतन्यमणिमें जगत्के कोटी सैकडों हैं जैसे चिंतामणि पाषाणमें जनोंके कोटी मनोरथोंके सैकडों रहते हैं॥३९॥ हे रामजी ! परमात्मा चैतन्यरूपी आकाशमें कोटि देहरूपी घडे उत्पन्नभी होते हैं नष्टभी होते हैं तिनके बाहिर और अंदरभी चैतन्याकाश व्याप्त है तोभी तिनके साथ उत्पत्ति-नाशको नहीं प्राप्त होता है जैसे आकाशमें अनेक घडे उत्पन्न और नष्ट होते हैं तिनके साथ आकाश उत्पन्न नष्ट नहीं होता है ॥ ४० ॥ जो कुछ है सो संपूर्ण ब्रह्मही है सर्व धर्मकर्मोंसे रहित है और निर्गुण है और निर्मल है और निर्विकार है और आदि अंतसे रहित है और नित्य है और शांत है सर्वत्र सम रूप है ॥४१॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न-हे महाराज ! ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त भया है जो तिसमें विकार उत्पत्ति नाशादिक धर्म नहीं हैं तो यह जगत् नाशवाला कैसे भासता है तिस जगत्में विकार कैसे हैं४२

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति कहते हैं।

हे रामजी ! जिसकी पहिले स्थिति नहीं है. जो स्वरूप करके बन जाना सोही विकारादि नाम करके कहा है जैसे दुग्धादिकोंका दधि आदिक बन जाना ॥४३॥ हे रामजी ! जो दुग्धादिकोंका

दधि आदिक बन जाता है सो विकार कहा है कारण कि फिर दूध नहीं बनता सोभी यहां नहीं बनता है क्योंकि यह जगत्में आदिअंत-मध्यमें सबही ब्रह्महीं जानते हैं और दूधके समान बिगाड करके दधिकी नाईं ब्रह्मसे जगत् नहीं बना है कारण ब्रह्म तो सदा निर्विकार है ॥४४॥ जो परिमाणुको समान ब्रह्म नित्य और निर्विकार परमाणुओंके संयोगसे जगत्की उत्पत्ति माने तो यह भी नहीं बनता है क्योंकि आदि-अंत विभागसे रहित ब्रह्ममें अंग-अवयवोंका विकार नहीं है ॥४५॥ हे रामजी ! ब्रह्म आदि-अंतमें सम है जो जगद्रूपी विकारता तिसमें देखी है सो केवल भ्रम करके फुरणमात्र है, क्योंकि रज्जुविषें सर्प भ्रमकी नाईं निर्विकार ब्रह्ममें जगत् भ्रममात्र है जैसे रज्जुके विकारसे सर्प नहीं है तैसे ब्रह्मके विकारसे जगत्भी नहीं बना है ॥४६॥ हे रामजी ! जो वस्तु आदि-अंतमें एक जैसी दृष्ट होवे सो मध्यविषें भी तद्रूप होती है और जो आदिमें और अंतमें नहीं दृष्टि होवे केवल मध्यमें ही रूपकरके रज्जुविषें सर्पकी नाईं प्रतीत होवे सो अज्ञानका विलास है भ्रममात्र है तिस कारणसे यह जगत् ब्रह्ममें केवल भ्रममात्रही प्रतीत होता है वास्तव नहीं है४७

श्रीरामजीका प्रश्न वसिष्ठजी प्रति ।

हे महाराज! सदा सर्वदा एक अद्वितीयनिर्मल परब्रह्म विद्यमान भये संते तिसमें केवल फुरणेमात्र स्वरूपकरके भ्रममात्र प्रतीत भई तो अविद्याका उदय कहांसे है जिससे यह जगत प्रतीत होता है॥४८॥

श्रीवसिष्ठजी रामजी प्रति कहते भये ।

हे रामजी! यह सबही पूर्वकालमें तत्त्वविचारसे ब्रह्मही था अब भी ब्रह्म है आगे फिरभी ब्रह्मही होवेगा, अविद्या तो नहीं है यह

हमारा निश्चय है ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! तत्त्ववेत्ताको नाममात्रही अविद्या प्रतीत होती है सो केवल भ्रममात्र असत्य है.जो कदापि सत्य नहीं है तिसका नामभी भ्रममात्रही है॥ ५० ॥ हे रामजी ! जबलग मन प्रबोधको नहीं प्राप्त भया तबलगही भ्रम है भ्रम गये विना सैकडों प्रबोधके ऊंचे सुनाये शब्दोंकरके भी बोधको नहीं प्राप्त होता है ॥५१॥ हे रामजी ! यह जीव युक्तिकरके बोध कराय करके आत्मस्वरूपमें युक्त किया जाता है युक्ति विना नहीं कार्य होता है जो कार्य युक्ति करके सिद्ध होवे सो सैकडों यत्नोंकरके नहीं सिद्ध होता है ॥ ५२ ॥ हे रामजी ! जिसको आत्मतत्त्वका बोध नहीं भया है ऐसे दुष्टबुद्धि पुरुषको जो कोई सब ही ब्रह्मकरके सुनाता है सो पुरुष काष्ठके स्तंभको मित्र जान करके अपने दुःखको सुनाता है ॥५३॥ हे रामजी ! जो तत्त्ववेत्ता पुरुषोंने मूढ-बुद्धियोंको समझाने निमित्त यह अविद्या है यह जीव है, यह संसार है इत्यादि कल्पनाका क्रम किया है सो वास्तव कल्पना क्रम नहीं है॥५४॥ हे रामजी ! इतने काल तू आत्मतत्त्वको नहीं जानता था तिससे मैंने युक्तिकरके बोधयुक्त किया है अब तू आत्मतत्त्वको जान रहा है तिससे जैसा समझना है तिसको मैं कहता हूं ॥५५॥ हे रामजी ! मैंभी ब्रह्महो हूं तूभी ब्रह्मही है और त्रलोक्यभी ब्रह्मही है संपूर्ण दृश्यका स्थानभी ब्रह्मही है दूसरी कल्पना कोई नहींहै अब तू जैसा चाहे तैसा कर ॥ ५६ ॥ रामजी अपने अनुभवको कहते हैं हे गुरुजी!तुम्हारी कृपासे जो जानने योग्य है सो सबही मैंने जाना है जो देखना है सोभी मैंने सब देखा है अब परम-तत्त्वकरके मैं पूर्ण भया हूं तेरे कहे ब्रह्मज्ञानके अमृतकरके परिपूर्ण भया हूं॥५७॥हे गुरुजी ! तुम्हारा कहना अब पूर्ण भया है,यह मेरा अंतःकरणभी पूर्ण भया है तत्त्वकी पूर्णता होनेसे आनंदभी पूर्ण

भया है ब्रह्मसता करके पूर्ण भये विश्वसे पूर्णतासे पूर्णता ले करके फिरभी पूर्णता शेष रहती है ॥५८॥ हे महाराज ! सर्वत्र पूर्णभये परब्रह्मसे नीचे और ऊपर शिरसे नखाग्रपर्यंत पूर्ण भये इस जीवरूपको परमार्थसे पूर्ण भया ब्रह्महीसे आकाशसे लेकर जगत् प्रगट होता है सोभी एक संग्रहरूपकरके और भिन्नभिन्न व्यष्टिरूप करकेभी प्रकट होता है॥५९॥'सोयं देवदत्तः' इसका अर्थ जो पहिले परके सालमें देखा था सोही यह देवदत्त आज देखा है. तत्त्वमसिका अर्थ 'तत्' सर्वव्यापी तत्-आनंदरूप जगत् सृष्टि-स्थिति-संहारका कर्त्ता और अविनाशी परब्रह्म, 'त्वं' तू जीवात्मा, 'असि' सदा वर्त्तमान है ॥६०॥ तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्योंसे भया अहं ब्रह्म ऐसे ज्ञानकरके मूलसहित उपाधि दूर करनेसे सर्वत्र पूर्ण भये ब्रह्मकरके पूर्ण भया जीवभाव तिसमें कल्पना करी पूर्णता तिसके लय होनेसे तिस जीवभावकी पूर्णता सो पहिले जो स्थित भई ब्रह्म तिसकी पूर्णता सोही शेष बाकी रहती है ॥ ६१ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं।

हे रामजी ! श्रीकृष्ण भगवान्जीने कहा—असंगतवाली मतिको धारण करके पांडुराजाका पुत्र अर्जुन नामा पांडव महामुनि नरका अवतार जीवनेको जैसे चलावेगा तैसे तूभी अपने जीवनेको सुख करके जीवन्मुक्त होकरके वर्त्तमान कर ॥ ६२ ॥

श्रीरामजीका प्रश्न वसिष्ठजी प्रति।

हे महाराज!सो अर्जुन पांडुराजका पुत्र कब होवेगा श्रीकृष्ण भगवान् उसको असंगताको कैसे कहेगा इसको मेरे प्रति कहो ॥६३॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं। हे रामजी ! यह प्रपंचनाम करके कल्पित भया केवल सत्तामात्र आत्माही आत्माविषें स्थित भया है कैसा है आत्मा आदि-अंतसे रहित है जैसे आकाशमें महा आकाश

नामकरके स्थित है तैसे निर्मल आत्मामें यह संसारका भ्रम स्थित भया है जैसे सुवर्णमें और जलमें कंकणादि भूषण और तरंग बुद्बुदे नाम मात्र करके स्थित हैं॥६४॥ तिस संसाररूपी जालमें देवता, ऋषि, यक्ष, गंधर्व, भूत, प्रेत, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्प, कीट, तृण, वृक्षादिक प्राणियोंकी चौदह प्रकारकी जाति वर्त्तमान हैं जैसे जालमें पक्षी लगे होते हैं॥६५॥ तिसमें यम चंद्रमा सूर्य इंद्रादिक देवता, पांच भूतोंसे बने संसारकी मर्यादा वर्त्तमान करने वास्ते परमेश्वरकी नियतिसे लोकपाल बने हैं ॥६६॥ हे रामजी ! तिन देवताओंने इस जगत्‌में यह पुण्य है इसका ग्रहण करना, यह पाप है इसका त्याग करना इस प्रकारकी लोकमर्यादा वेदमर्यादा करके धर्मरक्षा वास्ते कल्पना करी है ॥६७॥ हे रामजी ! तिस धर्ममर्यादामें अबलग सबका चित्त हाथीके कर्णके अग्रकी नाईं चंचल है तौभी जलप्रवाहमें कहने जैसे यथायोग्य वर्त्तमान है ॥ ६८ ॥ हे रामजी ! तिसमें भगवान् धर्मराज प्राणियोंका संहार करनेका अधिकारी है, चार युग प्रमाण समय गये संते पिछला किया प्राणियोंके संहारके पाप दूर करने वास्ते कदाचित् आठ वर्ष कदाचित् दश वर्ष अथवा द्वादश वर्ष अथवा पंच वर्ष अथवा सप्तवर्ष अथवा सोलह वर्ष नियम धारण करके तप यज्ञ करता है प्रजाके संहारसे उदास हो जाता है तिस कालमें मृत्यु प्रजाका संहार नहीं करता है॥ ६९ ॥ तिस कारणसे यह पृथिवी प्राणियोंके समूहकरके पूर्ण हो जाती है जैसे वर्षाकालमें तृण लतादिकोंकरके पूर्ण होती है जैसे हाथी मक्षियोंकरके घेरा जाता है ॥ ७० ॥ इससे उपरांत देवता पृथिवीका भार उतारने वास्ते अनेक युक्तियोंकरके वृद्ध भई प्रजाको क्षयको प्राप्त करते हैं ॥७१॥ हे रामजी ! इस प्रकार करके अनेक सहस्र युग पीछे चले गये हैं, अनेक जगत्‌के सैकडों

होगये हैं, अनंत भूत होगये हैं, अनेक प्राणी व्यतीत होगये हैं ॥७२॥ हे रामजी ! अबभी जो यम धर्मराज सपूर्ण पितरोंका स्वामी है तिसकरके कितने प्राणियोंको क्षयको प्राप्त भये सन्ते अबके युगोंमें बारा वर्ष प्रमाण यज्ञके लिये ब्रह्मचर्य व्रत धारना है लोकोंका संसाररूपी अपना कर्म त्यागना है ॥७३॥ तिससे यह पृथिवी प्राणियोंके मरण विना मनुष्योंकरके पृथिवी भारी होवेगी जैसे बहुत वृक्षतृणों करके पूर्ण होती है सो पृथिवी प्राणियोंके भार करके पीडित भई विष्णुके शरणको जावेगी जैसे स्त्री चोरों करके पीडित भई अपने भर्त्ताके पास शरण जाती है॥७४॥हे रामजी ! तिससे उपरांत विष्णु भगवान्‌जी दो स्वरूप करके पृथिवीमें उतरेंगे एक नररूप करके और एक नारायण रूप करके तिसके साथ संपूर्ण देवताभी पृथिवीमें उतरेंगे ॥७५॥ एकरूप करके वसुदेवके घर कृष्णरूपी भगवान् होवेंगे और दूसरे देहसे अर्जुननामा करके पांडुके घर होवेंगे॥७६॥हे रामजी ! पांडु राजाका बडा पुत्र युधिष्ठिर राजा धर्मके अंशसे होवेगा सो पांडुका पुत्र युधिष्ठिर चक्रवर्ती राजा होवेगा धर्ममर्यादाको पालनेवाला होवेगा ॥७७॥हे रामजी! पांडुका बडा भाई धृतराष्ट्र राजा होवेगा उस राजाका पुत्र दुर्योधन युधिष्ठिरका भाई होवेगा और युधिष्ठिरका दूसरा भाई पवनका पुत्र भीमसेन होवेगा सो दुर्योधनका महाशत्रु होवेगा जैसे नौला सर्पका शत्रु होता है ॥ ७८ ॥ सो युधिष्ठिर भीमादिक और दुर्योधन यह आपसमें पृथिवीका राज्य अपने अपने करने चाहेंगे तिस राज्यके वास्ते युद्धको करेंगे तिनके सहाय निमित्त अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध करने वास्ते आ तैयार होवेगी ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! विष्णुभगवान् कृष्ण अवतार होकरके अर्जुननामा अपना स्वरूप नरका अवतार करके तिस सेनाका क्षय करके पृथिवीका

भार उतारेंगे ॥८०॥ हे रामजी ! विष्णुभगवान् अर्जुन नामा अंश माया करके मनुष्यभावको प्राप्त भया है सो मायाके अधीन हो करके अपने बांधवोंके स्वरूपके निमित्त हर्षशोकयुक्त होवेगा॥८१॥ युद्धरूपी अपने धर्मको त्याग देवेगा विष्णुभगवान् अर्जुन नामा-करके अपने देहको सर्वज्ञता कृष्ण नाम देह करके पृथिवीका भार उतारनारूपी अपने अवतार होनेका जो कार्य तिसके वास्ते अर्जुनको तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे ॥ ८२ ॥

श्रीभगवान्जीका वचन अर्जुन प्रति ।

हे अर्जुन !यह आत्मा जन्मको नहीं लेता है मृत भी नहीं होता है फिरभी यह उत्पन्न हो करके नहीं होवेगा यह जन्म रहित है और नित्य है और अनादि है और सबसे प्रथम पुराना है शरीरके मारनेमें भी मृत नहीं होता है॥८३॥हे अर्जुन ! जो कोई इसको मारनेवालेको जानता है जो कोई इसको मृत भयेको जानता है सो दोनों ही कुछभी नहीं जानते हैं कारण यह किसीको मारता नहीं है न किसी-करके मृत होता है ॥८४॥ हे अर्जुन ! यह आत्मा अंतरहित है और सदा एकरूप है और सत्तामात्र रूप है और आकाशसे भी सूक्ष्म है और परमेश्वर है सो क्यों किसीकरके नष्ट होता है ॥ ८५॥ तिससे हे अर्जुन ! आत्मा कैसा है अनंत है और इन्द्रियोंकरके प्रत्यक्ष दृष्ट नहीं होता है इससे अव्यक्त है और आदि उत्पत्तिसे रहित है और मध्यसेभी रहित है तिस आत्माको तू अंतःकरणवृत्ति करके देख तूभी ज्ञानस्वरूप है और जन्मरहित है और नित्य है और निर्विकार है॥८६॥ हे अर्जुन ! तू मेरा स्वरूप है वृथाही धारण किये अभिमानको त्याग कर तू जरा–मरणसे रहित है आप अविनाशी आत्मा है ॥ ८७ ॥ हे अर्जुन ! जिसको देहादिकमें अहंकार नहीं और कर्मफलों करके जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती है सो पुरुष संपूर्ण

इन लोकोंको मार करकेभी मारनेवाला नहीं है और हत्यादोषकरके बद्धभी नहीं होता है ॥८८॥ हे अर्जुन! जो फुरना मनसे प्रकट होती है सोही अनुभवमें आवे है तिससे यह हमारा शत्रु है मैं इसको मारनेवाला हूं यह पदार्थ मेरा है ऐसी फुरनेको मनसे त्याग दे अपने पराये भेदवाली दृष्टि करके तू भया है तिससे तू अपने आपको नष्ट भया हूं ऐसे मानता है इस करकेही तू पराधीन है और सुखदुःखों करके पीडित भया है ॥८९॥ हे अर्जुन! नेत्र अपने रूपविषयको देखता है और कर्ण अपने शब्द विषयको सुने है त्वचा अपने स्पर्श विषयको देखे है जिह्वा अपने रस विषयको लेवे है. मैं कौन हूं ऐसी भ्रमदृष्टिकी स्थिति कहां है आप तू सबसे असंग है ॥९०॥ हे अर्जुन! मनभी अपने संकल्पकी रचनामें लगा है इसमें मैं करता हूं ऐसी कल्पना ही एक आत्माको क्लेश करती है ॥९१॥ हे अर्जुन! देह, इन्द्रियां, मन यह तब बहुत आपसमें मिलके अपने अपने कार्यको करते हैं और एक आत्मा केवल अभिमान करके लोकमें उपहास वास्ते पकडा जाता है ॥९२॥ हे अर्जुन! योगी पुरुष अंतःकरणको शुद्ध करने वास्ते देह करके मन करके बुद्धि करके केवल इंद्रियों करके कर्मफलके संगको त्याग करकेभी कर्मोंको करते हैं ॥९३॥ हे अर्जुन! पुरुष उत्तम बुद्धि भी होवे और बहुत शास्त्रको जाननेवालाभी होवे तौभी देह गेहादिकमें ममता अहंकाररूपी मल करके युक्त होवे तो कुबुद्धि पुरुषकी नाईं नहीं शोभता है ॥९४॥ हे अर्जुन! जो पुरुष ममता रहित होवे और अहंकाररहित होवे सुख दुःखोंको समान जाने और क्षमायुक्त होवे सो भावे शुभ कार्य करे भावे दुष्ट कार्यको करे तौभी दोष-गुण करके युक्त नहीं होता है ॥९५॥ हे पांडुपुत्र! यह रणमंडल तेरेको अपने कर्मको क्षत्रीधर्मको उत्तम क्षेत्र महातीर्थकी नाईं प्राप्त भया है इसमें क्रूर मति

करकेभी तू युद्धरूपी अपने धर्मको करेगा तौभी यह क्षत्रीधर्मका युद्धभी तेरेको परम कल्याणको और परम सुखको और परम ऐश्वर्यके उदयको देवेगा ॥९६॥ हे अर्जुन ! अपने धर्मका कर्म मूर्ख पुरुषकोभी कल्याण देता है और श्रेष्ठबुद्धिको अपना धर्म कर्म क्यों कल्याण नहीं देवे और जो अहंकारसे रहित होवे सो पुरुष अपने कर्म करके पतित होवे तोभी दोष करके लिप्त नहीं होता है ॥९७॥ हे अर्जुन ! तू अपने धर्मके कर्मयोगमें स्थित होकरके कर्मोंको करता रहे और अहंकारको और कर्मफलकी वांछाके संगको त्याग कर जो पुरुष कर्मफलकी असंगताको प्राप्त भया है सो कर्म करता है तौभी कर्मफल करके बद्ध नहीं होता है ॥९८॥ हे अर्जुन ! तू शांत परब्रह्मस्वरूप होकरके अपने किये कर्मको ब्रह्मरूप कर और अपने आचार ब्रह्मको अर्पण कर इस प्रकार करके क्षणमात्रमें ब्रह्मही होवेगा ॥९९॥ हे अर्जुन ! संपूर्ण अर्थोंको ईश्वरको अर्पण कर ईश्वररूप बन और उपाधिरहित हो आपभी ईश्वरता करके सब भूतोंका आत्मा बन अपने स्वरूप करके पृथिवीको शोभायमान कर ॥१००॥ सर्व संकल्पोंको संन्यास कर सदा समदृष्टि बन मन करके शांतिको धारण कर अंतःकरणमें कर्मसंन्यास करके युक्त हो कर्मको करताही रहे और फलकी आशासे मुक्त मति बनो ॥ १ ॥

अर्जुनका प्रश्न श्रीकृष्ण महाराज प्रति।

हे कृष्ण ! संन्यासका और ब्रह्मार्पणका और ईश्वरार्पणका और कर्मसंन्यासका और ज्ञानका और योगका भिन्न भिन्न विभाग जैसा है तिसको मेरी मोहकी निवृत्तिके वास्ते क्रम करके कहो ॥ २ ॥

भगवान्‌जी अर्जुन प्रति कहते हैं।

हे अर्जुन! संपूर्ण संकल्पोंकी शांति भई संते विशेष करके घनी वासना सब शांत हो जावे और ब्रह्मस्वरूप भावनाका कोई आकार उदय होना तिसको ब्रह्मपरता कहते हैं ॥३॥ तिसके उद्योग करनेको ज्ञान कहते हैं तिसीको कुशलबुद्धि योगभी कहते हैं संपूर्ण जगत् और हमभी ब्रह्म हैं इसको ब्रह्मार्पण कहते हैं ॥४॥ और कर्मोंके फलोंका जो त्याग है तिसको ब्रह्मवेत्ता संन्यास कहते हैं संपूर्ण संकल्पोंका जो त्याग है तिसको असंगता कहते हैं॥ ५ ॥ हे अर्जुन ! संपूर्ण कर्मोंके कल्पना जालकी एक ईश्वरको अर्पण करनेकी भावना कर और कर्म करनेके समयमें कर्त्ता कर्म करनेकी सामग्रीमें ईश्वर विना दूसरेकी भावना गल जावे जिसमें सो ईश्वरार्पण कहा है ॥६ ॥ हे अर्जुन! तू मेरे विषे मनको कर और मेरा भक्त हो मेरे निमित्त यज्ञ करनेवाला हो मेरेको नमस्कार कर इस युक्ति करके तू मेरेकोही प्राप्तहोवेगा अपने आपको मेरे विषे परायण कर ॥ ७ ॥

अर्जुनका प्रश्न श्रीभगवान्‌जी प्रति—हे कृष्णजी ! तुम्हारे दो रूप हैं एक पररूप है जो सनातन है दूसरा अपर है जो देखने श्रवण करनेमें नहीं है सो पररूप तुम्हारा कैसा है तिसको मैं किस कालमें आश्रित होरहा मोक्ष सिद्धि वास्ते कब उसको मैं आश्रित करूं ॥ ८ ॥

श्रीभगवान्‌जी कहते हैं—हे अर्जुन ! पहिले कहा है फिर भी जो मैं तेरे हितकी कामना करके कहता हूं तिसको तू श्रवण कर तू मेरे वचनके अर्थमें प्रीतिको धारण करता है ॥ ९ ॥ मेरे दोनोंही रूप हैं एक सबके समान दृश्य है एक पर है जो मन, वाणी और इंद्रियोंके गोचर नहीं है जो हस्त-पादादियुक्त और शंख, चक्र गदा-पद्मादि धारनेवाला है सो अपर रूप है सगुण है ॥१०॥ जो

मेरा पररूप है सो आदि-अंतसे रहित है और निर्गुण है सो ब्रह्म कहा है परमात्मा कहा है इत्यादि नाम करके कहा जाता है॥११॥ हे अर्जुन ! जबलग तू बोधको नहीं प्राप्त भया और देहादिकोंके आत्मज्ञानसे रहित है तबलग मेरे चतुर्भुज रूपकी पूजामें तत्पर रहे ॥१२॥ हे अर्जुन ! तिस क्रमसे ज्ञान पावेगा तो तिस रूपको तू जानेगा सो रूप मेरा आदि-अंतसे रहित है जिसको जान करके जन्म नहीं प्राप्त होता है ॥१३॥ तिससे तू सर्व भूतों विषें स्थित भये आत्माको जान। सर्व भूतोंको आत्मा विषें जाने योग करके बुद्धिको युक्त कर सर्वत्र समदृष्टि हो ॥१४॥ हे अर्जुन ! जो पुरुष सर्व भूतोंमें स्थित भये आत्माको एकरूपता धार करके भजता है सो सर्व प्रकार करके संसारदशामें वर्त्तमान है तौभी फिर जन्मको नहीं पावता है ॥१५॥ हे अर्जुन ! जैसे घडे अनेक सहस्र हैं परंतु आकाश तिनके बाहिर और अंदर एक जैसा व्याप्त है तैसेही त्रैलोक्य अनेक सहस्र हैं मैं आत्मरूप करके बाहिर और अंदर एकही व्याप्त भया हूं॥१६॥हे अर्जुन !अनेक प्रतिबिंबोंमें दर्पणके समान साक्षिरूपवाले आत्माको प्रतिबिंबोंके नाश भये संतेभी नष्ट भये मेरेको देखता है सोही देखता है ॥ १७ ॥ हे अर्जुन ! जो पुरुष मान और मोहसे रहित भये हैं जिन्होंने इंद्रियसंगोंके दोष जीते हैं और आत्मज्ञानमें नित्य स्थित भये हैं, सुखदुःखोंके द्वंद्वसंगोंसे मुक्त भये हैं सो पुरुष मूढ नहीं हैं तत्त्ववेत्ता हैं ऐसे ब्रह्मज्ञ तिस अविनाशी परम पदको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ हे अर्जुन ! जो इंद्रियोंकी मात्रा शब्द-स्पर्शादिक हैं तिनके जो स्पर्शसंग हैं सो शीत-उष्णके,सुखदुःखोंके देनेवाले हैं और आगम-निर्गमवाले हैं तिनको तू दृढता करके सह ले तिनके आधीन मत हो ॥ १९ ॥ हे अर्जुन ! असत्य पदार्थको सत्तारूपी भावनाही होती है और

सत्य पदार्थका असत्यरूपी अभाव नहीं होता है तिससे सुखादिक सत्य नहीं हैं और आत्मा सदा सत्य है और सर्वव्यापी है ॥ २० ॥ हे अर्जुन ! तू मानको त्याग मदको त्याग शोकको भयको सुख-दुःखोंको त्याग यही द्वैतके रूप हैं और असत्य है, तू एक सत्यरूप हो ॥ २१ ॥ यह पुरुषोंकी अक्षौहिणीके क्षय करके अपने अनुभवके स्वरूप ब्रह्म कर विस्तार भयेको जान केवल शुद्ध ब्रह्मकोही ब्रह्ममें एक कर ॥२२॥ हे अर्जुन ! तू सुख-दुःखको नहीं जानता हुआ लाभ-खर्चको जीतहारको एक समान करता हुआ युद्धको कर ब्रह्मकी एकताको प्राप्त हो तूही ब्रह्मताका एक समुद्र है ॥ २३ ॥ हे अर्जुन ! जो तू करता है जो तू भोजन करता है जो होम करता है जो देता है जो है जो आगे करेगा तिसको सब आत्मा जान करके युद्धमें स्थिर हो ॥२४॥ हे अर्जुन ! सबके अंतमें जो जैसे भाववाला होता है सो तिस भावको प्राप्त होता है तू ब्रह्म सत्य है इस भावको प्राप्त हो इससे ब्रह्मकी सत्यतावाला हो ब्रह्मकोही प्राप्त होवेगा ॥२५॥ हे अर्जुन ! जो कोई कर्म करनेमें अपने कर्म करनेके अहंकारको त्याग करके अकर्म क्या कर्म संगरहित जानता है और अकर्ममें क्या नहीं कर्म करनेमें कर्मको क्या अपने वर्णाश्रमका कर्म अवश्य करना ऐसे देखता है सो मनुष्योंमें बुद्धिमान् है संपूर्ण कर्म करनेमें युक्त है ॥२६॥ हे अर्जुन ! मेरेको कर्मका फल होवे इस प्रकार कर्मफलका निमित्त कारण तू मत होवे कर्मके त्यागमें तेरी बुद्धिका संग नहीं होवे कर्म अवश्य कारण इस प्रकार कर्म योगमें स्थित होकरके कर्मोंको करता रहे और कर्मफलके संगको त्याग कर॥२७॥ हे अर्जुन ! अहंकारद्वारा फलकरके कर्मकरनेमें आसक्तिको त्याग करके और कर्म करनेकी बुद्धिको त्याग करके समताको धारण करके अपनी रुचि करके,सुख करके वर्त्तमान रहो

॥२८॥ हे अर्जुन ! जो पुरुष कर्मफलके प्रसंगको त्याग करके नित्यही संतोष करके तृप्त है और ममतासे रहित है सो भावे अनेक कर्मजालमें प्रवृत्त होवे तौभी कुछ नहीं करता है बंधसे रहित है॥२९॥ हे अर्जुन ! आसक्ति किसको कहैं हैं मैं कर्त्ता हो सो नहीं कर्म करनेवालेकोभी होवे है सो कब होवे है जब मन संकल्प वासना करके मूढतायुक्त होवे है तिससे मनकी मूढताको त्याग देवे ॥ ३० ॥ हे अर्जुन ! कर्म करनेमें अपनेको कर्त्ता नहीं माननेसे कर्मका भोक्ता नहीं बननेसे समता एकता होती है समता एकतासे अनंतता होती है, अंतरहित होनेसे ब्रह्मता विस्तारसहित होती है ॥ ३१ ॥ हे अर्जुन ! तिससे तूभी अनेक चित्ततारूपी मलको त्याग करके परमात्माकी एकताको प्राप्त होवे तो भावे शुभ कार्यको करता है भावे अशुभ कार्यको करता है तोभी तू करता नहीं है ॥३२॥ हे अर्जुन ! जिस पुरुषके संपूर्ण कार्योंके आरंभ फलकामनाके संकल्पसे रहित भये हैं तिसके कर्मबंधन ज्ञानरूपी अग्नि करके दग्ध हो जाते हैं तिसको तत्त्ववेत्ता पुरुष पंडित कहते हैं ॥३३ ॥ हे अर्जुन ! तू सुख दुःखादि द्वन्द्वोंसे रहित हो नित्यही आत्मतत्त्वमें स्थित हो और पदार्थकी प्राप्तिके उद्यमसे रहित हो जैसी प्राप्ति होवे तिस करके वर्त्तमान हो इसप्रकारसे संसारके सब जीवोंका भूषणकी नाईं शोभा करनेवाला हो ॥ ३४ ॥ हे अर्जुन जो कर्म करनेवाली इंद्रियोंको कर्म नहीं करनेसे संयम कर्त्ता है और मन करके तिनके भोगोंको चाहता है सो मूढतपस्वी है उसका तप करना झूंठा आचार है सौ पाखंडी है ॥३५॥ हे अर्जुन ! जो पुरुष मन करके इंद्रियोंको भोग पदार्थोंसे रोक करके कर्मेंद्रियों करके कर्मयोगको फलकी आसक्तिसे रहित करता है सो विशेष करके उत्तम पुरुष है ॥३६॥ हे अर्जुन ! जैसे समुद्र संपूर्ण नदियोंके जलों करके भरा जाता है

संपूर्ण जल तिसमें प्रवेश करते हैं तौभी अपनी मर्यादाके स्थानमें बाहिर नहीं चढता है तैसेही जिस पुरुषको संपूर्ण कामभोग प्राप्त होते हैं और नहींभी प्राप्त होते हैं तिनकी प्राप्ति करके हर्ष शोकको नहीं प्राप्त है सो पुरुष शांतिको प्राप्त होता है जो पुरुष कामभोगोंकी कामना करता है तिसको शांति नहीं प्राप्त होती है ॥ ३७ ॥ हे अर्जुन ! तत्त्ववेत्ता पुरुष कामभोगोंको त्यागभी नहीं करे और अंतःकरणमें भोगोंकी भावनाभी नहीं करे भोगोंकी प्राप्तिमें समवृत्ति रहे जैसा भोग मिले तैसे करके वर्त्त जावे ॥३८॥ हे महाबाहो ! देहके नाश भये संते आत्माका कुछभी नष्ट नहीं होता है आत्माका नाशही नाश कहा है सो आत्माका नष्ट नहीं होता है केवल स्वरूपका स्मरणही आत्मा कहा है ॥३९॥ हे अर्जुन ! असत्य पदार्थका सत्तारूपी भाव नहीं होता है और सत्य पदार्थका असत्यतारूपी अभाव नहीं होता है तत्त्ववेत्ता पुरुषोंने इन दोनोंका अंतर जाना है॥४०॥हे अर्जुन ! अविनाशी तिसको जान करके यह संपूर्ण विश्व व्याप्त भया है तिस अविनाशीको नाश करनेको कोई भी समर्थ नहीं है ॥४१॥ हे अर्जुन !यह देह सदा अविनाशी देह धारण करनेवाले आत्माके हैं सो अंतवाले हैं वह कैसा है आत्मा अविनाशी है और स्थूल-सूक्ष्मातादि प्रमाणसे रहित है और नित्य है तिससे तू अपने युद्धरूपी क्षत्री धर्मको निःशंक कर ले ॥ ४२ ॥

अर्जुनका प्रश्न–हे महाराज ! जो देह अनित्य है और आत्मा नित्य है तो मैं नष्ट भया हूं ऐसी स्थिति मर्यादा मनुष्योंकी कैसे करी और लोकोंको स्वर्ग और नरक यह कैसे स्थित भये हैं ॥४३॥

श्रीभगवान्जी कहते हैं–हे अर्जुन ! पृथिवी और जल और तेज और पवन और आकाश मन और बुद्धि यह सूक्ष्म अंशोंकरके सहित सूक्ष्म शरीर करके जीव देहोंमें स्थित रहता है ॥ ४४ ॥

सो जीव सूक्ष्म शरीर करके सहित वासना करके खेंचा जाता है जसे रज्जु करके गौका बच्छा खेंचा जाता है सोही शरीरमें रहता है जैसे पिंजरेमें पक्षी रहता है ॥ ४५ ॥ हे अर्जुन! कर्ण और नेत्र और त्वचा और जिह्वा और नासिका यह जीव शरीरसे इनको ले करके जरता है जैसे पवन पुष्पोंसे सुगंधीको ले जाता है तिस करके स्थूल शरीरही प्राणचेष्टासे रहित होता है तिससे इसको मर गया है ऐसे कहते हैं॥४६॥हे अर्जुन ! वासना-सहित होनाही इसका देह है दूसरा देह कोई नहीं है जो वासनारूपी देह युक्तिविचारसे क्षीण होता है तिसके क्षय भये संते परमपद प्राप्त होता है॥ ४७ ॥ हे अर्जुन ! पिछले काममें भई वासनाका मूल अबके यत्न करके पुरुषार्थ करके जीता है जैसे मूल खोदनेसे वृक्ष गिर जाता है ॥४८॥ हे अर्जुन ! भावे पर्वत फूट करके गिर जावे भावे प्रलयकालके पवन चले तोभी शास्त्रमें कहा अपना पौरुष नहीं त्यागना विचारवाली बुद्धि करके युक्त भये पुरुषको अपना पौरुषही करना ॥४९॥ हे अर्जुन ! जो पुरुष वासना रहित नहीं भया है और पापकर्म भी करता है सो सब प्रकार करके बद्ध भया है जैसे पिंजरेमें पंछी चारों तर्फसे घिरा होता है इस कर्मको मैं त्याग देता हूं इस कर्मको आश्रय करता हूं मूढमनका यही निर्णय है और ज्ञानी पुरुषकी सदा एक समान स्थिति है॥५०॥ हे अर्जुन ! जो पुरुष माया करके संसारके प्रवाहमें आय पडे हैं तिस कर्मको करते हैं सिद्ध होनेमें नहीं सिद्ध होनेमें समचित्त रहते हैं सो जीवन्मुक्त होते हैं अंतःकरण करके सुषुप्ति अवस्थामें हैं और लोकोंकोभी सुषुप्ति अवस्थाकी नाईं भासते हैं हठ और दृढ किसीमें नहीं करते हैं आत्मतत्त्वमें मगन रहते हैं ॥५१॥ हे अर्जुन ! सो पुरुष अपने अंतःकरण करके अचल स्थितिको प्राप्त होता है जैसे कछुआ अपने अंगोंको समेट लेता है तैसे सब विषयोंसे

इंद्रियोंके स्वभाव करके खेंच लेते हैं॥५२॥ हे अर्जुन! सुंदर चित्र है रूप करके सारा सब पूर्ण है सो चित्तमें स्थित भया है तो आकाशमेंभी शून्य होता है कुछ कार्य नहीं करता है तैसे ही तत्त्ववेत्ता पुरुषको संपूर्ण जगत् आकाशमेंभी शून्य होता है कुछभी नहीं करता है ॥५३॥ हे अर्जुन! जैसे मन असत्य पदार्थकोभी संकल्प करके मनोरथ द्वारा रच लेता है तैसेही क्षणको कल्प बरोबर कर लेता है ॥५४॥ हे अर्जुन! जिसको वासनाका बीज अत्यंत तुच्छ भी है चैतन्य सत्तारूपी पृथिवीमें प्राप्त भया तो तेरे तुच्छ वासना बीजही बडा संसारका कारण होता है ॥५५॥ हे अर्जुन! सत्यरूप परमात्माका तत्त्वज्ञानरूपी अग्नि हृदयमें आरूढ भये करके वासनाका बीज एक कालमें दग्ध भया फिर उदय नहीं होता है ॥५६॥ हे अर्जुन! सो वासना बीज दग्ध भया तो पुरुष फिर पदार्थोंमें मग्न नहीं होता है संपूर्ण सुख दुःखोंमें लिप्त नहीं होता है जैसे कमलका पत्र जल करके लिप्त नहीं होता है॥५७॥ हे अर्जुन! तू शांत अंतःकरण हो और भयसे रहित हो और संपूर्ण आशाका त्यागकर और वासनारहित हो निर्वाण बोध करके महामनके मोहको गलितकर. जो कुछ मैंने तेरे प्रति पवित्र आत्मतत्त्व कहा है इसको भले प्रकार विचार करके सर्वात्मा एक शांतरूप होकरके स्थिर बुद्धि हो॥५८॥

अर्जुनका वचन श्रीभगवान्‌जी प्रति।

हे कृष्ण! तुम्हारे प्रसादसे मेरा मोह संपूर्ण नष्ट भया है और आत्माके स्वरूपका स्मरण अब दृढ भया है अब संदेहरहित भया हूं अब मैं तुम्हारे वचनको करता हूं ॥५९॥

श्रीभगवान्‌जी कहते हैं–हे अर्जुन! जो आत्मस्वरूप जानने करके अंतःकरणकी वृत्ति शांत हो जावे तिसका चित्त शांत होजाता

है तो जानना अंतःकरणमें तत्त्वज्ञान बधा है ॥६०॥ हे अर्जुन ! जिसकी प्राप्तिमें यह सबही घट-पटादिकोंके ज्ञान तुच्छ हो जाते हैं तो वासना महा नीचभी है पद पद मोक्ष क्षण क्षणमें उदय होतीभी है तौभी क्या करेगी ॥६१॥ हे अर्जुन ! जैसे अग्निके पर्वतको प्राप्त होकरके बर्फका टुकडा क्षणमें लीन हो जाता है तैसे शुद्ध चैतन्य तत्त्वको प्राप्त होकरके अविद्या लीन हो जाती है ॥६२॥ हे अर्जुन ! महातुच्छ रजोगुणसे भई ऐसी वासना भोगों करके बंधन करनेवाली कहां है और जिस करके संपूर्ण विश्वका जाल अखंड व्याप्त होरहा है ऐसा चैतन्य तत्त्वरूपी महा अग्नि कहां है जिस तत्त्वके किंचिन्मात्र स्मरणकरके वासनासहित अविद्याअपने कार्य कारण समूह के जाल-सहित दग्ध हो जाती है जैसे अग्निके पास तृणसमूह दग्ध हो जाता है ॥६३॥हे अर्जुन ! इससे तू अहंकार करके है स्थिति जिसकी ऐसी वासना करके वृद्ध भई विषयरूपी विषको बधावनेवाली भोगाशारूपी विषूचिकाको संकल्प विकल्पका त्यागरूपी मंत्रकरके दूरकरके केवल परमात्मारूप बन कैसा है संपूर्ण भय निवृत्तिका स्थान है ॥ ६४ ॥

अर्जुनका वचन–हे भगवन् ! मेरी बुद्धि सर्व प्रकार करके संपूर्ण मलोंसे रहित भई है और धीर भई है परम उदयको प्राप्त भई है तुम्हारे वचन करके सावधान भई है जैसे सूर्यके प्रकाश करि कमलिनी प्रकाशित होती है ॥६५॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीके प्रति कहते हैं ।

अर्जुन इतना कह करके गांडीव धनुषको हाथमें लेकर श्रीकृष्ण महाराजजी है सारथी जिसके ऐसे रथके ऊपर बैठ करके और संदेह करके रहित हो युद्धकी लीलाको करेगा ॥६६॥

इति श्रीभगवद्गीता संपूर्ण.

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति कहते हैं ।

हे रामजी ! ऐसी ज्ञानदृष्टि है सो पापका नाश करनेवाली है तिसको धारण करके निःसंग होकरके संन्यासयोग करके संपूर्ण कर्मको ब्रह्मार्पण कर ब्रह्मरूप करके स्थित हो ॥६७॥ हे रामजी ! जितने जगत्के भाव हैं वे विचार विनाही सुंदर भासते हैं और कैसे हैं जिनका सत्तारूपी भाव है नहीं, विचार करके नष्ट होनेवाले हैं ॥६८॥ हे रामजी ! जिसके हृदयमें आत्मविचारका लेश नहीं है सुंदर व्यवहारभी करे तोभी दर्पणमें प्रतिबिंबित पुरुषके समान जड है तिसको मुक्तिका नामभी नहीं है ॥६९॥ हे रामजी ! आत्मस्वरूपका केवल बोधमात्र करके भोगवासना क्षीण होती है भोगोंकी भावना जो नहीं करनी परम तत्त्वज्ञानका लक्षण है॥७०॥हे रामजी ! तत्त्ववेत्ता पुरुषको इस कारणसे भोग अभिमत नहीं है तत्त्ववेत्ता सर्व संसारके भोगोंसे परे स्वरूपानंद करके तृप्त भया है, जिनके अंतमें महादुःख है तिन भोगोंकी तत्त्ववेत्ता क्यों इच्छा करेगा ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! तत्त्ववेत्ता पुरुषका यही परम लक्षण है स्वभाव करके भोगोंकी वांछा नहीं करनी ॥ ७२ ॥ हे रामजी ! जिस कालमें यह जगत्की सृष्टि संपदा स्वप्नकी सृष्टिसंपदाके समान वास्तव करके नहीं भासे तब ब्रह्मलोकभी असत्यही हो जाता है तिसकी इच्छा नहीं रहती है ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! जगत्का विरोधभी नहीं भासे और उत्पत्तिभी नहीं भासे, मुक्तिभी नहीं भासे, मुक्तिके साधनभी नहीं भासे और मुक्तिको चाहनेवालाभी नहीं भासे यही परमार्थता है ॥ ७४ ॥ जो जो भाव जैसा दृष्ट होवे सो तैसाही विद्यमान होता है सो व्यवहारमें सत्यभी भासता है और स्वप्नभ्रमकी रीति जो है सो कदाचित्भी सत्य नहीं माननी सो कहनेमेंभी असत्य है ॥ ७५ ॥

हे रामजी ! जगतमें सो नहीं है जिसमें भ्रम नहीं है त्रैलोक्यमें विचित्ररूपकी वस्तु दृष्ट होती है ॥७६॥ हे रामजी ! जलके मध्य अग्नि प्रज्वलित दृष्ट होती है जैसे समुद्रमें वडवाग्नि है, अंबरमें नगर दृष्ट होते हैं जैसे देवताओंके विमान होवें, शिलामें कमल दृष्टि होते हैं जैसे हिमाचलमें वृक्ष हैं; एकस्थान संपूर्ण पुण्य फल प्राप्त होते हैं जैसे कल्पवृक्षमें ॥७७॥ शिलावृक्षोंके समान फलती हैं जैसे रत्न-समूह हैं, शिलाके अंदर प्राणी होते हैं जैसे मींडक शिलामेंही होते हैं, पत्थरोंसे जल निकसते हैं जैसे चंद्रकांतमणिसे जल निकसे, असत्यभी भोगमें आवे हैं जैसे स्वप्नमें अपना मरण भोगा है, अकस्मात् विना आधार जलभी धारण कर दिया है जैसे बादलोंमें जल है वस्त्रकी चांदनीकी आकाशमें जल रहता है जैसे देवताओंकी गंगा है॥७८॥ भारी शिला आकाशमें उडती है जैसे परोंवाले पर्वत उडते थे, पत्थरसे संपूर्ण पदार्थ मनके चाहे प्राप्त होते हैं जैसे चिंतामणि पत्थरसे, केवल देखनेसे मनोरथ फलते हैं जैसे स्वर्गके बगीचोंमें, कहीं कहीं कोई चिंतन किये मनोरथभी कभी सिद्ध नहीं होते जैसे मोक्ष उत्पन्न होवे ब्रह्म नष्ट होवे प्रपंच सत्य होवे भोग नित्य होवे ईश्वरकी मर्यादा नष्ट होवे वेदप्रमाण नहीं होवे इत्यादि चिंतन कियेभी फलसे नहीं हैं॥ ७९ ॥ हे रामजी ! इसमें तेरे प्रति एक पुराणा इतिहास कहते हैं जो एक भिक्षुको वर्त्तमान भया है, भिक्षु कुछ मननको धारनेवाला है ॥८०॥ तिस भिक्षुका मन समाधिके अभ्याससे सूक्ष्म संपूर्ण स्वरूप धारनेको समर्थ होता भया तिसको किसी कालमें लीला वास्ते कल्पित किये जीवट नाम करके सामान्य जन ब्राह्मण राजालोकमें हरिणीवल्ली भ्रमर हंससे लेकर ब्रह्मा परमहंस नारायण रुद्रपर्यंत क्रमकरके स्वप्नका शत होता भया॥ ८१ ॥ सो स्वप्नमें रुद्र भया तब अज्ञानकरके जो कुछ

विलास किया तिसको संपूर्णताकरके अपनी बुद्धिके विचारकरके विचार करता भया ॥८२॥ हे रामजी ! रुद्रपुरुष भया सो अखंड ज्ञानस्वरूप होकरके अपने सैकडों स्वप्नों करके विस्मित भया आपही एकांत बैठके आपही वचन कहता भया ॥८३॥ अहो आश्चर्य है। यह माया आश्चर्यरूप है, फिर कैसी है विश्वको मोहित करनेवाली है असत्यरूप परंतु सत्यरूपही भासती है जैसे मारवाड देशकी रेतीमें जल भासता है ॥८४॥ इस मायामें सहस्र वर्ष हो गये हैं चार युगोंके सैकडों व्यतीत भये हैं दिन और ऋतुओंके अनेक चरित्र भये हैं यह जगत् आकाशकी नीलताके समान भया है इसका केवल नहीं फुरनाही दूर करनेका उपाय समर्थ हमको होवे ॥८५॥ यह माया असत्यभी है तौभी रूपवाली है चैतन्यसत्ताकी सर्वगत है सो परमात्माके विलास वास्ते क्या कुछ नहीं करेगी ॥८६॥ तिसकरके जो स्वप्न संसारमें मेरेको भये हैं तिन सबको उठ करके मैं देखता हूं. भले प्रकार अपने स्वरूपका दर्शन देखने करके अपने अंशरूपको एक कर लेता हूं ॥ ८७ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी ! सो रुद्ररूप भिक्षु ऐसा चिंतन करके जिस सृष्टिमें सो भिक्षु भया है तिस सृष्टिको जाता भया जहां सो भिक्षु शरीरकरके मृत मनुष्य जैसा शयन करके पडा है ॥८८॥ तहां जाय करके तिस भिक्षुके चित्तको चेतन करने करके संयुक्त करनेसे जाग्रत् करता भया सो भिक्षु सावधान होकरके अपने स्वप्नभ्रमको स्मरण करता भया ॥८९॥ सो भिक्षु अपनेको रुद्ररूप देखकरके जीवभावसे लेकर परमहंस नारायण रुद्रभाव पर्यंत अपनी लीलाकी चेष्टाको विचार करके विस्मयको प्राप्त भया ॥९०॥ हे रामजी ! इस प्रकारके जितने स्वप्नके जो जो स्वरूप हैं तिन सबको अपना रुद्ररूप अंश देने करके बोधन करता भया

शत प्रमाण स्वप्नशरीर सबही रुद्ररूप होते भये सो शत प्रमाण रुद्र-शतनाम करके होते भये रुद्ररूप शोभित होते भये ॥९१॥ इस प्रकार-करके रुद्रोंके दश शत १००० होते भये महातेजस्वी होते भये सो पीले हो गये हैं अबके संसारमें एकादशवें रुद्रोंका शत स्थित है॥९२॥ हे रामजी ! तिससे जो जीवसमूह बोधरहित हैं सो आपसमें अपने आत्माको नहीं देखते हैं मन करके बोधको प्राप्त भये प्रेरण किये हुए आपसमें मिलते हैं जैसे समुद्रमें तरंग आपसमें मिलते हैं॥९३॥

श्रीरुद्रजी अपने अंशरूपी रुद्रोंको कहते हैं।

अब तुम अपनेस्थानोंको सत्ता बीच ले जाओ तहां जा करके पुत्र-स्त्रीआदिकोंके अपने अपने प्रारब्ध भोगोंको भोग करके मेरे पास चले आओगे फिर तुम सबही मेरे अंश होओगे और मेरे गण होओगे मेरे पुरके भूषण होओगे तिससे उपरांत महाप्रलय होनेसे परमपदको हम प्राप्त होवेंगे ॥ ९४ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं।

सो रुद्र भगवान् तिनको ऐसे कह करके छिप जाते भये सो भी सब जीवट नाम जिसका ऐसा भिक्षु ब्राह्मणसे लेकर अपने अपने स्थानमें जाय करके अपनी स्त्री-पुत्रादिकों करके प्रारब्ध भोगोंको भोग करके अपने अपने देहोंको त्याग करके रुद्रलोकको प्राप्त हो करके रुद्रजीके गण होवेंगे किसी समयमें आकाशमें ताराओंके स्वरूप करके दृष्ट होते हैं ॥९५॥ हे रामजी ! तपस्वी दो प्रकारके श्रेष्ठ मुनीश्वरोंने कहे हैं-एक काष्ठ तपस्वी होता है, दूसरा जीवन्मुक्त कह्या है ॥ ९६ ॥ जो शुद्ध भावनासे रहित और शास्त्र-विधिसे रहित शांति-शीलादिकोंसे रहित ऐसी शुष्क क्रियामें दृढ निश्चयवाला और हठ करके इंद्रियोंका जीतनेवाला है. पंचाग्नि

जलशय्या ऊर्ध्वबाहु इस प्रकारकी घोर तपस्याको करनेवाला जो मुनि है सो काष्ठ तपस्वी कहा है॥९७॥ और जो व्यवहारमें संसारी लोक जैसा वर्त्तमान है तौ भी साधनोंकरके इन्द्रियोंको जीतनेवाला और अंतःकरणमें आनंदकरके पूर्ण है सो मुनि जीवन्मुक्त कहा है. जिसको तत्त्वनिश्चयमें दृढ भावना नहीं भई है और आनंदप्राप्ति विना शीतलतारहित है इसी कारणसे शुष्क है ऐसी भावनावाला है और तत्त्वज्ञानकी साधनक्रियामें दृढ निश्चयवाला है और तत्त्व जानने वास्ते हठ करके इंद्रियोंको जीत लेता है सो भी काष्ठ तपस्वी कहा है ॥९८॥ यह दो प्रकारके मुनियोंके नाथोंका जो मौनभाव है वह कैसा है चित्तका जो निश्चय है सोही है स्वरूप जिसका सो भाव मौन शब्दकरके कहा है ऐसे भाव करकेही मुनि कहे जाते हैं॥९९॥तिस मौनके स्वरूपको जाननेवाले चार प्रकार करके कहते हैं एक इंद्रियोंका मौन है, एक वाणीका मौन है, तीसरा काष्ठ मौन, चौथा सौषुप्त मौन है ॥ ६०० ॥ हे रामजी! वाणीका जो संयम करना तिसको वाङ्मौन कहते हैं बलकरके इंद्रियोंका संयम करना तिसको अक्ष मौन कहे हैं इंद्रियां मनकी चेष्टा जो त्याग देनी तिसको काष्ठ मौन कहते हैं और सुषुप्ति अवस्थाकी समान संपूर्ण विश्व फुरना जो नहीं होना सोही सौसुप्त मौन कहा है तिसको ही जीवन्मुक्ती कहते हैं॥१॥ हे रामजी ! तिसके स्वरूपको तुम मेरेसे श्रवण करो यह कैसा है कर्णमें श्रवण करनेसे भूषणकी समान आनंदको करता है इसमें पूरक, रेचक, कुंभक भेद करके तीन प्रकारका प्राणायामभी नहीं करना बनता है इसमें इंद्रिय भोग विषयोंकी वासना उदय नहीं होती नष्ट भी नहीं होती जाननी परती है इसका स्थूल-सूक्ष्मादि विभागभी नहीं बनता है और अभ्यासभी नहीं करना बनता है और आदि-अन्तके भेदसे रहित है ॥२॥ इसमें

ध्यान करनेमेंभी आत्माकी एकाग्रता स्वरूपानन्दमें एक जैसी स्थित होतीहै ॥ ३ ॥ हे रामजी ! यह सौसुप्त मौन कहा है इसका अन्त नहीं है सदा आत्मबोधसहित यह तुरीया पद है अथवा इसीको तुरीयासे परे जानो ॥ ४ ॥

श्रीरामचंद्रजीका प्रश्न वसिष्ठजी प्रति ।

हे गुरुजी ! एक यह मेरेको संदेह है तिसको तुम कृपा करके दूर करो सदाशिवजी ईश्वर हैं, अपने भक्तोंको ऐश्वर्यभोग देनेवाले हैं सो शिवजी मनुष्योंके कपालोंकी मालाको भूषण करके धारण करते हैं सदैव भस्म धारण करते हैं और नग्न रहते हैं और श्मशानमें निवास करते हैं ऐसे जगत्में विरुद्धकार्यको किस कामना करके करते हैं ॥ ५ ॥

वसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं ।

हे महान् ! जो जगत्के ईश्वर हैं सो स्वभावकरके सिद्ध होते हैं तिनको काम संकल्प नहीं होता है सो जीवन्मुक्त स्वरूप होते हैं तिनको कर्म क्रिया करनेका नियम नहीं होता है क्रियाका नियम अज्ञानी पुरुषकोही कल्पित किया है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! अज्ञानी पुरुषका चित्त ज्ञान बिना स्वरूपके प्रकाश विना जड होता है तिससे क्रियाके नियम विना कुमार्गमें प्रवृत्त होने करके परम दुःखको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ हे रामजी ! यह संसाररूप स्वप्न है इसमें एक वेतालने एक राजा प्रति प्रश्न कहे हैं सो प्रसंग करके मेरेको स्मरण भये हैं सो शुभको करनेवाले हैं तिनको तुम श्रवण करो ॥ ८ ॥ हे रामजी ! विंध्याचल पर्वतकी झाडीमें एक वेताल था तिसका महाविशाल स्वरूप था सो वेताल महागर्व करके युक्त भया प्राणियोंको मारनेकी इच्छा करके किसी एक देशमें चला आता भया ॥ ९ ॥ उसका यह एक नियम था जो प्राणी अपना

अपराध नहीं करे सो भावे अपने मुखके पास आवे तो क्षुधा करके पीडित भया है तोभी तिस प्राणीको नहीं भक्षण करे ॥ १० ॥ हे रामजी ! तहां एक राजा रात्रिमें नगरकी रक्षा करने वास्ते भ्रमण करता तिस वेतालको राजा प्राप्त भया तिस राजाको वेताल कहता भया ॥ ११ ॥

वेतालका वचन–हे राजन् ! मैं वेताल हूं महाभयानक हूं तू मेरेको प्राप्त भया है अब कहां जाता है ? अब तू नष्ट भया है मेरा भोजन तू बन ॥ १२ ॥

राजाका वचन वेताल प्रति–हे वेताल ! रात्रिमें चलनेवाले तू मेरेको विना अपराध बलसे खावेगा तो तेरा शिर सौ टूक होय करके फूट जावेगा ॥ १३ ॥

वेतालका वचन–म तोको नहीं भक्षण करता हूं, मेरेको न्यायही रुचता है, मैं तेरेसे समान वार्ताको ही पूछता हूं, मैं तेरा न्यायका अर्थी हूं, मेरे न्यायके प्रश्न संपूर्ण करने ॥ १४ ॥ मेरी संभावनाके प्रश्नोंको तू भली तरहसे कह दे राजा लोग न्याय करते हैं और अर्थी जनोंके अर्थ पूरे करते हैं तिससे तुम न्याय कहो ॥१५॥ हे राजन् ! ऐसा सूर्य कैसा है जिसकी किरणें ब्रह्माण्डांके सहस्र सूक्ष्म किरणके सरीखे प्रकाशमान हैं ऐसा पवन कौन है ॥ १६ ॥ जिसमें महाआकाशकी रेणु उडते हैं ऐसा पुरुष कौन है जो एक स्वप्नसे दूसरे स्वप्नांतरमें दूसरेते तीसरेको तीसरेते चौथेको इस प्रकार सैकडों स्वप्नांतरोंको जाता है फिर अपने स्वरूपको त्याग करता है तौभी नहीं त्याग करता है ॥ १७ ॥ और ऐसा कौनसा अंडा है जिसमें केलेके स्तंभकी त्वचाको बाहिरके उतारने-से उसके अंदर और त्वचा निकलती है तिसके अंदर और निक-सती है तिसके अंदर और निकसती है उसके अंदरसेभी और इस

प्रकार करके अनेक त्वचा निकसती हैं ॥ १८ ॥ तैसे एक ब्रह्मांडके अंदर दूसरा दूसरेके अंदरसे तीसरा तीसरेके अंदर चौथा इस प्रकार करके अनेक ब्रह्मांड जिसके अंदरसे भी अंदर वर्त्तमान हैं ऐसा ब्रह्मांड कौन है अणु है जिसमें ब्रह्मांड और आकाशादिक भूतोंके समूह और सूर्यमंडल सुमेरु आदि पर्वतादिक वर्त्तमान हैं जिसके ऐसे कौनसे अणुके परमाणुरूप हैं और अपने अंडभावको त्यागते नहीं हैं ॥१९॥ और ऐसा कौन पर्वत है जिसके एक परमाणुमें एकत्र होय करके अनेक त्रैकोक्य गौरी मनशिला धातुरूप करके स्थित है ॥ २० ॥ हे राजन् ! यह मेरे प्रश्नोंको तू नहीं पुरेगा तो दुर्बुद्धे ! तेरेको मैं खाय लेऊंगा तो तेरेको आत्मघात दोष आवेगा और तेरे राजमंडलको एक फल समान भक्षण कर लेऊंगा ॥ २१ ॥

राजा हँस करके कहता है ।

हे वेताल ! किसी कालमें यह ब्रह्मांड चैतन्य परिपक्व फल जैसा होता है जिसके ऊपर दशगुण पृथिवी, पृथ्वीसे दशगुण जल, जलसे दशगुण तेज, तेजसे दशगुण पवन, पवनसे दशगुण आकाश, आकाशसे दशगुण अहंकार इस प्रकार ऊपर वस्त्रके वेष्टनके समान लपेटने युक्त है ॥ २२ ॥ तैसे फलोंके सहस्र जिसमें लगे हैं ऐसी एक शाखा है कैसी है ? विशाल पत्र हैं जिसके तैसी अनेक सहस्र शाखा जिसमें हैं ऐसा एक महावृक्ष है महाविस्तारवाला जिसकी छायाका मंडल है तैसे वृक्षोंके सहस्र हैं जिसमें ऐसा एक वन है जिसमें अनेक वृक्ष-तृण शतादिकों करके भरा है ॥ २३ ॥ तैसे वनोंके जिसमें सहस्र हैं ऐसा एक पर्वतका महाशिखर है अत्यंत ऊंचा है विशाल विस्तारयुक्त है तैसे शिखरोंके सहस्र जिसमें हैं ऐसा एक देश महाविस्तारयुक्त है तैसे देश सहस्र

जिसमें हैं ऐसा एक द्वीप है महानदियां महासरोवरों करके युक्त है तैसे द्वीपोंके सहस्र जहां हैं ऐसा एक चौतरा है अनेक रचनायुक्त है ऐसे चौतरे सहस्र जहां हैं ऐसा महान् अंडा है ऐसे अंडोंके सहस्रोंके करंडियां जिसमें तरे हैं ऐसा एक विशाल जलों करके भरा एक समुद्र है॥२४॥तैसे समुद्रोंके लक्ष जिसमें हैं ऐसा एक तरंग है तैसे तरंगोंकी अनेक कोटि जिसमें हैं ऐसा एक महासमुद्र है तैसे महासमुद्रोंके सहस्र जिसके उदरमें जलके समान रहे हैं ऐसा एक महापुरुष है महाविशाल स्वरूपवाला है तैसे महापुरुषोंके लक्षोंकी माला जिसके हृदयमें शोभ है ऐसा संपूर्ण जीवोंका प्रधानपुरुष है ऐसे प्रधान पुरुषोंके सहस्र जिसके मंडलमें एक रोम सरीखे भासते हैं ऐसा महासूर्य है जिसके प्रकाशमें ऐसी सैकडों दृष्टि होती हैं॥२५॥हे वेताल! जैसी कल्पना मैंने तेरे प्रति पीछे कही है सो संपूर्ण तिसकी प्रकाशशक्ति है जिसके प्रकाशकी छायाके ब्रह्मांडत्रसरेणु सरीखे महाअणुरूप हैं॥२६॥ माया है किरण जिसकी ऐसा परमात्मा सूर्य है सो सबको प्रकाशमान करता है कालकी सत्ता और आकाशकी सत्ता और इनके प्रवाहकी सत्ता संपूर्ण चैतन्यसत्ता और शुद्ध चैतन्यसत्ता यह संपूर्ण पवित्र हैं॥२७॥ हे वेताल! परमात्मारूपी महापवन है तिसमें महाआकाशादिक रेणु चंचल होयकरके चलती है और जगत्नामामहान् स्वप्न है तिसमें अनेक स्वप्नांतर हैं तिनको जानताभी है तौभी अपने सच्चिदानंदस्वरूपको नहीं त्यागता है सो परब्रह्म है सदाशांत है और प्रकट होना,लय होना, वृद्ध होना, क्षय होना इन्होंसे रहित है॥२८॥ जैसे केलेका स्तंभ ऊपरसे त्वचा उतरानेसे अंदर और और त्वचाको प्रकट करता है एकका ही अनेक बना है बाहिरसे तैसे यह विश्व एक ब्रह्मकाही अनेक बना है असार भ्रमरूप फुरनेके पदार्थ त्यागनेसे अंदर अंदरसे सारसे सार पदार्थ प्रतीत होता

है ॥२९॥ हे वेताल ! यह चैतन्य अणुसे भी सूक्ष्मरूप है और अनंत है तिसके एक अंशके अणुमें ब्रह्मांड आकाश,समस्त भूतसमूह, सूर्यमंडल और सुमेरु परमाणुके समान प्रतीत होते हैं कैसे हैं रूपरहित जैसे हैं स्वप्नके ब्रह्मांडके समान ॥ ३० ॥ हे वेताल ! नहीं प्राप्तव्य होनेसे यह पुरुष परम अणुरूप है और सबको सत्ता देनेमें सत्ताका महापर्वत है संपूर्ण विश्व तिसका अवयव अंगरूप है तोभी इसके नाश विषें नहीं नष्ट होनेसे निरवयव है उसकी यह त्रैलोकी केवल नाममात्र करके सत्तामात्र है इसको केवल ज्ञानमात्रको ही जान ॥ ३१ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं–हे रामजी ! सो वेताल तिस राजाके मुखसे ऐसा वचन श्रवण करके परम शांतिको प्राप्त होता भया अचल ध्यानमें स्थित होता भया, अत्यंत क्षुधा जो लगी थी तिसको विसार देता भया ॥३२॥

अब भगीरथराजाके प्रसगको सुनावते हैं ।

हे रामजी ! सो राजा भगीरथ संतजनोंकी सेवा वास्ते निरंतर धनोंको देता भया आप किसीसे तृण मात्रभी नहीं लेता है जसे चिंतामणि रत्न जो चाहे तिसको देता है आप पदार्थके ग्रहणके फुरनेसे रहित है ॥३३॥ सो राजा यौवनको प्राप्त भया है तौभी इस लोककी उलट पलट होती व्यवस्थाको देखनेका विचार करके यौवनमेंही वैराग्य उदय होता भया जैसे मारवाड देशमें लता प्रकट होवे ॥ ३४ ॥ सो राजा भगीरथ एक समयमें उदास मन होय करके अपने तितल नामक गुरुको एकांतमें संसारमें भयभीत होय करके पूछता भया ॥३५॥ हे गुरुजी ! संसारको प्राप्त करनेवाले जरा-मृत्यु और मोहरूपी सर्व दुःखोंका अंत कैसा होता है ॥३६॥

तितल गुरु कहते हैं—हे राजन्! यह चित्त ज्ञान करके ज्ञेय चैतन्य वस्तुमें एक निष्ठाको प्राप्त होवे तो जीव सर्वत्र परब्रह्मरूपको जानता है फिर संसारदुःखको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

तिस ज्ञानको हम अब कहते हैं—पुत्र और स्त्री गृह और धनादिक इनसे संग और प्रीति नहीं करनी सुखदुःखकी प्राप्तिमें समचित्त रहना आत्मज्ञानमें नित्यही निष्ठा करनी, तत्त्वज्ञानका अर्थ विचार और आत्माकी एकांत भावना करनी निर्जन पवित्र देशमें रहना, संसारीलोगोंकी संगति त्यागनी यह ज्ञान कहा है. इससे विरुद्ध अज्ञान है ॥ ३८ ॥ हे राजन्! सो ज्ञान कैसा है? राग द्वेषको क्षय करनेवाला है. संसार रोग दूर करनेकी औषध है. सो ज्ञान देहादिकमें अहंभावकी शांति भई संते होता है ॥ ३९ ॥ हे राजन्! अपने पौरुषके यत्न करके और भोगसमूहकी भावना त्यागनेसे आत्माकी सत्ताको सदा प्रकाशमान पाकरके अहंकार लयको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ हे राजन्! जबलग लज्जा और स्नेह मोहादिकोंका बंधनरूपी यंत्र नहीं टूटा, जिससे परे कुछ नहीं ऐसी ब्रह्मचैतन्यकी सत्तामात्र जगत्के अभावको शेष नहीं जानी तबलग अहंकार बना है ॥४१॥ हे राजन्! तू संपूर्ण संसारके सुख दुःख हर्ष शोकादि विशेषणोंको शांत कर और जरा मरणादि भयसे रहित हो, लोकेषणा पुत्रेषणा वित्तेषणासे रहित हो और निष्किंचन पुरुषके समान सबसे ममताको त्याग कर संपूर्ण संपदाको भी त्यागकर अहंकारकोभी शांत कर और देहकी रक्षासे रहित हो, लोकमें भिक्षाटन करके सर्व त्यागको धारण करेगा तो ऊंचेसे भी ऊंचे पदको पावेगा ॥ ४२ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! तितिल गुरुने राजा भगीरथको ऐसा कहा तो सो राजा केते दिन गये संते सर्व त्यागकी

सिद्धि वास्ते अग्निष्टोम यज्ञको करता भया. एक धोतीमात्र बाकी वस्त्रको लेकर सर्व त्याग करके अपने नगरसे और राज्यसे बाहिर निकस जाता भया. जहां अपनेको नाम करकेभी नहीं बुलावे और जानेभी नहीं तहां जाय रहता भया ॥४३॥ तहां जाकरके ग्रामों विषै वनोविषै नदी तीरों विषै आश्रमों विषै पर्वतोंकी कंदराओंमें निवास करता भया. और आत्मविचारमें धैर्य करके सावधान होता भया. और तीन प्रकारकी ईषणा पुत्र, लोक, द्रव्य इसकी इच्छा उसकी शांत होती भई ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! सो राजा भगीरथ परम उपशम करके आत्मस्वरूपमें विश्रांतिको प्राप्त होता भया. पृथिवी अनेक नगरों देशोंमें कितना काल व्यतीत करके अपने नगरको आवता भया. वह कैसा है नगर ? अपने वशमें नहीं है, और शत्रुजनों करके आक्रांत किया है ॥४५॥ तिस नगरमें प्रवाह करके जो आगे आ जावे तिस मंदिरमें चला जाता है अनेक नगरके लोकोंके घरोंमें मंत्रियोंके भिक्षाटन करता भया ॥ ४६ ॥

और जिस शत्रुने राज्यलिया है, सो राजाको कहता भया ।

हे महाराज ! अपने राज्यको ग्रहण करो. ऐसे कहनेसेभी राज्यको ग्रहण नहीं करता भया. जिस कारणसे तिसने सर्व त्याग किया है, सो भोजनमात्रसे अधिकको नहीं लेता भया ॥ ४७ ॥ किसी कालमें प्रशांत भया सर्व प्रकार करके प्रशांत भई बुद्धि जिसकी और परम सुखको प्राप्त भया सो एक कालमें आत्मानंदमें मग्न भये तितिल गुरुके पास प्राप्त होता भया ॥ ४८ ॥ सो तितिल गुरु और राजाभगीरथ शिखा दोनों मुनियोंकी सभामें प्राप्त भये; आपसमें ब्रह्मविचार करके कालको व्यतीत करते भये, अयाचित अन्नपान करके देवयात्राको करते भये ॥ ४९ ॥ सो दोनों धनोंको

हाथी घोडे रथोंको और अष्ट प्रकारके ऐश्वर्यको सिद्धजनों करके सेवित किया है तिसकोभी तृण समान जानते भये ॥ ९० ॥ सो दोनों मुनि होते भये. जो कुछ काल योगसे सुख अथवा दुःख चला आता है, तिसको आनंद करके अंगीकार करते भये. और वह कैसे हैं ? चाहनासे रहित हैं समरस अवस्थामें दोनों समान होते भये ॥ ९१ ॥ सो राजा भगीरथ किसी देशमें कोई कितने राजे नष्ट हो गये. तब मंत्रियोंने प्रजाने विनती करी तो लोकोंके उपकारके वास्ते अपने पराये राज्यको करता भया, सप्तदीप पृथिवीका एक चक्रवर्ती होता भया, फिर महातपस्या करके ब्रह्मलोकसे गंगाको पृथिवीलोकमें उतारता भया. तिससे उपरांत मनरूपी हंसको उपशम करके परम गतिको प्राप्त भया ॥ ९२ ॥

इति श्रीभगीरथराजाका प्रसंग ।

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं ।

हे रामजी ! तुम भी मन करके यह संपूर्ण संसारजालको त्याग करके मनरूपी पक्षीको अपने वश करके राजा शिखिध्वजके समान शांतवृत्ति होय करके सुखमें अचलस्थितिको प्राप्त हो ॥ ९३ ॥ हे रामजी ! एक राजा शिखिध्वज मालव देशका होता भया. चूडाला तिसकी रानी होती भई. सो दोनों उत्तम गुणोंकरके संयुक्त होते भये, चिरकाल राज्यभोगोंको अपनी इच्छा करके भोग करके फिर विचारको करते भये ॥ ९४ ॥ इस संसारमें ऐसा कौन स्थिर और सुंदर पदार्थ है जिसको पाकरके चित्त दुःखदशा करके संतापको नहीं प्राप्त होता है ॥ ९५ ॥ सो राजा और रानी ऐसा मनमें निर्णय करके संसाररोगकी औषधरूपी वेदांतशास्त्रको चिरकाल विचार करके मनमें निश्चय करते भये. संसाररूपी विषूचिका आत्मज्ञान करके शांत होती

है. ऐसा निश्चय करके आत्मज्ञानमें परायण होते भये ॥ ५६ ॥ हे रामजी ! इसके अनंतर सो चूडाला रानी तत्त्वज्ञ पुरुषोंके मुखसे सुंदर पदोंकरके शास्त्रोंके अर्थोंको संसारसे तारनेवालेको सुन करके इस प्रकारके अपने आपको ऐसे विचार करती भई ॥५७॥ संसारके कार्यको करती हुई,अथवा नहीं करती हुई निरंतर अपनेमें विचार करती भई मैं देखूं तो सही मैं आप कौन हैं यह मोह किसको प्राप्त भया है और कहांसे उठ खडा भया है ॥ ५८ ॥ जो मैं देहको आत्मा जानूं तो देह वो जड है और मूढ है,यह आत्मा नहीं है; किससे जिससे बालपनेसेही मैंने अनुभव करके जाना है यह कर्मेंद्रियोंकरके कर्म करे है. तो मैं कर्मेंद्रियोंको आत्मा जानूं तो कर्मेंद्रियां भी आत्मा नहीं हैं जिससे कर्मेंद्रियां देहके अंग हैं; और ज्ञानेंद्रियोंकी प्रेरण करी हुई कर्म करनेमें प्रवृत्त होवे हैं ॥५९॥ तो ज्ञानेंद्रियां आत्मा नहीं है ज्ञानेंद्रियां भी जड हैं जिससे मनकी प्रेरणा करी हुई प्रवृत्त होवे यहभी शरीरके अवयव हैं, जैसे लाठी करके बल करके लोक काम करे हैं तैसे प्रवृत्त होवे हैं; तो मन आत्मा है सोभी नहीं जिससे मनभी जड है जैसे खमानी करके पत्थर फेंकियां है तैसे मन बुद्धिने प्रेरण किया हुआ संकल्प करे है ॥ ६० ॥ जो बुद्धि निश्चयरूप है सो बुद्धि आत्मा नहीं है क्योंकि बुद्धिभी जड है सोभी अहंकार प्रेरण करी निश्चय करे है जैसे पृथिवीको खोदनेके मार्ग करके नदी चले है ॥ ६१ ॥ तो अहंकार आत्मा है सोभी नहीं जिससे अहंकार भी जड है मुर्देके सरीखा है जैसे बालकने अपने भ्रम करके यक्ष कल्पना किया है सो बालककोही डरावे है तैसे अहंकारभी जीवने कल्पना किया है. जो जीव आत्मा है सोभी नहीं सो जीव भी चैतन्यका अंशरूप करके हृदयमें स्थित है; अनात्मपदार्थके हृदयमें स्थित

भया है, और अत्यंत सूक्ष्म है और किसी परमात्मा चैतन्य करके अपने जीवभावको करे है ॥ ६२॥ अहो ! इति महानंद है अब मैंने जाना है जिस करके देहादिकोंको चेते है और जड पदार्थोंमें जीवभावको करता है, परंतु जडपदार्थोंके नाशमें नाशको नहीं प्राप्त होता है. जिस चैतन्यरूप करके प्रकाशा है जिसके चेतने विना जड पदार्थोंसे मुक्त नहीं होता है सो परमात्मा चैतन्य मैंने अब जाना है ॥६३॥ यह जीव जो है सो असत्य और जड जो देहादिक हैं और चिदाभास इनके संबंधसे अपना जो चैतन्यता स्वरूप है तिसको आप शुद्ध चैतन्य स्वरूपभी है अपने स्वरूपको त्याग करके जडरूप हो जाता है जैसे जलके महासरोवरमें प्राप्त भया अग्नि अपने प्रकाशरूपको उष्णता गुणको त्याग देता है ॥ ६४ ॥ यह जो मन बुद्धि आदि कहो सो चिदाभास कर सब ही असत्य हैं, भ्रम करके सिद्ध भये हैं जैसे भ्रम करके एक चंद्रमाके दो चंद्रमाकी प्रतीति होती है तैसे दूसरे चंद्रमाके स्थान हैं ॥ ६५ ॥ सत्यरूपी एक महाचैतन्य परमात्मा है, जिसको महासत्ता कहते हैं सो सदा अज्ञानादि कलंकसे रहित है, सर्वत्र सदा समान है अहंकारसे रहित स्वरूपयुक्त है ॥ ६६॥

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी ! सो चूडाला अपने विवेकके घने अभ्यास और आत्मस्वरूपके उदयसे कांति करके अत्यंत शोभित होती भई जैसे लता नई प्रगट होती है सो फल और नवदलोंके उदय होनेसे शोभित होती है ॥६७॥ हे रामजी ! राजा शिखिध्वज तिस चूडालाको देखता भया है. उत्तम है अंग जिसके तिसको अपूर्व शोभायुक्त भईको देख करके मन्दहासयुक्त वचनको कहता भया हे प्रिये ! तू अब फिर नये यौवनको प्राप्त भई जैसी शोभे है. बारंबार उत्तम शृंगार रचनायुक्त जैसी शोभती है, अपनी शोभा करके संपूर्ण जगत्को शोभायमान

करती है ॥ ६८ ॥ हे प्रिये ! मानो तैंने अमृत पान किया है अथवा मानो उत्तम वस्तुको प्राप्त भई है, मानो आनंदसमुद्रमें मग्न भई है ॥ ६९ ॥ हे प्रिये ! चक्रवर्ती राज्यसे और चिंतामणिसे त्रैलोक्यके इन्द्रपदवीसे तेरेको क्या अधिक वस्तु प्राप्त भया है ऐसी आनंद करके अत्यंत शोभाको प्राप्त अपने आनंदके कारणको मेरे प्रति कह दे ॥ ७० ॥

चूडाला रानीका वचन–हे राजन् ! मेरे स्वामिन् ! मैं इस जगतको कुछ स्वरूप करके युक्त भयेको अथवा कुछ स्वरूपरहित भयको कुछ भी जानती हूं तिस कारणसे मैं अत्यंत शोभाको प्राप्त भई हूं ॥७१॥ हे स्वामिन् ! भोगोंको भोगने करके अथवा नहीं भोगने करके हर्ष नहीं करती हूं और शोक भी नहीं करती हूं मेरेको भोग पास प्राप्त भये भी दूर गये जैसे हैं तिससे आनंदयुक्त भई हूं ॥७२॥ हे नाथ ! यह मैं हूं यह मैं नहीं हूँ सत्य मैं हूं असत्य मैं हूं, सम्पूर्ण मैं हूं, मैं कुछ नहीं ऐसे संकल्पसे रहित होने करके आनन्दयुक्त मैं भई हूं ॥७३ ॥ हे नाथ ! निश्चयकरके उत्तम शास्त्रोंकी विचारदृष्टि करके उत्तम बुद्धि करके रागद्वेषसे रहित भई हूं, सखी जनोंके साथ क्रीडा भी करती हूं तिससे सुखी भई हूं ॥ ७४ ॥ हे नाथ ! जो कुछ नेत्रोंकरके देखती हूं सो यहां जगत्में सत्यमें कुछ दृष्ट नहीं होता है, तिस परमात्मा चैतन्यको मैं भली तरहसे देखती हूं तिससे चिरकाल परम उदयको प्राप्त भई हूं ॥ ७५ ॥

वसिष्ठजी रामजी प्रति कहते हैं–हे रामजी ! सो चूडाला रानी आत्मस्वरूपमें विश्रांत भई राजाको आत्मज्ञानका मार्ग कहती भई, सो राजा तिसके वचनोंके अर्थको नहीं जान करके

शिखिध्वज राजा कहता भया ॥ ७६ ॥ हे प्रिये ! तू संबंधरहित वचनोंको कहती है, तू अज्ञान है, बालबुद्धि है, राजभोगोंको भोगने योग्य है, राजकन्या है, भोगोंके भोग ऐसे वचन कहनेको तू योग्य नहीं है ॥७७॥ हे प्रिये ! जो कोई कुछ प्रत्यक्ष पदार्थको त्याग करके जो देखने भोगनेमें नहीं आवे तिसको विचारे और प्रत्यक्ष भोगको असत्य कहे सो कैसे शोभाको पावे है॥७८॥हे प्रिये ! जो कोई भोगोंको विना भोगे त्यागे, जो कुछ नहीं तिसमें प्रीति करे सब कुछ त्याग करके अकेला रहे सो कैसे शोभता है ॥७९॥ हे प्रिये ! जो कहे न मैं देह हूं मैं देहसे और हूं यह सब कुछ नहीं ऐसा जिसका कहना है सो कैसे शोभता है ॥८०॥ हे प्रिये ! जो मैं देखता हूं तिसको मैं नहीं देखता हूं, जिसको मैं देखता हूं सो इससे और है ऐसा कहना जिसने नहीं त्यागा है सो कैसे शोभता है ॥८१॥ तिससे हे प्रिये ! तू बाला है और मूढ है और चंचल है ऐसे मत कहो तू विलास भोगने योग्य है अनेक विलासवाले वचनोंको कह और विलासयुक्त भोग क्रीडाको कर ॥ ८२ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—सो चूडाला रानी राजाको आत्मज्ञानसे रहित देख करके दया करके तिसके उद्धार वास्ते आधि और व्याधिसे मुक्त होय करके आत्मज्ञानकी योगसिद्धिसे आकाशमें उड जानेको समर्थभी है तौ भी राजाके उद्धार करनेवाले योगाभ्यासको करती भई ॥ ८३ ॥

श्रीरामजीका प्रश्न वसिष्ठजी प्रति ।

हे महाराज ! इस देहमें विनाश क्या है और उत्पात क्या है और आधि क्या है और व्याधि क्या है इसको तुम क्रमसे कहो ॥ ८४ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी ! आधि और व्याधि ये दोनों दुःखके कारण हैं तिनकी निवृत्तिको तू सुख जान, तिनके क्षयको

तू मोक्ष जान ॥८५॥ हे रामजी! ये दोनों आधि व्याधि किसी काल-में इकट्ठे शरीरमें होते हैं कदाचित् क्रमसे होते हैं कदाचित् आगे पीछे होते हैं ॥ ८६ ॥ हे रामजी ! देहके दुःखको व्याधि जानते हैं वासनाके दुःखको आधि कहते हैं तिन दोनोंकी अपनी मूर्खता ही मूल है तत्त्वज्ञानसे दोनोंका क्षय होता है ॥ ८७ ॥ हे रामजी ! तत्त्वज्ञान नहीं होनेसे और इंद्रियोंके जीतने विना और हृदयसे राग द्वेषोंके नहीं त्यागनेसे और जडतासे घने मोहको देनेवाली आधि प्रवृत्त होती है जैसे वर्षाऋतुमें जलधारा होती है॥८८॥ हे रामजी ! भोगोंकी हृदयमें निरंतर वांछा करनेसे और मूढतासे चित्तके नहीं जीतनेसे दुःख करनेवाले क्रूर व्यवहार करके दुष्ट देशमें भ्रमनेसे क्रूरकालमें व्यवहार करनेसे क्रूर क्रिया करनेसे दुर्जनोंकी संगति दोष करके दुर्जनोंकी सेवा करनेसे नाडियोंके मार्गमें पवनके बढ़ने घटनेसे देहकी व्याकुलता करते अत्यंत दुःख देनेवाली चित्तको व्याकुलता करनेवाली शरीरमें व्याधि होती ॥ ८९ ॥ हे रामजी ! जैसे नदीके स्वरूपकी वर्षाऋतुमें और ग्रीष्मऋतुमें क्षीणता और वृद्धि होती है तैसे आधि व्याधि ये दोनों पंच भूतोंसे बनी हुई शरीरमें उदय होती हैं ॥ ९० ॥ हे रघुकुलके धुरंधर ! जैसे आधि व्याधि नाशको प्राप्त होती है तिसको तुम श्रवण करो. व्याधि दो प्रकारकी है-एक साधारण है, एक सार है. व्यवहारकी व्याधि सामान्य है, जन्मकी व्याधि सार है. जो प्राप्त हो गया भोग पदार्थ तिस करके शरीरका प्रयोजन करनेसे व्यवहारकी व्याधि नष्ट होती है ॥ ९१ ॥ हे रामजी ! जो व्याधि मानसी चिंतासे भई है सो मानसी चिंताके नाश भयेसे नष्ट होती है और जन्मरूपी सम व्याधि जो है सो आत्मज्ञान विना नष्ट नहीं होती है॥९२॥ हे रामजी! मानसी दुःखही आधि कही है सो संकल्परूप है और वासनामय है सो जैसे

रज्जूका ज्ञान करके रज्जूका सर्प नष्ट होता है तैसेही सबका अधिष्ठान आत्माको जाननेसे वासनासहित मानसी आधि नष्ट होती है ॥९३॥ हे रामजी ! जैसे वर्षाऋतुमें बढ़ी जो नदी सो अपने तटके वृक्षोंके मूलोंको उखाड देती है आत्मज्ञान संपूर्ण आधि व्याधिके मूल कारण अविद्याको दूर कर देता है ॥९४॥ और जो मानसी चिंतासे व्याधि है सो मंत्र औषधी क्रमोंकरके चिकित्साशास्त्रमें कहे उपाय करनेसे और आहारव्यवहारके संयमसे नष्ट होतीहै॥९५॥

श्रीरामजीका प्रश्न वसिष्ठजी प्रति–हे गुरुजी ! आधिसे व्याधि कैसे होती है सो औषधी द्रव्योंकरके और मंत्रकी युक्तिकरके और पथ्य करनेसे नष्ट होती है यह तुम मेरे प्रति कहो ॥ ९६ ॥

श्रीवसिष्ठजी रामजी प्रति कहते हैं–हे रामजी ! चित्त व्याकुल होनेसे देहभी क्षोभको प्राप्त होता है तब यह प्राणी क्रोधको प्राप्त भया अपने आगे मार्ग कुमार्गको कुछ नहीं देखता है वेग करके युक्त भया जैसे बाणकरके पीडित भया मृग वेग करके जल्दी चला जाता है तैसे बहुत वेगकी गति करके व्याकुल होता है तब तिसके देहके प्राण पवन क्षोभको प्राप्त भये तो अपने समान चलनेके मार्गको त्याग उलटे चलते हैं जसे हाथीके प्रवेश करनेसे नदीके किनारेमें जल चढ आवते हैं ॥९७॥ प्राणके उलटे चलनेसे देहकी नाडी उलट जाती है जैसे राजाकी व्याकुलता करके लोकमें जातिके धर्म उलटे हो जाते हैं ॥९८॥ हे रामजी ! इस देहमें कोई नाडियां प्राण पवन करके पूर्ण होती हैं कोई खाली होती हैं प्राण बिगडनेमें नाडी बिगड जाती है, जैसे वर्षाऋतुमें नदियां बिगड जाती हैं॥९९॥हे रामजी ! प्राणका संचार बिगडनेसे अन्न विकार करके कम पचे है कबहूं नहीं पचे है कबहूं बहुत पचे है

इस प्रकार करके अन्न खाया हुआ देहमें दोष करने वास्ते होवे है ॥७००॥ हे रामजी ! इस प्रकार करके मानसी चितारूपी आधि-से व्याधि होवे है तिससे आधिके नाशसे व्याधिका नाश होवेहै और जैसे मंत्रों करके व्याधि नष्ट होवे है तिस क्रमको तुम सुनो ॥ १॥ हे रामजी ! जैसे हरडा भक्षण करनेसे स्वभावकरके मलको पचायकर के उदरसे निकास देती है तैसे प्राणायाम करके मात्रा लव पलघडी आदिक मंत्रोंके आवर्त्तन करनेसे व्याधि शरीरसे निकस जाती है ॥२ ॥ हे रामजी ! भावनाके वशसे और श्रद्धाकरके उत्तम क्रिया करके साधुजनोंकी सेवा करके मन निर्मल जानीया है जसे कसोटी में सुवर्ण शुद्ध जानीया है॥३॥ हे रामजी ! मन शुद्ध होनेसे देहमें आनंद बढता है जैसे पूर्ण चंद्रमा उदय होनेसे मंदिरमें निर्मलता शोभती है॥४॥हे रामजी ! मनकी शुद्धिसे मन्त्र क्रमकरके प्राणपवन यथायोग्य देहमें चलते हैं और भोजन किये सबही अन्नोंको पचाय देते हैं अन्न पचनेसे व्याधि नष्ट होती है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! यह शरीरादिक आत्मा नहीं है इनमें जो आत्मभावना है सोही हृदयमें जो अज्ञानका अंधकार है सो अज्ञानरूपी अंधकार है सो सूर्य-चन्द्र-अग्निके प्रकाशसे दूर करना दुःख करकेभी बनता है ॥६॥ हे राम-जी ! सत्तारूप आत्माकी दृढ भावना जो है सो मूढोंकोभी आनंदको प्राप्त भया करती है जो नहीं होवे तौभी तत्त्ववेत्ताकोभी मूढकी समान दुःखको प्राप्त करती है यह अपनी भावना विषको अमृत करती और अमृतको विष करती है॥७॥ हे रामजी ! यह देह सत्य भावना करके देखा होवे तो फिर देहको करता है और असत्य भावना करके देखा होवे तो आकाशकी समान शून्य हो जाता है ॥८॥ हे रामजी ! सो चूडालारानी अपने भर्त्ता राजा शिखिध्व-जको संपूर्ण यत्न करके बहुत करके आत्मज्ञानरूपी अमृत प्राप्त

होनेको बोधन करती भई तौभी राजा बोधको नहीं प्राप्त होता भया ॥९॥ सो राजा चूडालाको आत्मज्ञानकी युक्ति कहतीको ऐसे जानता भया यह मेरी रानी कामभोगकी कलामें चतुर है जो कहती है तिस ज्ञानमें मूढ है और बाला है स्त्रियोंको ज्ञान नहीं होता है ऐसे केवल जानता भया और आत्मज्ञानकरके सिद्ध भईको नहीं जानता भया ॥१०॥ हे रामजी ! सो चूडाला आप सिद्ध भई परंतु राजाको आत्मज्ञानकी सिद्धि नहीं भई देख करके मनमें विश्रांतिको नहीं प्राप्त होती भई और अधिकार विना आत्मज्ञानकी सिद्धिको राजाको नहीं दिखावती भई जैसे शूद्रको वेदोक्त यज्ञोंकी क्रिया नहीं दिखावते हैं ॥ ११ ॥

श्रीरामजीका प्रश्न वसिष्ठजी प्रति।

हे गुरुजी!सो चूडाला रानी आत्मज्ञानकी महा सिद्धि योगिनी है तिसके बोधन करनेसे भी राजा बोधको नहीं प्राप्त भाया तो और कोई और किसीने कैसे बोधन करना है ॥ १२ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं।

हे रामजी! उपदेशका यही क्रम है कि, जो व्यवस्थामात्र कहनी शास्त्र द्वारकरके आत्मज्ञानका मार्ग कहना और ज्ञान होनेका कारण शिष्यकी केवल शुद्ध बुद्धि है जो बुद्धि निर्मल नहीं होवे तो ज्ञान नहीं होता है ॥१३॥ हे रामजी ! विंध्याचल पर्वतकी छायामें कोई एक महाकृपण किराड था तिसकी एक कौडी मार्गमें गिर पडी सो किराड तिस कौडीको तीन दिन ढूँढता भया तिसको मार्गमें चिंतामणि हाथ लगी तिसकी संपूर्ण कृपणता जाती रही तैसेही गुरुमुखसे शास्त्रका उपदेश श्रवण करनेसे भावनासे एकाग्र होनेसे आत्मज्ञानभी प्राप्त होता है ॥१४॥ हे रामजी ! पदार्थ कुछ और ढूँढा है और सद्गुरुसेवासे और कृपासे कुछ पदार्थ प्राप्त होता है

जैसे किराड एक कौडीको ढूँढता था सो चिंतामणिको प्राप्त होता भया। हे रामजी ! सो राजा शिखिध्वज तप और तीर्थ दान करनेसे सुखको नहीं प्राप्त भया सो एक समयमें पास बैठी चूडाला रानीको वचन कहता भया ॥ १५ ॥

राजा शिखिध्वजका वचन रानी चूडाला प्रति।

हे प्रिये ! राज्य मैंने चिरकाल भोगा है और ऐश्वर्यकी संपदाभी चिरकाल भोगी है अब मैं वैराग्यकरके युक्त भया हूं वनको जाता हूं ॥१६॥ हे रानी!वनमें गयेसे मुनिजनोंको भोगसुखभी वश नहीं करते हैं और दुःखभी वश नहीं करते हैं आपदा और संपदाभी वश नहीं करती है देशभंग और पदार्थोंकी हानिका मोह और युद्धमें प्राणियोंका क्षय वनवास करनेवालेको दुःख नहीं करते हैं तिससे राज्यसे ही वनवास करनेवालेको अधिक सुखको मैं जानता हूं ॥१७॥ हे सुंदरी!जैसा एकांत वनमें रहनेवालेको सुख होता है, तैसा सुख स्वर्गमें चंद्रमंडलमें ब्रह्म–विष्णु-रुद्रलोकोंमें नहीं होता है॥१८॥ हे रानी ! जो तू मेरा प्रिय चाहती है तो मेरे वन जानेमें विघ्नको नहीं करने योग्य है, जिस कारणसे उत्तम कुलकी स्त्रियां भर्त्ताके मनोरथ करनेमें स्वप्नमेंभी विघ्न नहीं करती हैं॥ १९ ॥

रानी चूडाला राजा शिखिध्वज प्रति कहती है।

हे नाथ ! योग्यकालमें किया कार्य शोभता है अयोग्य कालमें किया नहीं शोभता है. जैसे वसंत ऋतुमें वृक्षोंको पुष्प शोभा करते हैं और शरदृतुमें फल शोभा करते हैं ॥२०॥ तिससे हे राजन् ! वृद्धावस्था करके जर्जर देहवाले पुरुषोंको वनवास शोभता है और तुम्हारे सरीखे युवा पुरुषोंको वनवास करना मेरेको योग्यता विना नहीं रुचता है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! अब तेरेको प्रजा पालनेका समय है वन जानेका समय नहीं है, अब तू राजा होकरके प्रजाका

पालन छोडकरके वनको जावेगा तो राजाविना राज्यमें पाप होनेसे सो पाप तेरेको प्राप्त होवेगा॥२२॥ हे राजन् ! जो राजा समयकी मर्य्यादाको उल्लंघन करके वर्त्तमान होवे तिसको प्रजा और मंत्री सेवक रोक लेते हैं अयोग्य कार्यको नहीं करने देते हैं॥ २३ ॥

शिखिध्वज राजाका वचन रानी चूडाला प्रति ।

हे रानी ! अब तेरा कहना हो रहा अब मेरे चाहे कार्यमें विघ्न मत कर, मेरेको अब दूर एकांत वनमें गयेको समझ ॥ २४ ॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीके प्रति कहते हैं ।

हे रामजी ! एक दिन अर्धरात्रिमें शय्यापर सो गई चूडालाको त्याग करके "मैं चौरोंको मारनेको जाता हूं" ऐसे पहरेवाले चाकरोंको कह करके "हे राजलक्ष्मी ! तेरेको मेरा नमस्कार है" इस प्रकार राजलक्ष्मीकोभी त्याग करके वनको चला जाता भया॥२५॥ हे रामजी ! तिससे उपरांत चूडाला रानी जाग्रत् भई राजाको नहीं देखती भई चाकरोंसेभी राजाकी खबर नहीं पाई तब योगसिद्धिकरके आकाशमें चढकरके एकाकी वनमें जाते राजाको ध्यान करके देखती भई आप नहीं गई ॥ २६॥ सो राजाभी अपना द्वादश राजमंडलको त्याग करके जहां आपको कोई नहीं जाने तहां जा करके एक कुटीमें निवास करता भया॥२७॥हे रामजी ! सो राजा तहां बैठ करके नियम करता भया दिनके प्रथम प्रहरमें संध्याजपको करता भया, दूसरेमें पुष्पोंका संग्रह करके देवताका पूजन करता भया,तीसरेमें फलमूलका भोजन करता भया, चौथे पहरमें सत्संग शास्त्रश्रवणको करता भया;सायंकालमें संध्या-जप करता भया इस प्रकारका सात्त्विक तप करते राजाको अष्टादशवर्ष काल होता भया, तिसके पीछे चूडाला राज्यको पालन करती भई ॥ २८ ॥ हे रामजी ! तिससे उपरांत

चूडाला रानी अपने पतिको निष्कामसात्त्विक तप करनेसे निर्विकार शुद्ध अंतःकरण भयेको ध्यान करके जानती भई ॥ २९ ॥ तिसको आत्मज्ञानका उपदेश करनेको तिसके पास जाती भई, मुनिपुत्रका स्वरूप धारण करके राजाके आश्रममें प्राप्त भई. राजा तिसको देखकरके आदर सत्कारको करता भया ॥ ३० ॥ फिर राजा नामगोत्रको पूछता भया. हे मुनिपुत्र ! तेरा नाम और जन्म गोत्र क्या है ? ऐसा सुन करके मुनिपुत्ररूपका अपना जन्म नाम गोत्रको कहती भई ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! एक समयमें सुमेरु पर्वतमें नारदजी जाते भये तहां देवताओंकी गंगामें रंभातिलोत्तमादि अप्सरा स्नान करती थीं तिन्होंके वस्त्ररहित देहोंको देखते नारदजीका वीर्यपात होता भया सो वीर्य नारदजीने स्फटिकके कमंडलुमें गुप्त किया तिससे मेरा जन्म भया है पिता नारद है और पितामह मेरा ब्रह्मा है तिन दोनोंने प्रीति करके वेदशास्त्रसहित संपूर्ण ज्ञान दिया और कुंभ मेरा नाम किया ॥३२॥ जो तुम पूछो सो नारदजी सदा ब्रह्मचारी हैं तिनका वीर्यपात कैसे भया सो श्रवण करो. परमात्माका स्वरूप सदा निर्मल है और सदा सत्य है लवमात्र करकेभी विस्मरण हो जावे तौभी तिसमें विकार सहित विश्व उदय भया भासता है जैसे वर्षाऋतुमें बादल उदय होते हैं ॥ ३३ ॥

शिखिध्वजका वचन—हे मुनिपुत्र ! आजसे महात्मा सज्जनोंकी गिनती आया हूं, अमृतके प्रवाहसरीखे वचन कहनेवाले तेरे साथ जो मेरा समागम भया है ॥३४॥ हे मुनिपुत्र ! जितने जगत्में राज्यलाभादिक उत्तम भाव हैं सो तैसे आनंदको नहीं करते हैं जैसे सज्जनोंका समागम आनंद करता है ॥३५॥ तिससे उपरांत चूडालाने मुनिपुत्रके स्वरूपकरके प्रश्न किया तू कौन है ? किसवास्ते तुम्हारा तप है ? ऐसा प्रश्न किये संते राजा शिखिध्वज कहता है ॥३६॥

हे मुनिपुत्र ! तू सर्वज्ञ है संपूर्ण तेरेको विदित है तोभी तेरी आज्ञासे मैं अपने वृत्तांतको कहता हूं. मैं राजा शिखिध्वज हूं मैं राज्यको त्याग करके यहां वनमें चला आया हूं हे तत्त्ववेत्ताजी ! तेरे दर्शनसे मैं अति प्रसन्न भया हूं जन्मसे आज कृतार्थ भया हूं ॥ ३७ ॥ हे तत्त्वज्ञ ! इस संसारमें बार बार सुख होते हैं और बार बार जन्ममरण होते हैं तिस कारणसे मैं बहुत संतापको प्राप्त भया हूं वनमें आया हूं ॥३८॥ हे ब्रह्मन् ! मैं चारों दिशाओंमें फिर करके भ्रमा हूं मेरेको चित्तकी विश्रांति नहीं प्राप्त होती है जैसे निर्धन पुरुष निधि प्राप्त भये विना चारों दिशा भ्रम करके विश्रांत होता है॥३९॥हे मुनिपुत्र ! चित्तकी विश्रांति वास्ते वनमें आ करके यह अखंड नियम क्रियाको मैं करता भी हूं तौ भी दुःख-समूहको प्राप्त होता हूं मेरेको अमृत भी विषरूप भया है ॥४०॥

चूडाला रानीका वचन—हे राजन्! मैं पहिले अपने पितामह ब्रह्माजीको पूछता भया—हे पितामह ! क्रिया और ज्ञानमें जो मुख्य कल्याणको करे तिस एकको निश्चय करके कहो ॥४१॥

ब्रह्माजीका वचन—हे पुत्र ! ज्ञान ही परम कल्याणका साधन है तिसकरके मोक्ष हो जावे है. कर्म तो वृथा है कर्म जो कहा है सो ज्ञानरहित पुरुषोंको कालक्षेप वास्ते कहा है ॥४२॥ हे पुत्र ! जिन्होंको ज्ञानदृष्टि नहीं भई है तिनको कर्मही आश्रय है जैसे जिस पुरुषके पास शालदुशाल नहीं है सो अपने कंबलवस्त्रको नहींत्यागता है उसको कंबलही दुशाला है तैसे जिसको ज्ञान नहीं भया है तिसको कर्मसे ही कल्याण है ॥४३॥ जिसकी सर्वत्र ब्रह्मभावनासे मूढता दूर भई है तिसको वासना उदय नहीं होती है जैसे चतुर पुरुषको मारवाड देशमें जल समुद्रकी भावना होती है ॥ ४४ ॥

चूडाला रानीका वचन—हे राजन् ! ज्ञानही परम कल्याणको देता है ऐसे महात्मा ब्रह्मादिक कहते हैं तू क्यों अज्ञानवान् बना है,कहता है यहां हमारा कमंडलु दंड है, यहां हमारा आसन है इस प्रकार करके अनर्थके विलासमें क्यों आसक्त भया है ॥४५॥ हे राजन् ! तू ऐसा विचार क्यौं नहीं करता है कि मैं कौन हूं यह संसार दुःख कैसे भया है और शान्त कैसे होवेगा ऐसे विचार विना मूढ कैसे रहा है ॥४६॥ यह बंध कैसे है और मोक्ष कैसे होता है ऐसे प्रश्नोंको करता तू तत्त्ववेत्ता पुरुषोंके चरणोंकी सेवा करता क्यों नहीं शोभाको लेता है ? ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! जिस युक्तिकरके मुक्ति होती है सो युक्ति समदृष्टिवाले संतजनोंकी सेवा करके और प्रश्न करने करके प्राप्त होती है ॥ ४८ ॥

राजा शिखिध्वज आनंदके आसू छोडके कहता है ।

हे मुनिपुत्र ! आज महा आनंद भया है तैंने मेरेको चिरकालसे बोधन किया है ऐसेही मेरेको अपने घरमें रानी चूडालाने कहा है परंतु मैंने स्त्रीजान करके तिसका कहा नहीं माना मैं मूर्खतासे तिसकोभी त्याग करके चला आया हूं ॥ ४९ ॥ हे मुनिपुत्र ! तू मेरा गुरु है, तू मेरा पिता है, तू मेरा मित्र है; हे सुन्दरमुखवाले ! मैं तेरा शिष्य हूं तेरे चरणोंको नमस्कार करता हूं कृपा करो जो कुछ उत्तम जानते जिसके जाननेमें फिर शोचना नहीं बने जिस करके मैं आनंदको प्राप्त होऊं तिस ब्रह्मका उपदेश मेरेको करो ॥ ५० ॥ हे मुनिपुत्र ! घटादिकोंके ज्ञान अनेक हैं आपसमें भिन्न हैं जो ज्ञानमें परम ज्ञान है और संसारसे तारनेवाला है सो कौनसा ज्ञान है तिसको कहो ॥ ५१ ॥

चूडालाका वचन—हे राजन्!जो तुमकोमेरा वचनमानना होवे तो मैं कहूं, जैसा ज्ञान मेरेको है तैसा मैं कहती हूं, और जैसे वृक्षके

ऊपर काक बोले है वृक्षको काकभाषाका कोई ज्ञान नहीं है तैसे मेरा कहना वृथा नहीं होवे तौ मैं कहूं ॥५२॥ हे राजन् ! आपने प्रश्न किया और कहनेवालेने उत्तर कहा; श्रवण करनेवाले वचनको नहीं श्रवण करे तो उस कहनेवालेकी उत्तम बानियां निष्फल होती हैं जैसे अंधेरेमें नेत्रोंकी दृष्टि निष्फल होती है ॥ ५३ ॥

शिखिध्वजका वचन–हे ब्रह्मन् ! जो तू कहेगा सो मैं वेदकी विधिवाक्यके समान विचार विनाही तुरंत ग्रहण करूंगा यह मेरा वचन सत्य है ॥ ५४ ॥

चूडालाका वचन–हे राजन् ! जैसे बाल पिताके वचनको निमित्त कारणको विचारने विनाही ग्रहण करता है तैसे तूभी मेरे वचनको ग्रहण कर ॥५५॥ श्रवण करने उपरांत बुद्धिसे शुभ जान करके भावना कर जैसे संगीतके श्रवणको त्याग करके हितकारी मित्रके वचनको श्रवण करते हैं तैसे और प्रसंग वार्त्ता श्रवणको त्याग करके सुन ॥५६॥ हे राजन् ! मैं तेरे प्रति कथाके क्रम करके वचनको कहता हूं कैसा है मेरा चरित्र जैसे मैंने इस करके बोध पाया है और उदय होती जो बुद्धि है तिसको विचार करके चिरकालके दृढ बोधको करनेवाला है और संसारसमुद्रसे तुरंत तारनेवाला है महाबोधवाली बुद्धिको आनंद करनेवाला है ॥५७॥ हे राजन् ! कोई एक पुरुष द्रव्य उपार्जनमें महाचतुर था और आत्मज्ञानसे रहित था तिस पुरुषको चिंतामणि सिद्ध करनेके वास्ते प्रवृत्त भये संते किसी सिद्धने चिंतामणि देकर कहा भाई यह चिंतामणि प्राणांत कष्ट करके महायत्न करके सिद्ध होनेवाली है सो पुरुष इसको ले करके विश्वास नहीं करता भया क्या जानिये सिताबी मणि सिद्ध होयगी या नहीं ऐसे विचारनेसे वह मणि तिसके हाथसे उड गई फिर तिसवास्ते महायत्न करने लगा तब लोकोंने हँस करके काचकी मणि दई कहा यह चिंता-

मणि है सो तिसको लेकरके अपने घरते संपूर्ण द्रव्यादिक लुटाइ देता भया और झूंठी मणि पाकरके अपने द्रव्यके नाशको प्राप्त भया तब तिसको महा आपदा प्राप्त भई॥५८॥ हे राजन्! जौनसी आपदा अपनी मूर्खतासे होती है तिसके तुल्य जरामरणादिक दुःख नहीं होते हैं तिससे संपूर्ण आपदाकी शिरोमणी अपनी मूर्खता सबके शिरपर चढी है जैसे संपूर्ण मनुष्योंकेशिरपर केशोंका भार सदाही चढारहता है ॥५९॥ हे राजन्! यह एक और वृत्तांत मेरा कहा सुन कैसा है महारमणीक है बुद्धिको उत्तम बोध करनेवाला है और मैंने अपने वृत्तांतके समान अनुभव किया है ॥६०॥ एक विंध्याचलकी झाडीमें महागजराज था तिसके पकडनेके वास्ते एक महावत यत्न करता भया तालवृक्षके ऊपर चढ करके संखलियोंके जालको पसारत भया हाथीने संखलियां तोड़ दीनी वज्रके समान दातोंकरके तालवृक्षभी तोड दिया फिर महावतकोभी मारने लगा फिर सो गजराज दयाकरके महावतको अपनेशिरपर चढाकरके जहां महावतकी इच्छा लेजानेकी थी तहां गया तिस महावतने बडे टोयेमें गेर करके महादुःख दिये सो हाथी अपनी मूढता करके आपही महादुःखको भोगता भया६१॥ तिससे हे राजन्! जो संपूर्ण शास्त्रार्थमें कुशल पुरुष था, धनके उपार्जनको करता था सो तू है.और चिंतामणि क्या है जो तैने सर्वत्याग किया है, सो कैसा है संपूर्ण दुःखोंका अंत करनेवाला है अब तू शुद्ध बुद्धिवाला भया है ॥६२॥ हे राजन्! जो पुरुष शुद्ध सर्व त्याग करके सर्व सार मोक्षको सिद्ध नहीं करता है तिसको सर्व त्याग करके और चिंतामणि करके क्या प्राप्त होवेगा ॥६३॥ हे राजन्! तैने पुत्र, स्त्री,धन, बांधव युक्त राज्यको त्यागा है तेरेको सर्वत्याग भया है तिससे केवल अहंकार शेष रहा है. अब तू तिस

अहंमतिको भी त्याग दे ॥ ६४ ॥ जो कोई सुख करके सिद्ध होने-
वाले और प्रमाणसे रहित ऐसे अखंड आत्मानंदको त्याग कर दुःख
करके साधने योग्य तुच्छ सुखको साधने चाहता है सो आत्मघाती
है और महादुष्ट कहा है ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! तू महादुःखों करके
भरे हुए ऐसे राज्यबंधनसे मुक्त भया है, अब अपनी अहंमति करके
वनवासरूपी दृढ बंधन करके बद्ध भया है ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! अब
तेरेको शीतवातादि सहनेकी दूनी चिंता भई है तिससे जो ज्ञानरहित
पुरुष है तिन्होंको संसारदुःखोंके बंधनसेभी वनवास महादुःखको देने-
वाला है ॥६७॥ हे राजन् ! तू वनवास करके अपनेको ऐसा जानता
है कि मेरेको चिंतामणि प्राप्त भया है मेरे जाननेमें तेरेको एक स्फटि-
कका खंडभी नहीं प्राप्त भया है ॥६८॥ हे राजन् ! जो विंध्याचलकी
झाडीमें हाथी है सो संसारमें तू है, तिसको दो दांत हैं सो तो ज्ञान-
वैराग्य है जो हाथीको पकडने चाहता महावत है सो तो अज्ञान
है, जो महावतने तिस हाथीके ऊपर आरोहण किया है सो अज्ञानने
तेरेको आक्रांत कर लिया है; सो बड़े टोयेमें गेर करके हाथीको
पीडा दी है सोही अज्ञान करके संसारदुःख तेरे को भये
हैं सो हाथी महाबलवान् है और निर्बल महावतने खैंच करके
हाथीको दुःखसेभी दुःखकी दशाको प्राप्त किया है सो तेरेको मूर्ख-
त्वने महादुःखमें प्राप्त किया है जो महावतने हाथीको वज्र बरोबर
दृढ संखलियों करके बांधा है सो तेरेको ही अज्ञानने आशापाश
करके बांधा है ॥ ६९ ॥ हे राजन् ! आशा जो है सो लोहकी
संखलीसेभी बडी दृढ है लोहेकी संखली किसी काल करके टूट
जावे है आशारूपी संखली तृष्णा करके दृढ बांधती है ॥७०॥ हे
राजन् ! जो हाथी संखली तोड देता भया सो तैंने भोगोंका
त्यागरूप निष्कंटक राज्य बंधनको त्यागा है जो सुख करके
हाथीने संखलियां तोडी हैं सो तैंने भोगोंकी आशाका त्याग किया

करनेमें साधु लोग निंदा करते हैं तिससे तेरेको मैं नहीं चाहताहूं ॥५२॥परंतु मित्रताकरके वनोंमें पहिलेके समान रागद्वेषरहित होइ करके इकट्ठे मिलके आनंदसे रमण करेंगे॥५३॥ ऐसा विचार करते हुए तब चूडाला मनमें विचार करती भई अहो! आज बहुत आनंद भया है अब यह राजा समदृष्टिको प्राप्त भया और ज्ञानवान् भया रागद्वेषसे रहित भया है और क्रोधसेभी रहित भया है और जीवन्मुक्त भया है ॥ ५४ ॥ अब इस राजाको राज्यभोग भी अपने वशमें नहीं करेंगे महासिद्धि भी वश नहीं करेगी सुख और दुःख, आपदा और संपदाभी अपने वशमें नहीं करेगी ॥ ५५ ॥

इससे उपरांत चूडाला अपने शुद्धस्वरूपको दिखाकरके कहती भई ।

हे राजन्! अपने पहिले वृत्तांतको ध्यान करके देख तब राजा ध्यान करके अपने पहिले वृत्तांतको देखता भया ॥ ५६ ॥ राजा चूडालाके प्रसंग करके तत्त्वज्ञ भया तिसको तत्त्वज्ञानसंयुक्त शुद्धस्वरूप जान करके आनंद करके आलिंगन करता भया ॥ ५७ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी ! सो राजा आनन्दके अश्रुजल छोड करके स्नेहको प्रकट करता हुआ और समागमकी इच्छाकोभी प्रगट करता हुआ चूडालाके साथ चिरकालतक आलिंगन करताभया जैसे नकुल नकुलीकेसाथ आलिंगन करता है॥५८॥ हे रामजी ! तिन राजारानीको आलिंगनमें हर्ष करके जो आनन्दका भाव होता भया सो वासुकीकी १००० हजार जिह्वा करके भी कहा नहीं जाता है ॥ ५९ ॥

राजा कहता है-हे कल्याणि! अरुन्धती, इंद्राणी, पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती यह सबही तेरे शीलके, गुण संपदाके,

सुंदरताके तुल्य यत्न करकेभी नहीं होती हैं ॥ ६० ॥ जसे भर्त्ताको उत्तम कुलकी स्त्रियां प्रेम करके तारनेको समर्थ होती हैं तैसे शास्त्रोंके अर्थ और गुरुसेवा और मंत्र देवतादिक तारनेको नहीं समर्थ होते हैं ॥ ६१ ॥ हे कल्याणि ! तैंने जो मेरे ऊपर उपकार किया है तिसका तेरे प्रति उपकारके उत्तररूपी उपकार करनेको मैं कैसे समर्थ होऊं तू तो इच्छासे रहित और संसारसमुद्रको पार तर गई है ॥ ६२ ॥

चूडाला कहती है—हे महाराज ! तुम फलरहित शुष्क कर्मजालमें व्याकुल थे सो तुमको देख करके तुम्हारे वास्ते मैं वारंवार दुःखी होती भई ॥ ६३ ॥ हे महाराज ! मैं तुमको बोध करनेके स्वरूप करके अपनेको आत्मज्ञान दृढ करने करके अपना अर्थ सिद्ध किया है तिससे तुम क्यों इतनी मेरी स्तुति और गौरवको करते हो ॥ ६४ ॥ हे प्राणनाथ ! हे महाबुद्धे ! इस प्रकार मैंने तुम्हारा आत्मज्ञान दृढ किया है अब कहो तुमको क्या रुचता है ॥ ६५ ॥

राजा कहता है—हे प्रिये ! अब मैं विधिको नहीं जानता हूं और निषेधको भी नहीं जानता हूं तू जो कहेगी तिसको मैं जान लेऊंगा ॥ ६६ ॥

चूडाला कहती है—हे राजन् ! हम पृथिवीके आदि-अंत-मध्यमें राजे हैं एक मोहको त्याग करके फिर राजा होवेंगे॥ ६७ ॥ हे राजन् ! तू तिस नगरमें अपने आसनके ऊपर स्थित होकरके राज्य करेगा और संपूर्ण स्त्रियांमें शिरोमणि मैंही तेरी रानी होऊंगी॥ ६८ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—सो राजा ऐसा चूडालाका वचन सुनके हँसकरके मधुर वचनको कहता भया ॥ ६९ ॥

राजा कहता है—हे विशालनेत्रे ! जो तेरेको भोगोंकी इच्छा है तो योगसिद्धि कर स्वर्गमें भोगोंकी संपदा हमारे अधीन नहीं है क्या हम फिर राज्यको भोगनेसे स्वर्गके क्यों निवास करेंगे ? ॥ ७० ॥

कुंभ नामा मुनिपुत्रका रूप करके चूडाला कहती है ।

हे राजन् शिखिध्वज ! तू कहता है मैंने सर्व त्याग किया है ऐसे मत कहो तैंने कुछ नहीं त्यागा है जो त्यागना है सो नहीं त्यागा है सर्व त्यागके आनंदके स्वरूपको मत दिखावे ॥ ८९ ॥

राजा कहता है–हे मुनिपुत्र ! यह देह इंद्रियरूपी सर्वसमूहका निवास है और रक्तमांस अस्थियोंका स्वरूप बना है सर्व त्यागके यह शेष रहा है तिससे उठकर निःशंक होकरके बडे गंभीर टोयेमें गेर करके सर्व त्यागी होता हूं ॥ ९० ॥

वसिष्ठजी कहते हैं–हे रामजी ! राजा ऐसा कह उठ करके बडे गर्तमें पडने वास्ते खडा भया वेगसे जब पर्वतसे गिरनेलगा९१॥

तब कुंभक वचन कहता भया–हे राजन् ! देहने तेरा अपराध नहीं किया है इसको अपराध विना क्यों गेरता है तू अज्ञानी है जैसे बडा बैल निरपराध बच्चेको मारता है देहत्यागसे सर्वत्याग नहीं बनता है ॥ ९२ ॥ जिसने यह देह क्षोभको प्राप्त कर दिया जैसे मतवारे हाथीने वृक्ष कंपित कर दिया है तिस पापी मनको जो तू त्यागेगा तो महात्यागी बनेगा तिसके त्यागनेमें देहादिकोंका त्याग आप ही हो जावेगा जिसको नहीं त्यागनेसे देह फिर नष्ट और नये उत्पन्न होवेंगे ॥ ९३ ॥

राजाका प्रश्न–हे कुंभक ! यह किस करके चलायमान है और जन्म कर्मोंका कौन बीज है ? तिसको तुम कहो ॥९४॥जो सब दुःखोंका मूल है जो सर्व प्रकार करके सर्व बंधरूप बना है जिसको सर्व संसारके कारणरूप भये संते सर्व त्याग नहीं बनता है सोही सर्वस्व है तिसके त्यागमें सर्व त्याग करा जाता है तिसको मेरे प्रति कहो ॥९५॥ सर्व क्या है ? सर्वगत क्या है ? सर्व सर्वदा

प्रकार करके त्यागने योग्य क्या है? सो सर्व करके क्या कह्या है? हे तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ! तुम मेरे प्रति तिसको कहो ॥९६॥

कुंभक कहता है—हे राजन्! सो सर्वगतरूप है जीव प्राणादि नाम करके प्रसिद्ध है सो न जड है और न अजड है सो चित्त-स्वरूप करके कहा है ॥९७॥ हे राजन्! सबका बीज मन है जैसे वृक्षका वृक्षही बीज होता है सबके बीज मनको त्यागनेमें सर्वत्याग होता है ॥९८॥ हे राजन्! चित्तके त्यागनेमें एक वार संपूर्ण द्वैतका त्याग होता है तो बाकी शांतरूप एक निर्मल चैतन्य रहता है॥९९॥ हे राजन्! सर्व त्याग करना परमानंद है तिस विना संपूर्ण दारुण दुःख है ऐसा वचन अंगीकार करके जो चाहे सो कर ॥८००॥ हे महाराज! सर्व त्याग संपूर्ण संपदाका आश्रय है यही लोकमें प्रगट है जो पुरुष कुछ नहीं मांगे है तिसको लोक सर्वस्व देते हैं ॥१॥ हे महाराज! चित्तका स्वरूप वासनाको जानो चित्त शब्द वासनाका नाम भेद कहा है तिसका त्यागना अत्यंत सुखाला है नेत्रके मीचनेसेभी सुखाला है राज्यसे भी अधिक आनंद करता है पुष्प-सेभी सुंदर है ॥२॥ हे राजन्! मूर्खको तो मनका त्याग महा असाध्य है जैसे निर्धन पुरुषको चक्रवर्ती राज्य असाध्य है और तृणको सुमेरु बनना असाध्य है ॥३॥ हे राजन्! जो पुरुष मनको कहीं भी आसक्त नहीं करता है अनेक प्रकारके कुतर्कके वादको शांत करके स्थित रहा है सो पुरुष देह करके युक्त है तोभी तिसकी चित्तरूपी लता छिन्न हो जाती है ॥४॥ हे राजन्! मैं कौन हूं मेरा क्या स्वरूप है इस प्रकार करके अपने स्वरूपका जो विचार करनेमें चित्तरूपी दुष्ट वृक्षके दग्ध करनेको अग्निरूप है ॥ ५ ॥

राजाका वचन—हे कुंभक! चित्तरूपी वृक्षका अहंभाव मूल

मैंने जाना है तिसको मैं त्याग करना नहीं जानता हूं जैसे जैसे त्याग करता हूं तैसे तैसे फिर आ प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

कुंभका वचन—हे राजन्! कारणसे कार्य होता है और अहंभावसे संसारका अंकुर होता है उस कारणको ढूंढ करके मेरे प्रति कहो ॥ ७ ॥

राजाका वचन—हे मुने! अहंभाव महादोष है तिसके कारणको मैं जानता हूं कि इसका संवेदनही कारण है परंतु जैसे सो अहंभाव शांत होवे तिस उपायको मेरे प्रति कहो ॥ ८ ॥

कुंभका वचन—हे राजन्! तुम कारणको जानते हो तो अहंभावका स्थान कहो तब मैं कारण और नहीं कारणको सब कहता हूं ॥ ९ ॥

राजाका वचन—चेतने योग्य और चेतन करनेका स्वरूप जानने योग्य और जाननेका स्वरूप तिन्होंका कारण पदार्थसत्ता है तिसमें देहादिकका कारण है देहादिकों करके अहंभावका संवेदन है ॥ १० ॥

कुंभका वचन—हे राजन्! अहंभावके संवेदनका कारण देहादिक पदार्थोंकी सत्ता है तो देहादिक पदार्थोंकी वस्तु सत्ताको असत्य करके फिर तेरे अहंभावका संवेदन किसमें स्थित है॥ ११॥

राजाका वचन—हे मुने! जिसका स्वरूप और क्रियादि कल्पना प्रत्यक्ष दृष्ट होती है सो देहादिक असत्यरूप कैसे है जैसे सूर्यादिकोंका प्रकाश प्रत्यक्ष है तिसको अंधकार कहना नहीं बनता है जिसके हस्त पादादिक अंग प्रत्यक्ष हैं क्रियाके फलके विलासवाले हैं सदा जिसका अनुभव होता है सो देह सत्यरूप कैसे नहीं है?॥ १२॥

कुंभका वचन—हे राजन्! जिस कार्यका कारण नहीं है सो कार्य यहां कोई नहीं है तिसमें अहंभावका संवेदन भ्रममात्र है॥१३॥

राजाका वचन—हे मुनीश्वर! यह शरीर हस्त पादादि संयुक्त नित्य ही प्रत्यक्ष लक्ष होता है, पिता कारण है तिस देहको कारणरहित कैसे कहते हो ? ॥ १४ ॥

कुंभका वचन—हे राजन्! कारणके अभावसे कार्य नहीं रहता है तो तुम्हारे देहका कारण तुम्हारा पिता नहीं रहा तो शरीर तुम्हारा असत्य क्यों नहीं भया यह तुम कहो ॥ १५ ॥

राजाका वचन—हे मुनीश्वर ! पिता और पितामह और पुत्रादिक तिन्होंका कारण सृष्टि करनेवाला ब्रह्मा सर्व शरीरोंका कारण क्यों नहीं है ? ॥ १६ ॥

कुंभका वचन—हे राजन् ! जो तुमने सर्व शरीरोंका कारण ब्रह्मा कहा है सोभी अब प्रत्यक्ष नहीं है, तिसके नहीं होनेसे शरीरका अभाव क्यों नहीं भया सो तुम कहो ॥१७॥ हे राजन् ! कारण जो होता है सो कार्यका बीज होता है सो कार्यके साथ रहता है,जैसे घटादिकोंके मृत्तिकादिक कारण हैं सो तिनके साथही हैं,जो शरीरका कारण है सो अनित्य है तिसके कार्य शरीरादिक अनित्य हैं तिस ब्रह्माकाभी कथनमात्र है. शरीरके समान अनित्य शरीरका कारण और है सो कौन है ? अविद्या ज्ञान करके निवृत्त होती है तिसके निवृत्त होनेसे देहादि बंध सब निवृत्त होते हैं ॥ १८ ॥

राजाका वचन—हे भगवन् ! मैं अब बोधको प्राप्त भया हूं तैंने युक्ति करके युक्त उत्तम वचन कहा है कारणके अभावसे कर्त्ता भी नहीं है यह सब ब्रह्म ही है ॥ १९ ॥ कर्त्ताके अभावसे जगत् नहीं है सो जगत् किस करके भासता है और पदार्थोंको देखनेवाला

कौन है इस कारणसे चित्तादिक भी इसके बीज नहीं हैं और अहं-तादिकभी कोई नहीं है ॥२०॥ ऐसे होनेसे मैं शुद्ध भया हूं और बोधको प्राप्त भया हूं और शिवरूप भया हूं तिससे मेरे आत्माको मेरी नमस्कार है मेरेसे परे और कुछभी नहीं है ॥ २१ ॥ इस प्रकार करके वस्तु पदार्थ जाननेसे यह सब असत्य ही भासता है आदि अंतमें मैं हूं आकाशके समान शांत भया हूं ॥ २२ ॥ जग-त्के पदार्थोंकी विभाग दृष्टि और देश, काल, दिशा और संपूर्ण कलाके समूह यह सब ही चिरकाल करके शांत हो जाते हैं. एक शांतरूप ब्रह्मही अविनाशी है ॥ २३ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी ! सो राजा शिखिध्वज इस प्रकार करके विश्रांतिको प्राप्त होता भया क्षणमात्र शांतमन होता भया जैसे पवनसे रहित दीपक अचल प्रकाशमान होता है ॥२४॥

कुंभका वचन—हे राजन् ! अब तू अज्ञानरूपी निद्रासे जागृत भया है. शांत शिवरूप स्थिर भया है. तेरेको जगत्के अस्त होनेसे और नहीं अस्त होनेसे कोई कार्य नहीं है ॥ २५ ॥ अब तेरेको आत्मस्वरूपका प्रकाश भया है और अनिष्टपदार्थ सबही नष्ट भये हैं चित्तकी संकल्प रचनासे मुक्त भया है. अब तू जीवन्मुक्त भया है ॥ २६ ॥

राजाका वचन—हे मुनीश्वर ! मेरा मोह नष्ट भया है और आत्मस्वरूपकी स्मृति भई है मैं तेरे प्रसादसे संदेहरहित भया हूं ॥ २७ ॥

कुंभका वचन—हे राजन् ! जहां जगत्ही नहीं है तहां अहं और त्वं ऐसा भावनावाला संसार कहां है कहांसे उदय भया है और कैसा है और किस प्रकार होता है ? ॥२८॥ यह संसार नाम करके सबही स्थितिरहित है केवल चितवना मात्र रूप है जैसे आ-

काश नीलवर्णवाला भ्रम करके भासता है॥२९॥ मैं राजा हूं ऐसा जो संकल्प है सो अखंड बंधनके वास्ते है मैं कोई नहीं ऐसा संकल्प निर्मल मोक्षके वास्ते है ॥३०॥ यह विचार केवल नाममात्र करके कह्या है और केवल असत्यरूप है सो सत्यरूप कैसे होवे तिससे यह भ्रम मात्र है ॥३१॥ जो पुरुष दोनों हाथ उठा करके आपही कहे मैं शूद्र हूं सो ब्राह्मण कैसे होवे है तिससे अपनी संकल्पकी कल्पना करके अपनेको बंध माने है सो संकल्प त्यागनेसे निवृत्त होता है ॥३२॥ हे राजन् ! इच्छा और नहीं इच्छा यह दोनों बंध मोक्षकी शक्ति हैं इन करके बंध मोक्ष होते हैं जैसे चंद्रमा अपनी किरणोंके प्रकाश विना दृष्ट नहीं होता है ॥३३॥ तिससे हे मित्र ! तेरा कुछ नष्ट नहीं होता है न कुछ बढता है तू आकाश समान निर्मलरूप है और केवल अनंतरूप है ॥३४॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी ! सो शिखिध्वज राजा ऐसा कुंभके वचनको सत्य जान करके अपनेमें आत्मतत्त्वकी भावना करता भया आपही तिसमें क्षणमात्र गमन करता भया ॥३५॥ क्षणमात्र निश्चलमन होय करके नेत्रोंको मूंद लेता भया वाणीको शांत करके मौन धारण करता भया जैसे शिलामें प्रत्यक्ष लिखी भई अंग प्रत्यंगवाली पुतली निश्चल होती है तैसे निश्चल होता भया ॥ ३६ ॥ हे रामजी ! तिससे उपरांत क्षणमात्रमें ध्यानसे जाग्रत भये राजाको कुंभ कहता भया हे राजन् ! मैं तेरेसे प्रश्न करता हूं तू इस शुद्ध और विशाल और प्रकाशमान ऐसे आत्मपदमें विश्रांत भया है कि नहीं ॥३७॥

राजा कहता है-हे भगवन् ! तेरे प्रसादसे मैंने महती ऐश्वर्य भूमिका रूपी महापदवी देखी है कैसी है सबके ऊपर विराजमान है ॥३८॥ हे भगवन् ! जिन्होंने जानने योग्य तत्त्ववस्तु जानी है

ऐसे महात्मा संतजन तिन्होंका सत्संग महा आनंदको करनेवाला है अमृतरूप है और प्रमाणरहित है और मोक्षफलको देनेवाला है सो कहांसे मिलता है महा दुर्लभ है सो अब मेरेको भया है॥३९॥ जो मैंने जन्मसे निश्चय करके नाम करकेभी नहीं पाया सो अमृत आज तेरे समागमसे आपही पाया है ॥४०॥ अब मैं पूछता हूं यह ज्ञानरूपी अमृत मैंने जैसा अब पाया है तैसा पहिले क्यों नहीं पाया जैसा आत्मस्वरूपका आनंद अब स्वादमें आया तैसा पहिले क्यों नहीं आस्वादनमें आया ॥४१॥

कुंभक कहता है-हे राजन्! जब मन उपशमको प्राप्त होवे और भोगोंकी इच्छाको त्यागे संपूर्ण इंद्रियोंका वासनारूपी मल नष्ट हो जावे तब सद्गुरोंके उपदेशकी उक्तियां चित्तमें स्थित होती हैं जैसे मलरहित निर्मल श्वेतवस्त्रमें केसरके जलके रंगवाली बूंद शोभे हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! आज तू नष्टदोष भया है आजही ज्ञानकी कथाका श्रोता भया है आजही उपदेशके योग्य भया है आजही मैंने बोधको प्राप्त किया है ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! अब तेरे शुभ और अशुभ कर्मोंका संपूर्ण क्षय भया है तिससेही सत्संगके संग करके ज्ञानके उपदेशकी सिद्धि तेरेको भई है ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! मुझे आज पर्वतमें जाकरके इंद्रकी सभामें आये हुए पिताजी नारदजीको देखना है मैं तहां जाता हूं इतना कह करके कुंभ चला गया फिर तीन दिन उपरांत आया और सिंहनाद करके समाधिसे उठे हुए राजाके पास अंदर प्रवेश करके राजाको उठाय करके राजाको साथ लेकरके और वनको दोनों चले गये ॥४५॥ सो राजा और कुंभ दोनों मित्र वनमें विचरण करते भये किसी कालमें विभूति लगा करके दिगंबर रहते भये कबही चंदनका लेपन करते हैं कबही नग्न हो रहते हैं कबही दिव्यवस्त्रोंको धारे हैं

कबही अनेक रंगके वस्त्र धारे हैं कबही भूर्जपत्र धारते हैं कबही पुष्पमालाको धारते हैं ॥ ४६ ॥

इससे उपरांत कुम्भ राजाको कहता भया।

हे राजन्! मेरेको दुर्वासा मुनिके शापसे स्त्रीभाव होना है ऐसा कह करके स्त्रीरूप धारण करके राजाके साथ विवाह करके फिर किसी समयमें राजाको इन्द्ररूप धारण कराके कहा-हे राजन्! स्वर्गको चल ॥ ४७ ॥ तब राजा कहता भया हे देवराज! मैं स्वर्गके संपूर्ण समाचारको जानता हूं मेरेको सर्वत्र स्वर्ग है यह स्वर्गादिक भोग अनित्य हैं मैं आत्मविचारके आनन्दकरके सर्वत्र स्वर्गसे भी अधिक आनंदको भोगता हूं मेरा मन भोगवांछासे रहित भया है तिससे मैं सर्वत्र आनन्दयुक्त रहता हूं ॥ ४८ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी! इससे उपरांत चूडाला रानी सर्व शृंगारयुक्त अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दिखावती भई वह कैसा रूप दिखावती भई अपनी मायाके संकलपसे सुन्दर पुरुषको रचती भई उस पुरुषने व्यभिचार करके भोगी जब राजाने देखी तो भयभीत हो करके राजाको कहती भई ॥४९॥ हे राजन्! तैंने वनमें आनेसे मेरा त्याग किया है तिससे मैं यौवनमें कामरूपी अग्निको नहीं सह सकी तिससे मैंने यह व्यभिचार किया है ॥ ५० ॥ हे राजन्! मैं अबला हूं धैर्य विचारसे रहित हूं स्त्री हूं स्त्रियां भर्त्ताका वियोग चिरकाल सह नहीं सकती हैं, बालकके समान मूढबुद्धि हूं तिससे मैंने व्यभिचाररूपी अपराध किया है इसको तू क्षमा करने योग्य है तू मेरा नाथ है मैं तेरी स्त्री हूं महात्मा लोगोंमें महत्त्वका सार क्षमा होती है ॥ ५१ ॥

राजाका वचन-हे बाले! मेरेमें क्रोध नहीं है जैसे आकाशमें वृक्ष नहीं होता है परंतु व्यभिचार करनेवाली स्त्रीका अंगीकार

करनेमें साधु लोग निंदा करते हैं तिससे तेरेको मैं नहीं चाहताहूं ॥५२॥परंतु मित्रताकरके वनोंमें पहिलेके समान रागद्वेषरहित होइ करके इकट्ठे मिलके आनंदसे रमण करेंगे॥५३॥ ऐसा विचार करते हुए तब चूडाला मनमें विचार करती भई अहो! आज बहुत आनंद भया है अब यह राजा समदृष्टिको प्राप्त भया और ज्ञानवान् भया रागद्वेषसे रहित भया है और क्रोधसेभी रहित भया है और जीवन्मुक्त भया है ॥ ५४ ॥ अब इस राजाको राज्यभोग भी अपने वशमें नहीं करेंगे महासिद्धि भी वश नहीं करेगी सुख और दुःख, आपदा और संपदाभी अपने वशमें नहीं करेगी ॥ ५५ ॥

इससे उपरांत चूडाला अपने शुद्धस्वरूपको दिखाकरके कहती भई ।

हे राजन्!अपने पहिले वृत्तांतको ध्यान करके देख तब राजा ध्यान करके अपने पहिले वृत्तांतको देखता भया ॥ ५६ ॥ राजा चूडालाके प्रसंग करके तत्त्वज्ञ भया तिसको तत्त्वज्ञानसंयुक्त शुद्धस्वरूप जान करके आनंद करके आलिंगन करता भया ॥ ५७ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी ! सो राजा आनन्दके अश्रुजल छोड करके स्नेहको प्रकट करता हुआ और समागमकी इच्छाकोभी प्रगट करता हुआ चूडालाके साथ चिरकालतक आलिंगन करताभया जैसे नकुल नकुलीकेसाथ आलिंगन करता है॥५८॥ हे रामजी ! तिन राजारानीको आलिंगनमें हर्ष करके जो आनन्दका भाव होता भया सो वासुकीकी १००० हजार जिह्वा करके भी कहा नहीं जाता है ॥ ५९ ॥

राजा कहता है-हे कल्याणि ! अरुन्धती, इंद्राणी, पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती यह सबही तेरे शीलके, गुण संपदाके,

सुंदरताके तुल्य यत्न करकेभी नहीं होती हैं ॥ ६० ॥ जैसे भर्त्ताको उत्तम कुलकी स्त्रियां प्रेम करके तारनेको समर्थ होती हैं तैसे शास्त्रोंके अर्थ और गुरुसेवा और मंत्र देवतादिक तारनेको नहीं समर्थ होते हैं ॥६१॥ हे कल्याणि ! तैंने जो मेरे ऊपर उपकार किया है तिसका तेरे प्रति उपकारके उत्तररूपी उपकार करनेको मैं कैसे समर्थ होऊं तू तो इच्छासे रहित और संसारसमुद्रको पार तर गई है ॥ ६२ ॥

चूडाला कहती है–हे महाराज ! तुम फलरहित शुष्क कर्मजालमें व्याकुल थे सो तुमको देख करके तुम्हारे वास्ते मैं वारं-वार दुःखी होती भई ॥ ६३ ॥ हे महाराज ! मैं तुमको बोध करनेके स्वरूप करके अपनेको आत्मज्ञान दृढ करने करके अपना अर्थ सिद्ध किया है तिससे तुम क्यों इतनी मेरी स्तुति और गौरवको करते हो ॥ ६४ ॥ हे प्राणनाथ ! हे महाबुद्धे ! इस प्रकार मैंने तुम्हारा आत्मज्ञान दृढ किया है अब कहो तुमको क्या रुचता है ॥६५॥

राजा कहता है–हे प्रिये ! अब मैं विधिको नहीं जानता हूं और निषेधको भी नहीं जानता हूं तू जो कहेगी तिसको मैं जान लेऊंगा ॥ ६६ ॥

चूडाला कहती है–हे राजन् ! हम पृथिवीके आदि-अंत-मध्यमें राजे हैं एक मोहको त्याग करके फिर राजा होवेंगे॥६७॥ हे राजन् ! तू तिस नगरमें अपने आसनके ऊपर स्थित होकरके राज्य करेगा और संपूर्ण स्त्रियोंमें शिरोमणि मैंही तेरी रानी होऊंगी॥६८॥

वसिष्ठजी कहते हैं–सो राजा ऐसा चूडालाका वचन सुनके हँसकरके मधुर वचनको कहता भया ॥ ६९ ॥

राजा कहता है–हे विशालनेत्र ! जो तेरेको भोगोंकी इच्छा है तो योगसिद्धि कर स्वर्गमें भोगोंकी संपदा हमारे अधीन नहीं है क्या हम फिर राज्यको भोगनेसे स्वर्गके क्यों निवास करेंगे ? ॥ ७० ॥

चूडाला कहती है–हे राजन् ! अब राज्यभोगोंकी इच्छा नहीं है और संपदामेंभी वाञ्छा नहीं है जो कालके स्वभावकरके आ जावे तिसकरकेही मनकी स्थिति करना चाहती हूं ॥ ७१ ॥

राजा कहता है–हे विशालनयने ! तैंने समानबुद्धि करके योग्य वचन कहा है हमको अब राज्य करके क्या अर्थ है और घर त्यागनेमें भी क्या अर्थ है ? ॥ ७२ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं–हे रामजी ! तिससे उपरांत राजा और रानी अपने संकल्प करके कल्पना करके सात समुद्रोंके जलकरके पूर्ण रत्नकलशोंकरके आपसमें अभिषेक राज्यतिलकको धारण करके मतवारे महागजके ऊपर चढ करके बडी सेना साथ लेकरके अपनी नगरीको प्राप्त होकरके सात दिन नगरमें महाउत्सव करते भये॥७३॥तिससे उपरांत दश हजार वर्ष राज्य करके राजा शिखिध्वज चूडाला रानीके साथ देह धारणसे विरक्त होता भया ॥ ७४ ॥ सो राजा शिखिध्वज चूडाला रानी संयुक्त भयसे और चिंतासे रहित भया. अभिमान और रागद्वेषसे रहित भया. अपने वर्णाश्रमधर्मको करता भया भोग भोगता भया परंतु आसक्तिसे रहित होता भया, इस प्रकारकरके समदृष्टि होकरके मृत्युकोभी अपने वश करता भया. दश हजार वर्ष राज्यको करता भया ॥ ७५ ॥ हे रामजी! सो राजा शिखिध्वज इस प्रकारके संपूर्ण राज्योंका चक्रवर्ती राजा होइकरके चिरकालपर्यंत राज्यका पालनकरके आत्मस्वरूपमें मग्न भया परमपदको प्राप्त होता भया तैसे हे रामजी ! तूभी जो समयकरके प्राप्त होवे तिस कार्यको करता हुआ शोकादिकसे रहित हुआ आपही सावधान होकरके भोग मोक्षकी संपदाको भोग ॥ ७६ ॥

इति शिखिध्वजोपाख्यानम् ।

वसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी ! जैसे राजा शिखिध्वज बोधको प्राप्त होता भया तैसे बृहस्पतिका पुत्र कचभी तत्त्वज्ञान करके आत्मस्वरूपके बोधको प्राप्त होता भया तिस क्रमकरके तूभी बोधको प्राप्त हो ॥७७॥ हे रामजी ! सो कच बाल्यावस्था जब गई तबही विद्या पढके पदोंके पदार्थको जाननेवाला और संसार तरनेमें समर्थ भया बृहस्पतिको वचन कहता भया ॥ ७८ ॥

कचका प्रश्न—हे भगवन् ! हे पिताजी ! ! तुम संपूर्ण धर्मोंको जाननेवाले हो इससे मेरे प्रति कहो कि यह संसार नामक पिंजरासे जीवरूपी पक्षीका कैसे निकलना बनता है ॥ ७९ ॥

बृहस्पतिजीका वचन—हे पुत्र ! यह संसार समुद्र है इसमें महामोह बडा मकर है सो जीवोंको संसारसमुद्रमें डुबा देता है तिससे जीवरूपी पक्षी सर्व त्यागकर उड करके सुखसे रहै॥८०॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—सो कच अपने पिताके वचनको सुनकरके सर्वस्वको त्याग करके एकांत वनमें चला जाता भया ॥८१॥ हे रामजी ! तिस कचके वनको जानेसे बृहस्पतिजीको पुत्रशोक नहीं होता भया कारण महात्मा पुरुष संयोगमें और वियोगमें समानचित्त होते हैं. एक वर्षके अनंतर बृहस्पति कचको देखनेवास्ते वनमें जाते भये तब कचने पिताको प्रश्न किया ॥८२॥ हे पिताजी ! सर्वत्याग किये भी मन मेरा विश्रांत नहीं भया. तब बृहस्पति कहते भये यहांभी तू सर्वस्वको त्याग कर, तिससे उपरांत कंथा कमंडलु दंडादिकभी कचने त्याग दिये तब तीन वर्ष उपरांत बृहस्पति फिर कचके पास प्राप्त भये तो फिर कचने पूछा महाराज ! चित्त विश्रांत नहीं भया तो बृहस्पतिजी कहते भये ॥ ८३ ॥

बृहस्पतिका वचन—हे पुत्र ! चित्तही सर्वस्व है तिसके

त्यागनेसे विश्रांतिको प्राप्त होवेगा चित्तके त्यागनेकोही त्यागी पुरुष सर्वत्याग कहते हैं ॥ ८४ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी! ऐसा कह करके बृहस्पति चले गये तब कचने चित्तका स्वरूप नहीं जाना तिसके जानने वास्ते स्वर्गमें जाकरके अपने पिताजीसे पूंछा ॥ ८५ ॥

बृहस्पति कहते भये—हे पुत्र ! यह चित्त अपने घरके समान स्वरूपवाला है चित्तको जाननेवाले लोक कहते हैं अंतःकरणके अनेक वासनाजालका सूक्ष्म जो स्वभाव है तिसको चित्त कहते हैं ॥८६॥ इसका त्यागना कठिन है ऐसा प्रश्न कियेते पिता कहते भये हे पुत्र ! पुष्पके तोडनेसे और नेत्रके निमीलनेसे अहंकारका त्यागना सुखाला है इसमें खेद कुछ नहीं है ॥८७॥ इस चित्तका भाव अहंकारके बल करके अज्ञानसे भया है तत्त्ववस्तु जाननेसे नष्ट होता है. वस्तु चैतन्यमात्र जाननेसे अहंकार नहीं रहता है जैसे रज्जु ज्ञानसे सर्पका भ्रम नहीं रहता है ॥८८॥ हे पुत्र! चैतन्यवस्तु एकही है, आदि-अंतसे रहित है, निर्मलता करके पूर्ण है, आकाशसेभी असंग है, केवल सत्तामात्र है ॥८९॥ हे पुत्र! यह पुरुष है, यह मैं हूं, यह तू है, ऐसे झूंठी प्रतीतिको त्याग कर. यह मेरा है, यह तेरा है, ऐसा है, यह हम हैं यह तुम हो ऐसा जो भेदवाला ज्ञान है सो तुच्छ है और तुच्छ स्वरूपवाला है, देश कालकरके नष्ट होनेवाला है ॥९०॥ जो देश-कालवस्तुके भेदसे रहित निर्मल, और सदाप्रकाशमानहै सर्वपदार्थोंमें एकरूप है सोचिन्मात्ररूपतूहै॥९१॥

श्रीवसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं।

हे रामजी! सो कच इस प्रकारका पितासे उत्तम उपदेशको पाकरके सो बृहस्पतिका पुत्र तिस उपदेशको धारण करके जीव-

न्मुक्त होता भया ॥ ९२ ॥ हे रामजी ! जैसे कच ममतासे रहित होता भया और अहंकारसे रहित भया और संदेहग्रंथिसे रहित भया और शांतबुद्धि होता भया तैसे तू भी निर्विकार होकरके स्थित हो ॥ ९३॥ हे रामजी ! अहंकारको असत्य जान और आत्मविचारसे सर्वभूतोंमें मित्रभावको धारणकर । अहंकार शशेके शृंगके समान असत्य है तिसका त्याग और ग्रहण कहां बनते हैं ॥ ९४ ॥ हे रामजी ! द्वैतकी भावना और अद्वैतकी भावना तिन दोनोंको त्याग करके जो इन्होंसे शेष शुद्ध चैतन्य सत्तामात्र रहे तिसमें स्थित होकरके अखंड सुखमें मग्न रह माया पुरुषके समान वृथा दुःखी मत होओ ॥९५॥ हे रामजी ! जो तुम कहोगे कि सो माया पुरुष कौन है तो तुम सुनो एक पुरुष मायाके यंत्रका बना है सो बालकके समान तुच्छबुद्धि भया और मूढ भया केवल मूर्खतायुक्त भया ॥ ९६॥ सो एकांतमें गया वहां शून्य स्थानमें रहा तिससे दूसरा तहां और कोई नहीं था जो कुछ है सो आपही है ॥ ९७॥ तिसको तहां आप वृद्धिको प्राप्त होनेका संकल्प होता भया सो ऐसा चिंतन करता भया मैं आकाशका हूं और आकाशरूप हूं आकाश मेरा है और एकाग्र होकरके आकाशकी रक्षाको करता हूं ऐसा चिंतन करता हुआ आकाशकी रक्षाको एकमंदिरको करता भया तिससे ऐसी दृढबुद्धि करता भया मैंने आकाशकी रक्षा करी है ॥ ९८ ॥ इससे उपरांत कितने काल करके सो तिसका आकाशरूपी घर नष्ट होता भया तब सो मायापुरुष विलाप करता भया—हे मेरे घरके आकाश ! तू कैसे नष्ट भया है मैंने तेरी रक्षा करी तू मेरेको त्याग करके क्षणमात्रमें कहां गया है ऐसे सब प्रकारके विलाप करता भया ॥ ९९ ॥ फिर सो दुर्बुद्धि तिसकी रक्षाके वास्ते कुहा करता भया कुहेका नाश भयसे फिर विलाप करता

भया, एक कुंड बनावता भया तिसके विनाशमें विलाप करता भया फिर माटीका कोहल बनावता भया तिसके विनाशमें भी फिर विलाप करता भया, चार द्वारका कोट बनावता भया तिसके विनाशमेंभी विलाप करता भया,इस प्रकार करके आकाशकी रक्षाके वास्ते अनेक उपाय करता भया, उपायके विनाशमें बहुत विलाप करता भया ॥९००॥ हे रामजी ! सो मायाका पुरुष कौन है वह अहंकार है सो आधार विना आकाशके समान शून्यमेंही रहता है अनात्मा पदार्थोंको आत्मा जान करके तिन्होंकी रक्षाके वास्ते नाना प्रकारके देहोंको सृष्ट करता है तिन्होंके नाशमें व्याकुल होकरके शोक करता है ॥१॥ हे रामजी ! जैसे मायाका पुरुष अहंकार अज्ञानरूपी अनात्मपदार्थकी रक्षा करता हुआ तिसकी रक्षाके उपायरूपी मंदिरादिक स्थानीय देहादिकोंके नाशमें क्लेशको प्राप्त भया है तैसे तूभी क्लेशको धारण मत कर॥२॥हे रामजी ! जो आकाशसेभी विशालरूप है और शुद्ध है और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और अखंड है और आनंदरूप है ऐसा आत्मा नष्ट कैसे होता है और ग्रहण कैसे होता है रक्षा करनेमें कैसे शक्य होता है॥३॥हे रामजी!देहके क्षय होनेकरके केवल हृदयाकाशमात्र नष्ट होता है और प्राणी वृथा शोक करते हैं,कहते हैं कि मैं मर गया हूं,मेरा आत्मा नष्ट भया है ॥४॥ हे रामजी ! जैसे घटादिकोंके नाश भये संते आकाश अखंड रहता है तैसे देहादिकोंके नाश भये संते आत्मा निर्लेप रहता है ॥५॥ आत्मा मृत नहीं होता है, जन्म नहीं लेता है और कदाचित् किसी प्रकार करकेभी आत्मा हानि वृद्धिको नहीं प्राप्त होता है यह केवल ब्रह्मही जगत्के रूपकरके भासता है ॥ ६ ॥ सो ब्रह्म सत्य है केवल सत्तामात्र है और शांतरूप है आदि-अंत-मध्यसे रहित है भावरूप अभावरूपसे रहित

है और अद्वैतमात्र रूप है ऐसे जान करके सुखी रहो ॥ ७ ॥ हे रामजी ! यह अहंकार संपूर्ण आपदाकी खान है और असत्य है और पराधीन है जलदी नाश होनेवाला है अविवेकका निधि है और महादुष्ट है और अज्ञानरूप है. इसको आत्मस्वरूपके बोध करके त्याग करके शेष रही जो आत्मसत्ता तिसमें सावधान हो उत्तम पदको प्राप्त हो ॥ ८ ॥

वसिष्ठजी श्रीरामजी प्रति कहते हैं।

हे रामजी ! तुम महाकर्त्ता हो और महाभोक्ता हो और महात्यागी संपूर्ण मनकी शंकाका परित्याग करो अखंड धैर्यको धारण करो ॥ ९ ॥ हे रामजी ! यह तीन व्रत पहिले समयमें शिवजीने अपने भृंगीगणको कहे हैं. इन व्रतोंकरके भृंगीगणभी चिंताज्वरसे रहित होता भया ॥ १० ॥ शुभ और अशुभ कार्यमें पापपुण्यकी शंका करके जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती है सो महाकर्त्ता है ॥ ११ ॥ जो पुरुष सर्वत्र स्नेहबंधनसे रहित है कार्य करनेमें इच्छा वर्त्तमान है सोही महाकर्त्ता कहा है वह कैसा है साक्षीके समान असंग है ॥ १२ ॥ जो पुरुष कटु रसको सलूनेको तीक्ष्णरसको शुद्धको और नहीं शुद्धको चाहेको अथवा नहीं चाहेको ऐसे अन्न पानको समान वृत्तिकरके भोजन करता है सो महाभोक्ता कहा है ॥ १३ ॥ जो पुरुष आपदाको और संपदाको, मोहको और आनंदको, श्रेष्ठको अथवा अश्रेष्ठको सम बुद्धिकरके भोगता है सो महाभोक्ता है ॥ १४ ॥ जो पुरुष ऐसे निश्चयवाला है कि न मेरा देह न मेरा जन्म है, योग्य और अयोग्य कर्मभी मेरेको नहीं हैं ऐसे विचारवालेको महात्यागी कहते हैं ॥ १५ ॥ जिसने धर्म और अधर्म मनका चाहिया संकल्प अंतःकरणसे त्यागिया है सो महात्यागी कहा है ॥ १६ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष उत्तम विश्रांतिको चाहता है और

दुःखरूपी रत्नोंकी खान ऐसे जन्ममरणरूपी समुद्रको तरने चाहता है तिसको ऐसी मति तरनेका उपाय है. कैसी मति है मैं कौन हूं और यह जगत् क्या है कैसे उदय भया है और भोगोंकरके मेरा क्या प्रयोजन ? ॥१७॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–हे रामजी ! इक्ष्वाकु राजाने पिता मनु वैवस्वतसे प्रश्न किया–हे पिता ! यह जगत् क्या है ? तो मनु कहता भया, यह जो कुछ जगत् दृष्ट होता है हे राजन् ! सो सत्य कुछभी नहीं है जैसे गंधर्वनगर असत्य है और जैसे मारवाडकी रेतीमें जलकी प्रतीति असत्य है ॥१८॥ हे राजन् ! यहां कुछ सत्य दृष्ट नहीं होता है तहां जो कुछ शेष सत्तामात्र जैसा प्रतीत होता है सो अविनाशी है सो सत्यरूप आत्मा है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! जैसे राहु दृष्ट नहीं होता है परंतु चंद्रमंडलमें ग्रहण करके दृष्ट होता है तैसे असत्यरूप दृश्य करके सत्यरूप अदृष्ट आत्मा प्रतीत होता है ॥ २० ॥ हे राजन् ! आत्मा केवल गुरुकरके भी प्रतीत नहीं होता है केवल शास्त्रोंकरकेभी प्रतीत नहीं होता है सो आत्मा केवल अपनी निर्मल बुद्धिकरके प्रतीत होता है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जैसे मार्गमें मुसाफिर रागद्वेषसे मुक्त भई बुद्धिकरके देखा है तैसेही यह इन्द्रिय देहादिक रागद्वेषसे रहित बुद्धिकरके देखने योग्य है ॥२२॥ हे पुत्र ! इन्होंमें आदर नहीं करना और सत्ताका निश्चय नहीं करना यह केवल पदार्थ भावनामात्रसे देखे हुए केवल नाममात्र रहते हैं और सुखरूप हो जाते हैं ॥ २३ ॥ हे पुत्र ! यह देहादिक केवल नाममात्र पदार्थ हैं सत्य नहीं हैं इन्होंकी भावनाको दूरसे त्याग करके शीतल अंतःकरण होकरके केवल आत्मविचारमें स्थित रहो ॥ २४ ॥ हे पुत्र ! जैसे निर्मल भये जलाशयोंमें सर्वत्र शीतलता और निर्मलता है तैसे ही आत्मा सर्वत्र

पदार्थोंमें सत्तामात्रता करके व्याप्त है ॥२५॥ हे पुत्र ! जैसे माता अपने कुचोंके नीचे अपने कुछडमें सुप्त भये बालकको विस्मरण करके मेरा पुत्र कहां गया है पुत्रके वास्ते रोदन करती है तैसे यह लोक सत्तामात्र सर्वस्व व्याप्त भये आत्माके वास्ते लोक अज्ञानसे भये मोहसे भ्रांत भया दुःखको प्राप्त होता है ॥२६॥ हे पुत्र ! यह माया महाआश्चर्यरूप है सर्व जगत्को मोहित करनेवाली है जिस माया करके अपने अंगोंमें सर्वत्र व्याप्त भये आत्माको नहीं जानता है ॥२७॥ हे पुत्र ! यह जगत् चैतन्यताका दर्पण है ऐसी जो भावना करता है सो पुरुष ब्रह्मकवच आच्छादित भया है ॥ २८ ॥ हे पुत्र ! जगत्के सर्व भावोंकी भावना त्यागनेकरके कर्मजालकेवनको छेद करके परम सूक्ष्मरूप आत्मभावनाको धारकरके शोकरहित स्थित रहो ॥ २९ ॥ हे पुत्र ! शास्त्रों करके सत्संगोंकरके पहिले बुद्धिको विशालकर जो पुरुष नया योग करने लगा है तिसकी यह पहिली भूमिका है ॥३०॥ दूसरी तत्त्वविचारणा है, तिसरी असंभावना है, चौथी पदार्थोंकी विलापनी भावना है,पांचवीं शुद्ध ज्ञानस्वरूप है जिसमें आधे सुप्त भये और आधे जाग्रत भये जैसा पुरुष जीवन्मुक्त स्थित होता है इसमें किंचित् प्रपंचका भानभी होता है और शुद्धचैतन्यका बोध प्रत्यक्ष प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥ और छठी स्वसंवेदरूपा भूमिका होती है यह केवल घने आनंदके स्वरूपवाली होती है इसमें जीवन्मुक्तको सुषुप्ति जैसी गाढ आनंदमें स्थिति होती है ॥ ३२ ॥ जिसमें तुरीयावस्था करके उपशम होता है सो केवल मुक्तिरूप है ऐसी सातवीं भूमिका होती है इसमें समता और सौम्यता केवल होती है ॥ ३३ ॥ पहिली तीन भूमिका जाग्रत अवस्था जैसी है जिन्होंमें प्रपंचभावना प्रतीत होती है और चौथी भूमिका स्वप्नावस्था जैसी है जिसमें वासना

लय होती है परंतु प्रपंच स्वप्न जैसा प्रतीत होता है ॥३४॥ जिसमें केवल गाढी आनंदकी भावना होती है सुषुप्तिकी समान पांचवीं भूमिका है जिसमें आनंदकी संवेदना भी नहीं होती है अपनी पराई प्रतीत नहीं होती है सो छठी भूमिका तुरीयावस्था जैसी होती है ॥ ३५ ॥ और सातवीं भूमिका तुरीयातीत केवल चैतन्यमय होती है जो मनवाणीकरके चिंतनमें कहनेमें नहीं आवती है ॥३६॥ हे पुत्र ! इस सातवीं भूमिकामें तत्त्वज्ञ पुरुष निर्लेप होता है, रजोगुणके भाव मंद होते हैं और रागादिकोंसे रहित होता है वासना मूलसहित शांत होती है अपनेको निर्मल चिदाकाश मानकरके शोकरहित होता है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जीवको संपूर्ण कला अभ्यास विना शांत होती है और यह ज्ञानकी कला एक बखत होवे तो दिन दिन उदय होती जाती है ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जो करी जाती कर्म संपदा है, जो पीछे करी है, तो देहरूपी सिंबल वृक्षसे रुईकी ढेरी सरीखी ज्ञानरूपी पवन करके उड गई वह कहां गई है ऐसे लक्षित नहीं होती है ॥३९॥ हे राजन् ! यह संसाररूपी अरहट है इसमें चिंतारूपी रज्जु बनी है तिसमें जीवरूपी घडिआ है सो कभी नीचे जावे हैं कभी ऊपरको आवे हैं तिससे तूभी संसाररूपी अरहटमें चिंतारूपी रज्जुकरके घडी सरीखा मत बांधा जावे ॥ ४० ॥ ऐसी भावना करके क्या है सो ब्रह्मा, इंद्र, विष्णु, वरुण यह जो कुछ करने चाहते हैं सो सब कुछ मैं करता हूं और चैतन्यरूप हूं ऐसी भावनाको धारण कर ॥४१॥ हे पुत्र ! जो पुरुष चैतन्यमात्रताको प्राप्त भया है और मृत्यु संसारको लंघ गया है तिसको जो परमानंद होता है सो किसके बरोबर कहा जाता है ॥४२॥ हे राजन् ! जो शुद्ध चैतन्यका स्वरूप है सो सर्वत्र व्याप्त है और अखंड है इसको जब जाने तबहीं संसार-

मुद्र तरा जाता है. और परमेश्वररूप होता है ॥४३॥ जो पुरुष जैसे तैसे वस्त्रकरके अपनेको आच्छादन करे जो जो मिल जावे तिस तिसको भोजन करे, जहां होवे तहां निद्राको करे, सो पुरुष चक्रवर्तीसेभी अधिक आनंदको भोगता है ॥ ४४ ॥ हे पुत्र ! जो संपूर्ण शास्त्रोंके अर्थके विचार करके शांत भया है, चंचलतासे रहित भया है अनेक प्रकारके काव्य शास्त्रोंके रससे निवृत्त भया है जिसके संपूर्ण संकल्प विकल्प उपद्रव शांत भये हैं सो समदृष्टि और समचित्त होकरके अखण्ड सुखमें मग्न होता है ॥ ४५ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी ! सो इक्ष्वाकु राजा अपने पिता वैवस्वतमनुके वचन करके आत्मविचार करके परम आनंदको प्राप्त होता भया ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष आत्मविचार करके वर्णाश्रम आचारके बंधनसे मुक्त भया है, सो पुरुष जैसे पिंजरेसे सिंह निकल जाता है, तैसे संसाररूपी जालसे मुक्त होता है ॥४७॥ हे रामजी ! सो पुरुष लोगोंके समान जो मैं विहार करता हुआ देहका छेदन करना और पूजन करने करके कुछ नहीं जानता है, जैसे चन्द्रमा आकाशमें है और जलके साथ प्रतिबिंब होने और गुप्त होने करके उदय अस्त नहीं होता है ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! जिससे लोक दुःखी नहीं होता है. लोकसे सो दुःखी नहीं होता है. राग द्वेष भय और आनंदोंकरके संयुक्त नहीं होता है और रहित नहीं होता ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! ऐसा महात्मा पुरुष किसीके प्रमाणमें नहीं आता है. जो तुच्छबुद्धि पुरुष है सो बालकोंकेभी प्रमाणमें आजाता है ॥ ५० ॥ हे रामजी ! सो पुरुष भावे मुक्तिपुरी काशीमें शरीरको त्यागे; भावे दुष्टस्थान चंडालके घरमें शरीरको त्यागे, जिस समयमें तिसको ज्ञान प्राप्त भया तिस समयमें मुक्त भया है, जिससे

सो निर्मलचित्त हो गया है ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष ऐश्वर्य विभूतिको चाहे तिसको ऐसा पुरुष पूजनीय है, वंदनीय है और यत्नकरके देखने योग्य है ॥ ५२ ॥ हे रामजी ! ऐसा फल यज्ञों-करके तीर्थोंकरके तपोंकरके दानोंकरके परम पवित्र नहीं प्राप्त होता है जैसा फल तत्त्वज्ञोंकी भक्ति करके होता है कैसे है तत्वज्ञ क्षीण भया है संसाररोग जिन्होंका और आत्मवेत्ता है ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! तू ग्रहण करने योग्य पदार्थोंकी भावनाको मत कर और मैं ग्रहण करता हूं ऐसी भावनाकोभी मत कर संपूर्णभाव-नाको त्याग करके जो शेष रहै तिसमें एकाग्रचित्त रहो ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! जो तू कर्म करता है भोजन करता है, होम करता है दान करता है; तिसका न मैं करता हूं न मैं भोक्ता हूं इस प्रकार करके मुक्तमति हो ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! संत जन पीछे भयेका शोच नहीं करते हैं, आगे होनेवालेका चिंतन नहीं करते हैं, वर्त्तमान जैसा होवे तैसे ग्रहणकी इच्छा नहीं करता है सबको अखण्ड संसारके प्रवाहमें अनित्य मानते हैं ॥ ५६ ॥ हे रामजी ! हम लोग जो मुनि हैं सो समशील भये हैं. और वनमें निवास करते हैं. हमको अहंकार कुछ नहीं करता है जो देहाभिमान करने-वालेको दुःख देनेवाला है ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! जितने इंद्रियोंके कर्म हैं तिन्होंको अहंकरकरके युक्त मनही करता है सो अहंकार और मन मेरे गलित हो गये हैं ॥ ५८ ॥ रामजी ! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाको मैं नहीं जानता हूं तुरीयामेंही मैं स्थित हूं तिसमें यह दृश्यमान जगत् नहीं है ॥ ५९ ॥ हे रामजी! मनु राजासे बाणकरके वेधा मृग मुनिके सामने वनको गया तिसके पीछे व्याध गया तिसने मुनिको पूछा हे महाराज ! तुमने मृग देखा है ? तब सो मुनि व्याधको कहता भया ॥ ६० ॥ हे व्याध ! जो नेत्र इंद्रिय देखती है सो कहती नहीं, कर्ण इंद्रिय

कहती है सो देखती नहीं, ऐसा मुनिका वचन व्याधने नहीं समझा सो व्याध फिर गया ॥६१॥ हे रामजी ! जाग्रत् अवस्थामें चित्त घोररूप होता है, स्वप्नमें शांतरूप होता है और सुषुप्तिमें मूढरूप होता है तीनोंसे रहित होवे तो मृतरूप होता है॥६२॥ हे रामजी ! वेदांतशास्त्रोंका यह सिद्धांत है सो और संपूर्ण शास्त्रोंमें गुप्त है सो क्या है ? न तो कोई अविद्या है और न कोई माया है संपूर्ण क्रमसे रहित शांत परब्रह्म ही है ॥ ६३ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते भय–ऐसा वचन मनु वैवस्वतने अपने पुत्र इक्ष्वाकुको कहा है सो हमने तुमको कहा है अब जो तुम्हारी इच्छा होवे सो कहो ॥६४ ॥

वाल्मीकीमुनिजी भरद्वाज प्रति कहते हैं ।

हे भरद्वाजजी ! ऐसा सुनके श्रीरामचन्द्रजी आत्मस्वरूपके आनंदकी समाधिमें स्थित होते भये ॥ ६५ ॥

श्रीभरद्वाजजीका प्रश्न–हे गुरुजी ! श्रीराम जब समाधिमें स्थित भये फिर वसिष्ठजीने व्यवहारमें कैसे तत्पर करे, यह तुम मेरेको कहो ॥ ६६ ॥

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं–हे भरद्वाज ! यह जितने संसारके भाव हैं सो संपूर्ण अविद्यासे भये हैं क्षणमात्रमें उदय होते हैं और ज्ञान-रूपी समुद्रमें लय हो जाते हैं ॥६७॥ हे भरद्वाज ! तूभी केवल ज्ञान-रूपी अमृतसमुद्रमें मग्न हो जा. वह कैसा है ज्ञानामृतसमुद्र प्रशांत भई है अमृतकी लहर जिसमें ऐसा निश्चल है. और द्वैतके खारे समुद्रमें क्यों मग्न होता है ?॥६८॥ हे भरद्वाज ! यह जगत् बालबुद्धिवालेको ब्रह्मही रूपांतरको प्राप्तभया प्रतीत होता है और तत्त्वविचारकी बुद्धि-वाले एकरूप ब्रह्मको देखते हुए सुखको पाकर स्थित भये हैं ॥६९॥

जिन पुरुषोंका चित्त देवताकी ब्राह्मणोंकी भक्ति करके संयुक्त है और गुरुकी सेवाकी श्रद्धा करके युक्त भया है, और उत्तमशास्त्रोंको प्रमाण करके मानते हैं तिन्हके ऊपर ईश्वरकी कृपासे आत्मज्ञान दृढ होता है ॥७०॥ हे भरद्वाज ! जबलग तेरा चित्त शुद्ध नहीं भया तबलग सगुण ईश्वरको भज जब चित्त शुद्ध होवेगा तब निराकारमें स्वभाव करकेही तेरी स्थिति होवेगी ॥ ७१ ॥

भरद्वाजका वचन–हे गुरुजी ! तुम्हारे प्रसादसे यह संपूर्ण जाना है वैराग्यसे परे मित्र नहीं और संसारसे परे शत्रु नहीं है॥७२॥

विश्वामित्रजीका वचन वसिष्ठजी प्रति ।

हे वसिष्ठजी ! हे महाभाग ! तुम ब्रह्माजीके पुत्र हो सबसे तुम महात्मा हो तुमने अपनी शक्ति देने करके अपना गुरुभाव दिखाया है. जो कोई दर्शनसे और स्पर्श करनेसे शब्द सुनावनेसे कृपा करके शिष्यके शरीरमें ज्ञानका चमत्कार दिखावें सो उत्तम गुरु कहा है ॥७३ ॥ हे वसिष्ठजी ! यह रामचंद्रजी आप स्वभाव करके विरक्त हैं. केवल चित्तकी सो विश्रांतिको चाहता था सो तुम्हारे साथ संवाद करनेसे चित्तकी विश्रांतिको प्राप्त भया है॥७४॥ हे वसिष्ठजी ! गुरुके वाक्यसे बोध जो होना है तिसका कारण शिष्यकी निर्मल बुद्धि है जिसके मन वाणी देहके मल परिपक्व नहीं भये हैं सो निर्मल बुद्धिके समान बोधको कैसे प्राप्त होवे ॥७५॥ हे रामजी ! अब कथाको समाप्त करके व्यवहारकार्य करनेवास्ते उठने योग्य है. वसिष्ठजी विश्वामित्रको प्रश्न करते भये हे विश्वामित्रजी ! यह श्रीरामचंद्र पहिले देवता थे अथवा मनुष्य थे ? ॥ ७६ ॥

विश्वामित्रजीका वचन–हे वसिष्ठजी ! यहां यही विश्वास करो यह रामचंद्रजी परम पुरुष हैं पूर्णस्वरूप हैं परमानंदरूप हैं सबमें समान सत्तायुक्त हैं साक्षात् विष्णुरूप हैं ॥ ७७ ॥

श्रीवसिष्ठजीका वचन रामजी प्रति—हे रामचंद्रजी ! यह विश्रामका समय नहीं है लोकोंको आनंद करने वास्ते संसार व्यवहारमें तत्पर हो ॥७८॥ ऐसा वचन सुनके भी श्रीरामचंद्रजी नहीं उठे. तब वसिष्ठजीने हृदयमें प्रवेश करके उठाया ॥ ७९ ॥

तब श्रीरामचंद्रजी कहते भये—हे गुरुजी ! अब मेरेको विधिसे कार्य नहीं है और निषेधसे भी कार्य नहीं है तुम्हारे प्रसादसे मैं पूर्ण भया हूं तो भी गुरुओंका वचन अवश्य करना योग्य है ॥८०॥ वेदशास्त्रमें आगमशास्त्रमें और पुराणशास्त्रमें धर्मशास्त्रमें भी कहा है जो गुरुजीका वचन है सो विधि है, जो गुरुनिषेध है, सो निषेध है ॥८१॥ ऐसा कहकरके श्रीरामचंद्रजी गुरुओंके चरण शिरपर रखकरके सबको कहते भये हे सभामें बैठे संपूर्ण लोक ! मेरा वचन सुनो. मैं निश्चय करके कहता हूं. आत्मज्ञानसे परे ज्ञान नहीं है, आत्मवेत्ता गुरुओंसे परे दूसरा गुरु नहीं है ॥ ८२ ॥

सिद्ध, मुनि, देवता, ऋषि सब कहते हैं ।

हे रामजी ! हमारे सबके मनमें ऐसा ही विचार था, परंतु तुम्हारे प्रसादसे तुम्हारे संवादसे अब दृढ निश्चय भया है. हे रामचंद्र ! हे महाराज ! तुम सुखी रहो तुम्हारेको नमस्कार है ॥ ८३ ॥ ऐसा कह करके सबही वसिष्ठजीकी आज्ञा लेकरके अपने घरको जाने लगे. तब रामचंद्रजीके शिरपर पुष्पोंकी वर्षा होती भई ॥ ८४ ॥

वाल्मीकिजी कहते हैं—हे भरद्वाज ! यह श्रीरामचंद्रजीकी आत्मज्ञानकी सिद्धि तुम्हारे प्रति मैंने कही है जैसे राजा रघुको सिद्धि भई थी. यह कैसी है ? वचन रचनाकी रत्नमाला है, संपूर्ण कविकुलोंकरके सेवने योग्य है, और योगी जनोंको भी सेवने योग्य है. यह सद्गुरुओंकी कृपाकटाक्षसे प्राप्त होती है और मुक्तिके

मार्गको देती है ॥८५॥ जो पुरुष यह वसिष्ठ–रामजीके संवादको श्रवण करता है सो भावे कैसा होवे श्रवणसेही मुक्त होता है और परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥ भावे मोह करके मलिन बुद्धि होवे, रागद्वेष युक्त होवे महापातकयुक्त होवे संपूर्ण दोषों करके युक्त होवे, सो पुरुष इसके श्रवणसे सर्व दोषोंसे मुक्त होता है. शांतिको प्राप्त होकरके ब्रह्मज्ञानको प्राप्त है जो इसका उत्तम अधिकारी होवे सो कैसे मुक्त नहीं होवे ॥ ९८७ ॥

इति श्रीवासिष्ठसारे निर्वाणप्रकरणस्य पूर्वार्द्धं समाप्तम् ।

वासिष्ठसार ।

निर्वाणप्रकरणस्य उत्तरार्धम् ।

श्रीवसिष्ठजी फिर श्रीरामचंद्रजीको सर्वसार उपदेश करते हैं ।

हे रामजी ! संसारकल्पनाको जाननेवाले ज्ञानी पुरुष पदार्थोंके रसकी भावनाकोही संसारकल्पनाको कहते हैं तिस पदार्थरसकी अभावनाको संकल्पका त्याग करना कारण कहा है ॥ १ ॥ मैं भुजा उठा करके कहता हूं कि संकल्पका त्यागही परम कल्याणका मूल है तिसको अंतःकरण करके क्यों नहीं सेवते हैं ॥ २ ॥ हे रामजी ! मोहका माहात्म्य महाआश्चर्यरूप है जिस करके संपूर्ण दुःखोंको हरनेवाला तत्त्वविचार नामा चिंतामणि अपने हृदयमेंभी है तौभी तिसको लोक त्याग देते हैं ॥ ३ ॥ हे रामजी ! जो झूठे ज्ञानी हैं, संकल्प त्यागको नहीं जानते हैं और वृथाही कर्मका त्याग करते हैं, सो पशु हैं और अज्ञानी हैं तिन्होंको कर्मत्यागरूपी पिशाचनी भक्षण करती है ॥ ४ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष मोक्षल-

क्ष्मीरूपी स्त्रीके वश भये हैं सो जैसे कामी पुरुष सुंदर स्त्रीके वश होते हैं तैसे आधे सुप्त भये जाग्रत भये हैं आनंदरूपी निद्राके वश भये अपनेको नहीं जानते हैं हम कहां हैं और कौन हैं ऐसे स्वरूपानंदमें मग्न होते हैं ॥५॥ हे रामजी ! जिसको उपशमकी प्राप्ति भई है तिसको अपना घर कुटुंब धनसहित वन सरीखा होता है. सो पुरुष ममता-रहित होता है. और जिसको उपशमकी प्राप्ति नहीं भई है तिसको ममता संकल्प करके निर्जन वनभी कुटुंबसहित घर जैसा होता है ॥६॥ हे रामजी ! जिसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य यह छः शत्रु जीते हैं. स्वभाव करकेही दूर किये हैं ऐसा उत्तम ज्ञानी पुरुष जो है सो ज्ञान वैराग्यादिक उत्तम गुणोंका पात्र होता है, और षट् शत्रुओंको नहीं जीतता है, सो मनुष्योंमें गदहा है. तिसको तत्त्वज्ञान वैराग्यादि महागुण नहीं होते हैं ॥ ७ ॥ हे रामजी ! शुद्ध चित्तवालेको अल्प उपदेशभी विस्तार करके लग जाता है. जैसे जलमें तैलकी बूंद विस्तारको प्राप्त होती है, और मलिन चित्तवालेको उपदेश नहीं लगता है. जैसे तपे हुए लोहेको जलकी बूंद नहीं लगती है ॥ ८ ॥ हे रामजी ! मैंने भुशुंड काकसे प्रश्न किया था, हे महाराज ! तुम तत्त्वज्ञानके विचारसे जिरंजीवी भये हो. परंतु जो त्त्वज्ञानसे रहित है और मूढबुद्धि है ऐसा तुमने कोई चिरंजीवी जाना तो कहो ॥ ९ ॥

इतना सुनके भुशुंड काक कहते भये ।

हे मुने ! एक कोई विद्याधर होता भया. वह कैसा है ? तत्त्व-ज्ञानसे रहित और संसारसुखोंको भोग करके वृद्ध भया हुआ लोका-लोक पर्वतके शिखरमें निवास करता भया. शुष्क विचार-वाला सो विद्याधर बहुत प्रकारके तपकरके और यम-नियम करके चार कल्पपर्यंत स्थिर आयुषवाला होता भया ॥ १० ॥ सो चौथे

कल्पके अंतमें विवेकयुक्त होता भया. संसारको असार जानता भया मेरेको प्रश्न करनेको आता भया ॥ ११ ॥ आकरके पूछता भया, हे महाराज ! जो सबका आधार है और दुःख क्लेशसे रहित है क्षय वृद्धिसे रहित है, और आदिअंतरहित जो पद है तिसको मेरे प्रति कहो ॥१२॥ इतनेमें जडता करके सोया जैसा रहा हूं अब मैं आत्माकी प्रसन्नतासे बोधयुक्त भया हूं ॥१३॥ संसारमें अनेक प्राणी केवल जन्म-मरणको भोगते हुए जीर्ण हो गये हैं अधर्मके वास्ते कुछ करते हैं न मोक्षके वास्ते कुछ करते हैं जैसे मच्छर कमलमें रहते हैं ॥१४॥ हे महाराज ! मैंने कुबेरकी बगीचेकी भूमिका देखी है वह कैसी है प्रफुल्लित है कुंजता जिन्होंमें और जहांके कल्पवृक्षोंके ऊपर मनकी चाही ऐश्वर्य संपदाको देनेवाली कल्पलता चढी है ॥१५॥ मैंने सुमेरु पर्वतके कुंजोंमें और विद्याधरोंके नगरोंमें और विमानोंकी सुंदर मालामें और मंद सुगंध शीतल पवन जहां चलती है तिनमें चिरकाल विहार किये हैं. और देवताओंकी सेना साथ चलती है; दिव्य स्त्रियोंकी भुजारूपी लतामें विहार किये हैं मुक्तामणिकरके हारों करके युक्त मनको हरनेवाला रूप और शील जिनका ऐसी अंगनासहित लोकपालोंकी पुरियोंमें विहार किये हैं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! तिनमें मेरेको सुंदर सुख करनेवाला कुछ अनुभवमें नहीं आया है. संपूर्ण मनका विनाश होने करके दग्ध भये भस्मकी समान वृथा मैंने अब जाना है ॥ १७ ॥ जो कुछ मैंने सुना है, स्पर्श किया है, सूंघा है, स्वर्गादिकम सो सब रसरहित भया है अब मैं क्या सेवन करूं ? तिसको जलदी कहो ॥ १८ ॥ जिसके प्राप्त भये फिर प्राप्त होनेकी शेष वांछा न रहे तिसकी प्राप्तिमें कष्ट करकेभी यत्नको मैं करूं ॥ १९ ॥ जिसने सुंदर स्त्रिय

भोगसहित भोगी हैं तिसको तिन भोगोंने भोग लिया है भोग-वालाभी मैंने ऊपरकी पदवीको चढता नहीं देखा है. और आका-शमें उडताभी नहीं देखा है सबही नरकको जाते देखे हैं ॥२०॥ यह दुष्ट इंद्रियोंकी सेना है शरीरके अंतपर्यंत जीवोंको भ्रमावती है. जो इसके जीतनेको उद्यम करते हैं सोही महायोधा शूर वीर हैं ॥ २१ ॥ जो जितेंद्रिय पुरुष हैं सोही महापुरुष हैं बाकीके देहरूपी मांसके पिंजराके काकोंके बरोबर हैं, मैं इन इंद्रियोंको उडा करके भ्रमाया हूं जैसे महावनमें चोरोंकरके अकेला मुसा-फिर डराइ दुडाई भ्रमाया जाता है ॥ २२ ॥ हे महाराज ! जैसे कोई महा आपदामें मग्न होता है ऐसे मैंभी आपदामें मग्न भया हूं और साधनोंसे रहित हूं मेरेको शील दयाके उदय करके उद्धा-रण करो तुम उद्धारण करनेवाले हो जो जगत्में उत्तम संतजन होते हैं सो त्रैलोक्यको जीतनेवाले होते हैं. तिनके समागमको परम शोकका हरनेवाला कहते हैं ॥ २३ ॥

काकभुशुंडजी कहते हैं—हे विद्याधरोंमें श्रेष्ठ ! तू उत्तम शीलवाला है. दैवयोगसे तेरेको संसारदुःखका बोध भया है अब तेरा कल्याणका समय आया है. संसाररूपी कुएसे चिरकालसे निकलनेके योग्य है ॥२४॥ यह विश्व मारवाडकी रेतीमें जलकी प्रतीतिके समान वास्तव नहीं होनेसे दृश्यमान है तोभी असत्य है जो कुछ यह भासता है सो संपूर्ण ब्रह्मही है और कुछ नहीं है ॥२५॥ जो पुरुष गुरुओंका वचन सुनकरके मूलसहित संकल्प त्यागका यत्न करके उद्यम करते हैं सोही संसारको जीतते हैं ॥ २६ ॥ हे विद्याधर ! संकल्पका उदयमात्र जगद्रूपी चित्र दृष्ट होता है संकल्पके लय होनेसे लयको प्राप्त होता है जैसे चित्र रचनेवालेके संकल्पसे चित्र होता है ॥ २७ ॥ जो पुरुष अन्नपाना-

दिकमें अनादरको प्राप्त भया है तिसका यह पिछला जन्म है. तिसको नहीं होता है. सो पुरुष कर्मका त्याग नहीं करता है. कर्म तिसको आप त्याग कर जाते हैं जैसे पुराने पत्र वृक्षसे आपही गिर जाते हैं ॥ २८ ॥ यह जगत चित्तके संकल्पका चमत्कार है संकल्प नहीं करनेसे क्षयको प्राप्त होता है और अतिशय करके अपने हाथके वस्तु जैसा अपने अधीन है जब चाहे तबही त्याग कर ॥ २९ ॥ संपूर्ण शास्त्र आत्माको जाननेमें अंग हैं वासनारहित पुरुषके अंगमें लगते हैं जो इनको वारंवार जानता है फिर समबुद्धि होता है सो परमपदमें स्थित होता है ॥ ३० ॥ हे विद्याधर ! जबलग पदार्थोंके उदयके प्रति सुषुप्ति जैसी विस्मृति नहीं भई, तबलग अपने पुरुषके यत्न करके अभ्यास करता है ॥ ३१ ॥ हे विद्याधर ! अविद्याका आधा भाग आपसमें शास्त्र विचारण करके निवृत्त होता है और आधा भाग आत्मज्ञानके दृढ निश्चय करके निवृत्त होता है ॥ ३२ ॥ तिससे शास्त्र विचारने वास्ते जहांतें वैराग्य सहित वीतराग, आत्मवेत्ता ऐसे तत्त्वज्ञ पुरुषको ढूंढ करके यत्न करके तिसका आराधन करे ॥ ३३ ॥ हे विद्याधर ! तिससे उपरांत आधा अविद्याका भाग सत्संग करके निवृत्त होता है. आधेमें आधा शास्त्र विचारकरके निवृत्त होता है. चौथा भाग अपने निश्चय यत्न करके निवृत्त होता है ॥ ३४ ॥ हे विद्याधर ! संतजनोंकी संगति करके शास्त्रार्थ विचार करके अपने यत्नपूर्वक निश्चय करके अविद्यारूपी मूल क्षयको प्राप्त होती है. तिससे क्रमकरके एक एकको सेवे अथवा एक इकट्ठेही सेवन करे ॥ ३५ ॥ हे विद्याधर ! जगत्के पसरनेका कोई और देश नहीं है. कालभी और नहीं है, धारनेका आधारभी नहीं है जैसे अन्धेरा और प्रकाश आकाशमेंही होते हैं तैसे जगत्का उदय और क्षय एक अंतःकरणमेंही है ॥ ३६ ॥ इसमें

तेरे प्रति पुरातन इतिहासको कहते हैं. जो त्रसरेणुके अंदर पहिले इंद्रका वृत्तांत भया है तिसको तू सुन ॥३७॥ एक कल्पांतरमें इंद्र त्रैलोक्यका राजा होता भया सो इंद्र गुरुओंके उपदेश करके अपने अभ्याससे अज्ञानरूपी आवरणसे रहित होता भया ॥ ३८॥ नारायणसे लेकर महापराक्रमीदेवता तिसके साहाय्य करनेवाले होत भये सो कहीं छिप जाते भये,तब इन्द्र अकेला रहा महाशस्त्र अस्त्रोंकरके दैत्योंके साथ युद्ध करता भया सो महापराक्रमी दैत्योंसे जीतागया तिनसे शितावी भाग जाता भया ॥३९॥ तिन दैत्योंकी दृष्टि जब भ्रम गई,तब छिद्र पाकरके इंद्र सूर्यकी किरणोंमें दृढ होता एक त्रसरेणुके किणकेमें सूक्ष्मरूप होकरके प्रवेश करके छिप जाता भया ॥४०॥ इससे उपरांत युद्धको बिसार करके निवृत्तिको प्राप्त भया इंद्र तिस त्रसरेणुके अंदर मंदिर कल्पना करके निवास करता भया तिस मंदिरमें बैठा इंद्र बाहिर नगरकी कल्पना करता भया तिसके बाहिर अनेक देशनकी कल्पना करता भया ॥४१॥ हे विद्याधर ! तहां रहते भये इंद्र संपूर्ण त्रैलोक्यकी कल्पना करके अपने इंद्रत्वके अधिकारको करता भया । इस प्रकार करके तहां इंद्रके हजारों पुत्र पौत्र होते भये तहां आजतक तिस इंद्रका अंश राज्यमें स्थित है ॥ ४२ ॥ तिस इंद्रके कुलके सबही तहां इंद्रके अधिकारको करते भये तिससे उपरांत सो इंद्र तिसके पुत्र पौत्र कुटुंबादिक परम पदको प्राप्त होते भये ॥४३॥ हे विद्याधर ! जो इन्द्र इस सृष्टिको त्रसरेणुमें माया करके छिपा था, तिसके कुलका कोई यहांभी इंद्रके राज्यको करता भया तिसकोभी बृहस्पतिके वचन करके ज्ञानकी प्राप्ति होती भई ॥४४॥ सो भी दैत्योंके साथ युद्ध करता भया संपूर्ण शत्रुओंको जीत लेता भया सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ करता भया मन करके अज्ञानको तर जाता भया ॥४५॥सो किसी कार्यके वशसे कमलके

नालके तंतुमें चिरकाल निवास करता भया औरभी सैकडों इंद्रभावके वृत्तांतोंको अनुभव करता भया ॥ ४६ ॥ सो इंद्र भी मायाको जाननेवाला यह इच्छा करता भया, ब्रह्मतत्त्वको मैं देखूं सो ब्रह्मको देखता भया, वह कैसा है परब्रह्म ? सर्वशक्तियुक्त है सर्व वस्तुमें व्याप्त है सर्व कालमें सर्व प्रकार करके सर्वत्र सर्व जनोंने देखा है ॥४७॥ फिर वह कैसा है ? सर्व दिशाओंमें है हाथ पांय जिसके, सर्वत्र हैं नेत्र और मुख शिर जिसके, सर्वत्र श्रवणवाला है सबमें व्याप्त हो करके स्थित भया है ॥४८॥ ध्यान करके सर्वत्र एकरूपको देखता भया, कैसा है ? उदार बुद्धियुक्त है, संपूर्ण सृष्टिको तिसमें हमारी इस सृष्टिकोभी देखता भया, तिससे उपरांत यहांके इंद्रका राज्यके अंतमें फिर इंद्र होता भया जगत्के राज्यको करता भया. संपूर्ण वृत्तांतोंका अनुभव करता भया ॥४९॥ इस प्रकारकी माया करके अनेक इंद्रोंके वृत्तांत भये हैं, यह माया अनेक प्रकारकी प्रतीतिको करनेवाली है सत्यपरब्रह्मके विचार करक लीन होजाती है॥५०॥हे विद्याधर ! जो पदार्थ सत्य नहीं है सो कदाचित्‌भी सत्य नहीं जानना तू केवल शांतरूप है सबके लय होनेमें शेष रहनेवाला है अब तू बोधको प्राप्त भया है अब फिर मूलरहित भ्रांतिको मत धारण कर ॥५१॥हे विद्याधर ! तू संपूर्ण कल्पना कलंकसे रहित है; शुद्धरूप है, आनन्दरूप है, शांतरूप है, ईश्वर है, शुद्ध चैतन्य है, मायाके विलाससे आकाश शून्यस्वरूप है सो स्वरूप करके पर्वत प्रमाण दृश्यरूप होता है संपूर्ण जगत् परमाणुरूप होता है आत्मविचार विना जीती नहीं जाती है ॥५२॥

वसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजी प्रति कहते हैं ।

हे रामजी ! फिर भुशुंड काक मेरेको कहता भया हे वसिष्ठजी !

ऐसे मैंने कहते संते सो विद्याधर राजा शांत ज्ञानस्वरूप होता भया, समाधिमें स्थित होता भया, आत्मस्वरूपके ध्यानमें एकाग्र होता भया ॥ ९३ ॥ सो आत्मस्वरूपको ध्यान मैंने वारंवार करा है तिससे जो जो मैंने कहा है तिस तिससे बोधकी दृढताको पाकरके फिर दृश्य पदार्थमें मग्न नहीं होता भया और परम निर्वाणको प्राप्त होता भया ॥ ९४ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं—इससे मैंने कहा है निर्मल चित्तवाले पुरुषको किया उपदेश जलमें तैलबूंदकी समान विस्तारको प्राप्त होता है ॥ ९५ ॥ यह त्यागनेके योग्य है यह ग्रहण करनेके योग्य है ऐसी जिसके चित्तमें कल्पना है सो पुरुष संसारसे मुक्त नहीं होता है सर्वज्ञ है तोभी मूढ है ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! पूर्णज्ञानी सदा होने योग्य है और ज्ञानबंधु नहीं बने योग्य है मैं अज्ञानीको भला मान ज्ञानबंधुको भला नहीं मानता हूं ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! ज्ञानबंधु कौन होता है ? ज्ञानबंधु तिसको कहते हैं जो पुरुष शास्त्रोंको लोकोंको सुनावता है आपभी पढता है कारागिर सरीखा उपजीविका वास्ते शास्त्रके प्रसंगको करता है; शास्त्रकी विधिमें आप वर्त्तमान नहीं होता है, सो ज्ञानबंधु कहा है ॥ ९८ ॥ जो पुरुष अन्न वस्त्र मात्र प्राप्त होनेसे प्रसन्न भये हैं शास्त्रोंके फलको जानते हैं हमको शास्त्र आगये हैं और मजूरी करनेवालोंके समान अन्न वस्त्र लाभ वास्तेही शास्त्रार्थको माननेवाले सो ज्ञानबंधु कहे हैं ॥ ९९ ॥ जो पुरुष शास्त्रमें कहे प्रवृत्तिमार्गको सिद्ध करनेवाले धर्ममें प्रवृत्त होते हैं और निवृत्ति करके ज्ञानको देनेवाले शास्त्रार्थमें नहीं प्रवृत्त होते हैं सो ज्ञानबंधु कहे हैं ॥ ६० ॥ हे रामजी ! आहार वास्ते उत्तम कर्मको करना प्राण धारने वास्ते आहार भी करना तत्त्व जानने वास्ते प्राणधारणाभी करनी जन्म मरणदुःखी निवृत्त करने वास्ते

तत्त्व जाननेका अभ्यास करने योग्य है ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! मायाके प्रवाहमें जैसा बने तैसे कार्यको करता है. और कामनाके संकल्पसे रहित है. और रागद्वेषमें जिसका अंतःकरण शून्य है सो पंडित कहा है ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! जीवको केवल अहंता ममताके फुरना मात्र कहते हैं. तिसका पसरना जगत्का रूप है, और आत्मामें निष्ठा करनेको जगत्के लयको कहते हैं यह उपदेशकी मुख्य भूमिका है ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! वैराग्यकी वासनाकरके संपूर्ण जगत्को त्याग करके इस जगत्की मायाकी प्रकृतिसे उठ करके मंकि ब्राह्मणकी समान कलंकरहित होकरके परमपदवीको चले जाओ ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! एक मंकि नामा ब्राह्मण होता भया सो मारवाड देशके मार्गमें चलता हुआ महागरमीकरके तपा हुआ भी लोगोंके ग्रामको प्रवेश करता हुआ मैंने देखा ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! तुम्हारे दादा राजा अजके यज्ञ कराने वास्ते मैं अपने आश्रमसे आकाश मार्ग करके जाता था तब मैं मंकि ब्राह्मणको धूपकरके व्याकुल भयेको देखकरके दयाकरके वचन कहता भया ॥ ६६ ॥ हे मारवाडकी झाडीके मुसाफिर ! तेरेको कुशल होवे, यह ग्राम नीच लोगोंके वसनेवाला है इसमें तेरा विश्राम नहीं बनेगा और खारी रेती पडनेकरके और महा उग्र धूपकरके तृषा तो अत्यंत बढती जाती है ॥ ६७ ॥ परंतु इस ग्राममें प्रवेश करना भला नहीं जिस कारणसे महा अंधकारवाली कंदरामें सर्प बनना अच्छा है, पत्थरोंमें कीडा बनना अच्छा है, मारवाड देशकी झाडीमें लंगडा मृग बनना अच्छा है परंतु ग्रामके मूढ जनोंकी संगति भली नहीं ॥ ६८ ॥

मंकि ब्राह्मण कहता है–हे भगवन् ! तू कौन है अथवा कैसा है पूर्णबुद्धि है, और महात्मा है और महाधैर्यवान् है जिस कारणसे व्याकुल नहीं है संपूर्ण लोकके वृत्तांतको देखता है जैसे

मुसाफिर ग्रामके वृत्तांतको असंगता करके देखता है ॥ ६९ ॥ हे महामुने ! क्या तुमने अमृत पान किया है अथवा तू महासिद्ध है जिस कारणसे यह संसार संपूर्ण उत्तम गुणसे रहित है इसमें तू सर्वार्थपूर्ण जैसा विराजमान होता है ॥ ७० ॥ हे मुने ! तू दोषोंसे शून्य है और आनंदकरके पूर्ण होकरके भी स्थिरमति है तू सब असंग है तौभी सर्वरूप है तेरेको जगत् कुछ भी प्रतीत नहीं होता है और कुछ तत्त्व अंतःकरणमें प्रतीत होता है ॥ ७१ ॥ हे मुने ! तेरी बानी और रूप उपशमको प्राप्त भया है और प्रकट प्रकाशमान है परंतु विरोधी किसीका भी नहीं है और निवृत्तिको प्राप्त भया है तो भी सर्वत्र प्रवृत्त है यह किस कारणसे है ॥ ७२ ॥ हे मुने ! मैं शांडिल्यके कुलमें प्रकट भया हूं मंकि मेरा नाम है तीर्थयात्राके प्रसंगसे बहुत देशोंमें फिरा हूं, बहुत तीर्थोंको देख करके अब घरको जाने वास्ते उद्यत भया हूं परंतु विरक्तमन भया हूं घरके जानेको उद्यम नहींभी करता हूं इस संसारमें भूतोंके समागमोंको मैंने देखा है वे समागम कैसे हैं बिजुलीके चमत्कारके समान चंचल हैं ॥७३॥ हे भगवन् ! तुम मेरेको कृपा करके अपने आपको सत्य-करके कहो आप कौन हो ? सज्जनोंके मनरूपी सरोवर गंभीर होते हैं और निर्मल भी होते हैं ॥७४॥ महात्मा लोग दर्शनसे ही मित्रता करते हैं तिन्होंके कमलोंके समान संपूर्ण प्राणियोंके मन तत्क्षण प्रकाशमान होते हैं और प्रसन्न होते हैं ॥ ७५ ॥ मेरा यह मन संसारके मोहसे मुक्त होनेको समर्थ नहीं होता है, तिसको बोध करनेकी कृपासे मोहसे छुटावनेको योग्य है ॥ ७६ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–हे महाबुद्धे ! मैं वसिष्ठमुनि हूं आकाशमें ही मेरा घर है किसी राजऋषिके कार्य निमित्त इस मार्गको आया हूं तू अब चिंता मत कर. तत्त्ववेत्ता जनोंके मार्गमें आगया

है निश्चय करके संसारसमुद्रके तटमें प्राप्त भया है ॥ ७७ ॥ हे मंकि वैराग्यादियुक्त भई ऐसी मति और शांतरूपा आकृति यह तुच्छ बुद्धियोंको नहीं होती है ॥ ७८ ॥

मंकिका वचन–हे भगवन्! मैंने बहुत प्रकारकी दश दिशा भ्रमी हैं परंतु संशयको नाश करनेवाला उत्तम जन मुझको कोई नहीं मिला अब मेरेको संसारमें अनेक जन्मोंके पुण्य करनेका फल प्राप्त भया है ॥ ७९ ॥ हे भगवन् ! बहुत दोषोंको देनेवाले संसारकी बहुत दशा देखता मैं बहुत दुःखी भया हूं, यह संसारके सुख फिर फिर उत्पन्न होते हैं फिर फिर नष्ट होते हैं अवश्य इन्होंसे दुःख होता है तिससे ये दुःखरूपी भासते हैं ॥ ८० ॥ इस संसारमें सुख ही दुःखरूप है तिससे मैं दुःखोंको भले मानता हूं जिससे दुःखोंसे फिर दुःख नहीं होते हैं और सुखोंके अंतमें मैंने दुःखही देखे हैं तिससे सुख मेरेको दुःख करते हैं मेरा चित्त सुखदुःखोंके तरंगोंकरके व्याकुल भया है खुशक चिंताकरके व्याप्त भया है ॥ ८१ ॥ मैं इंद्रियसुखोंमें तत्पर भया हूं मेरेको विवेकी जन स्पर्श भी नहीं करते हैं जो विवेकरूपी सूर्य उदय नहीं होवे तो वासनारूपी रात्रिका क्षय नहीं होता है। यह चित्तरूपी हाथी मदोन्मत्त भया है जिससे जो सत्य वस्तु नहीं है तिसको सत्य वस्तु जान करके गलेमें बांधा है जैसे बालक काचकी मालाको गलेमें बांधता है ॥ ८२ ॥ हे साधो ! जैसे शरदृतुमें घनघटाका अंधकार दूर होता है और दश दिशा निर्मल होती हैं तैसे विवेकके उदयमें मोहका अंधकार नष्ट होता है और चित्तकी वृत्ति निर्मल होती है यह मैं सत्य जानता हूं साधुजनोंकी कही बानी बोधको प्राप्त करती है तिससे तुमने भी मेरेको संसारकी शांतिको देनेवाला बोध करनेसे मेरेको संसारदुःखकी शांति करने योग्य है ॥ ८३ ॥

वसिष्ठजी कहते हैं-हे मंकि ! पहिले इंद्रियों करके विषयोंका भोग जो लक्षित करना (लेखना) सो संवेदन कहा है, विषय नष्ट भयेसे फिर तिसका संबंध विचारना सो भावना कही है. विषयाकार चित्तकी वृत्ति करनी वासना कही है ॥८४॥ फिर मरणादिकमें भी दृढवासना करके दूसरे देहके आरंभमें भोग चाहना सो कल्पना कही है यह चारों अपने नामके अर्थ करके महा अनर्थको करते हैं विचार करनेसे अर्थरहित होते हैं अपने अर्थको नहीं करते हैं ॥८५॥ तिससे हे मंकि ! विषयोंका संवेदनही भावना जान सो कैसा है संपूर्ण दोषोंका आश्रय है तिसमेंही संपूर्ण आपदा रहती हैं जैसे वसंत ऋतुमें लता होती है ॥८६॥ विवेकी पुरुषका संसारका भ्रम वासनासहित क्षीण होता है जैसे वैशाख मासके अंतमें ग्रीष्म ऋतुमें पृथिवीका रस सूख जाता है ॥८७॥ हे मंकि ! जिस बोध करके तत्त्ववस्तुका बोध होवे तिसको बोध कहते हैं तत्त्व वस्तुका बोध नहीं होवे तो बोधका क्या करना है जिस कारणसे तत्त्वके बोध विना जो बोध है सो बोधका विरोधी है ॥८८॥ हे मंकि ! देखनेवाला और देखनेकी क्रिया और देखने योग्य जो पदार्थ है इन तीनोंमें एक एक प्रति बोधमात्रही प्रतीत होवे तो सारका बोध होता है तो बोधका अंत होता है और जैसे आकाशपुष्पका नाम जाननेसे आकाशपुष्पकी प्रतीति कदाचित्‌भी नहीं होती है तिससे तत्त्व जाननेकोही बोध कहते हैं ॥८९॥ हे मंकि ! जो जिसके समान जातिवाला होता है सो तिसके साथ एकरूप होता है जैसे जल जलके साथ, दूध दूधके साथ, आकाश आकाशके साथ मिल जाता है तैसे बोध सर्वत्र एक जैसा है सो आपसमें एक जैसा होनेसे एक रूप होता है ॥९०॥ जो कहो काष्ठपाषाणादिकमें बोध नहीं है और बोधरूप आत्मा एक अद्वितीय है. काष्ठ पाषाणादिक जड हैं

तिन्होंमें बोधरूपसत्तारूप परब्रह्म नहीं है इस करके अद्वितीयताकी हानि होती ऐसा नहीं कहो. जैसे और पदार्थ ज्ञान करके असत्य भासते हैं तैसे काष्ठपाषाणादिक बोध विना स्वभावसे जड हैं और असत्य हैं ॥९१॥ हे मंकि ! 'अहं ब्राह्मणः' मैं ब्राह्मण हूं ऐसा फुरना बंधको करता है. मैं देहादिक नहीं ऐसा फुरना मुक्तिको देता है एताही बंध है और एता ही मोक्ष है और स्वाधीन है इसमें क्या असामर्थ्य है ॥९२॥ हे मंकि ! यह मनुष्यरूपी तृण है सो वासनारूपी पवनों करके उडाये हैं तिन्होंके ऊपर जो दुःख आ पडते हैं सो कहनेको समर्थ नहीं होते हैं ॥९३॥ हे मंकि ! यह मनुष्य लोक भ्रांति करके युक्त भये विषयभोगोंके रसमें आसक्त भये हैं जैसे हाथ करके ताडन किये गर्दके गोले ऊपरको चढके नीचे पडते हैं तैसे यहां भोगोंको भोग करके नरकमें पडते हैं फिर कल्पांतर करके और देहांतर पा करके और जैसे हो जाते हैं ॥९४॥ हे मंकि ! यह संपूर्ण जगत्के भाव आपसमें असंग हैं जैसे वनमें पत्थर होते हैं इन्होंको एकत्र करके बंधन करनेको भावनाही संखली है ॥९५॥ हे मंकि ! विचारमात्रसे बंधकी तुच्छ वासनाभी नहीं है जैसे कठिन मार्गमें चलनेवालेको अपने हाथमें दीपकका उजाला करनेवालेको मार्ग सुगम होता है ॥९६॥ हे मंकि ! जितने यह देह, स्त्री, धन, पुत्रादिक जगत्के भाव हैं सो विचार करके सूखी रेतीके समान क्षणमें शिथिल हो जाते हैं ॥९७॥ हे मंकि ! संपूर्ण भावोंको मिथ्याही चैतन्यस्वरूपता मानी है जैसे स्वप्नके पर्वतोंको मिथ्याही पदार्थता मानी है ॥९८॥ हे मंकि ! पदार्थोंकी जो अपेक्षा (इच्छा) है सोही बंध है और उपेक्षा (नहीं इच्छा) है सोही मुक्ति है तिस उपेक्षामें जो विश्रांत भया है तिसने क्या पदार्थ चाहा है सो पूर्णकाम भया है॥९९॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी ! मंकिने इस प्रकार श्रवण करते हुए तिससे उपरांत अत्यंत बलवान् भी मोहको निःशेष करके त्यागकर दिया जैसे सर्प अपनी त्वचाको त्याग देता है ॥ १०० ॥ हे रामजी ! जैसा संसारप्रवाहमें कार्य आ जावे तिसको करते हुए तिसने संपूर्ण वासनाको त्याग करके शत वर्ष पर्यंत आत्मविचारकी समाधिमें स्थिति करी है ॥ १ ॥ सो मंकि अबतक पाषाणके बरोबर स्थिरता धारण करके अंतःकरणको शांत करके महायोगीश्वर भया है. हम लोक तिसके ध्यानमें अंतःकरणमें प्रवेश करके बोधन करते हैं तो सावधान होता है नहीं तो ध्यानमें मग्न रहता है ॥ २ ॥

इति मंकिप्रसंगः समाप्तः ।

हे रामजी ! जैसे आकाशमें वृक्षोंका वन नहीं है, जैसे रेतीमें तैल नहीं है; जैसे चंद्रमंडलमें बिजली नहीं है तैसे चित्तमें देहादिक नहीं हैं ॥ ३ ॥ हे रामजी ! जिस युक्ति करके बने तिस युक्ति करके अपने पुरुषार्थके यत्न करके वासनाको निर्मूल करे यही कल्याणका उपाय है ॥४॥ हे रामजी ! अपने पुरुषार्थके यत्न करके जैसे जानता है तैसे अहंकारके भावके अंशको निर्वाण करे यही वासनाक्षयका मूल है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! अहंभावके त्यागने रूपा पौरुष यत्नसे परे संसार तरनेकी और गति नहीं है. अहंभाव त्यागरूप ही वासनाक्षयका नाम कहा है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! घोर शोक प्राप्त भये संते कठिन संकटकी प्राप्तिमें दुर्गमस्थानमें क्रम करके जैसा स्थान समागम होवे तैसे लोकोंको परचाने वास्ते अंतःकरणमें दुःखरहित भया तूभी लोकोंके समान दुःखको मान ॥ ७ ॥ हे रामजी ! स्त्रियोंके समागम विषे और संसारदशामें और उत्सवोंके उदयमें वासना रहित मूढ पुरुषके समान आनंदका सेवन कर ॥ ८ ॥

हे रामजी ! मृत्युके कार्य युद्धादिकोंमें शत्रुरूपी प्राणिगणोंको वनकी अग्नि तृणोंके समान दयासे रहित जैसे होकरके क्रोधरूपी अग्नि करके वासनासहित मूढ पुरुषके समान दग्ध करता रहो ॥ ९ ॥ हे रामजी ! द्रव्यप्राप्तिके कार्योंमें क्रम करके भय और खेद करके रहित भया तू वासनासहित मूढ पुरुषके समान जैसे बगुला मछरी वास्ते ध्यान स्थित होता है तैसे द्रव्यकी प्राप्तिको विचारण कर ॥ १० ॥ हे रामजी ! दया करने योग्य दीन जनोंमें दया कर महात्मा पुरुषोंमें धैर्य और आदरको कर, अंतःकरणमें आत्मविचारके आनन्दसहित हुआ तू बाहिरके कार्योंको वासनासहित मूढ पुरुषके समान वर्तमान हो ॥ ११ ॥ हे रामजी ! अंतःकरणमें नित्य आत्माकी भावनासहित होने करके स्थित होवे तो तेरे ऊपर वज्रकी धारा पडे सो भी कुंठित हो जाती है ॥ १२ ॥ हे रामजी ! तेरे चित्तकी वृत्ति संकल्प त्याग करके लीन भई जैसे और बाहिरके कार्यमें आसक्त भई है तू अब और अंतःकरणमें अत्यंत सुप्त भये जैसे चित्त करके चिंताज्वरसे रहित स्थित हो ॥ १३ ॥ हे रामजी ! जो तू सुषुप्तिमें है तो जाग्रतकी समान हो जो जाग्रत है तो सुषुप्तिकी समान हो और जाग्रत सुषुप्ति दोनोंमें एक वृत्ति होवे तो निर्विकार होवेगा ॥ १४ ॥ हे रामजी ! तू इस जगत्को द्वैतभी नहीं जान और एक अद्वैतभी नहीं जान ऐसे निश्चय करके परम विश्रांतको प्राप्त हो आकाशके समान निर्मलचित्त हो ॥ १५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका वचन श्रीमुनि प्रति ।

हे मुनिश्रेष्ठ ! जो जगत् द्वैत भी नहीं है और अद्वैत भी नहीं है तो मैं राम हूं तू वसिष्ठ है ऐसी प्रतीति कैसे सो मेरे प्रति कहो ॥ १६ ॥

श्रीवाल्मीकिजी श्रीभरद्वाज प्रति कहते हैं ।

हे भरद्वाज ! श्री रामचंद्रजी ऐसा वचन कहे संते प्रश्नका उत्तर

कहनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी सबके प्रत्यक्ष प्रकट क्षणमात्र मौन करके तूष्णीं होते भये ॥ १७ ॥ तिस वसिष्ठजीके तूष्णीं स्थित होत संते अब कैसे उत्तर होवेगा ऐसे संशयसमुद्रमें सभाके लोक मग्न भये संते ॥ १८ ॥

श्रीरामचंद्रजी श्रीवसिष्ठजी प्रति कहते हैं।

हे मुनिश्रेष्ठ! तुम मेरे समान क्यों तूष्णीं स्थित भये हो ऐसा जगत्में कोई प्रश्न नहीं है जिसका उत्तर तुम्हारे मनमें नहीं स्फुरण होता है ॥ १९ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–हे रामजी! मैं कुछ कहनेकी अशक्यता करके युक्तिके क्षय करके तूष्णीं स्थित नहीं भया हूं किंतु इस प्रश्नकी कोटीका तूष्णीं होना उत्तर है तौभी तुम्हारे संशयकी निवृत्ति वास्ते कुछ उत्तर कहता हूं ॥ २० ॥ हे रामजी! दो प्रकारके प्रश्न करनेवाले होते हैं उसमें एक तत्त्वज्ञ होता है एक अज्ञानी होता है अज्ञानीको उसको समझने योग्य उत्तर देना और ज्ञानीको ज्ञानीके समझने योग्य उत्तर देना ॥ २१ ॥ हे रामजी! इतने काल तू तत्त्वज्ञानको नहीं जानता था तिससे विकल्पसहित उत्तरोंका अधिकारी था ॥ २२ ॥ अब तो तत्त्वज्ञानी भया है परमानंदमें विश्रांत भया है तिससे सविकल्प उत्तरोंका पात्र नहीं है ॥ २३ ॥ हे रामजी! पुरुष जैसी वृत्तिवाला होता है सो तैसे वचनको कहता है तिससे मैं तौ बानीसे परे परमपदमें विश्रांत भया हूं तौ अब तैसाही उत्तर कहने योग्य है ॥ २४ ॥ हे रामजी! जो पुरुष जीवताही शांतवृत्ति भया है व्यवहार करताभी मृतपुरुषकी समान जडवृत्ति जैसा है तिसको परमपदमें प्राप्त भयेको जानते हैं ॥ २५ ॥ हे रामजी! अहंताही परम अविद्या है निर्वाणपदका विरोध करनेवाली है तिसकरकेही मूढ पुरुष जानीया है सोही विक्षिप्त पुरुषकी चेष्टा है ॥ २६ ॥

हे रामजी ! ऐसा शरदृतुका आकाश नहीं शोभता है और गंभीर निश्चल भया क्षीर समुद्र भी नहीं शोभता है और पूर्णमासीका चंद्रमाभी ऐसा नहीं शोभता है ऐसा तत्त्वज्ञ पुरुष शोभता है ॥ २७॥ हे रामजी ! जैसे चित्रमें लिखी युद्ध करती सेनाका युद्ध क्षोभको नहीं करता है तैसे तत्त्वज्ञानी पुरुष व्यवहारको करताभी मोक्षको नहीं प्राप्त होता ॥२८॥ जो पुरुष इष्टप्राप्तिमें और अनिष्टप्राप्तिमें शांत होकरके व्यवहार करता है तोभी मृतपुरुषकी समान जिसके अंतःकरणमें व्यवहारका फुरना नहीं होता है सो निर्वाणसुखको अनुभव करता है ॥२९॥ हे रामजी! तिससे संपूर्ण कल्पनाके आश्रयको त्याग करके आकाशकी समान अंतःकरणमें व्यवहारकी शून्यताको सेवन कर व्यवहारका नहीं फुरनाही परम कल्याण कहा है इसका विस्मरण होना परम उत्तम पद है ॥३०॥ हे रामजी ! जो पुरुष परमतत्त्वमें विश्रांत भया है जिसको समदृष्टि भई है और रागद्वेषसे रहित भया है तिसको शांतता होनी और व्यवहार दोनों एक समान हैं ॥ ३१ ॥ अथवा इसको निर्वाणकी प्राप्तिसे शांतताही शेष रहती है जो मुनि निश्चय करके वासनारहित होवेगा सो व्यवहारको कैसे करेगा ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! जबलग तत्त्वज्ञानी पुरुषको निर्वाण पुष्ट नहीं भया तबलग सो व्यवहारको करता है और राग-द्वेष भयादिकोंका तिसको उदय होता है ॥३३॥ हे रामजी ! सोही ध्यान जानना अथवा समाधि जाननी जो अहंभावका नहीं फुरना है जो जड नहीं है तिन्होंको जडताकी समान निर्वाण सिद्ध होता है वह कैसा है समचित्तता शांतचित्तता सहित निर्विकार है ॥ ३४ ॥ हे रामादिक तत्त्ववेत्ताजी ! वाक्यसमूहके विस्तार करके प्रकट भये जो द्वैत मार्ग और अद्वैतमार्ग है तिनके भेदोंकरके भ्रमको प्रकट करनेवाले मतभेदोंके

करके दुःखकी प्राप्ति वास्ते मूढपुरुषोंकी समान खेदको मत प्राप्त होओ तुम तत्त्ववेत्ता होकरके भेददृष्टिको त्यागन करो ॥३५॥ तत्त्ववेत्ता पंडितोंकी संगति करके बुद्धिरूपी तलवारको तीक्ष्ण करके अज्ञानरूपी लताको तिल तिल प्रमाण करके खंडित करो॥३६॥ हे रामजी ! देहधारी जीवोंको दो रोग महाघोर हैं इस लोककी वांछा और परलोककी वांछा जिन रोगों करके यह जीव संपूर्ण पीडित भये महा घोर दुःखको भोगते हैं ॥३७॥ हे रामजी ! अज्ञानी जीव इस लोकके दुःख दूर करने वास्ते भोगरूपी दुष्ट औषधियोंकरके यत्न करते हैं जबलग जीवते हैं तबलग इहलोक वास्ते यत्न करते हैं और परलोकके सुख वास्ते यत्न नहीं करते हैं ॥३८॥ हे रामजी ! उत्तम पुरुष हैं सो परलोककी महाव्याधिकी चिकित्सा वास्ते शम और सत्संग आत्मबोधकी अमृतरूपी औषधियों करके यत्न करते हैं ॥३९॥ हे रामजी ! जो कोई अवश्य परलोकमें होनेवाली नरकरूपी व्याधिकी चिकित्साको यहांही नहीं करता है सो पुरुष जहां औषध नहीं मिले तहां परलोकमें जा करके क्या करेगा ? जैसे रोगी औषधमिलनेके स्थानमें चिकित्सा नहीं करे और जहां औषध नहीं मिले तहां जाकरके क्या चिकित्सा करेगा ? ॥४०॥ हे मूढजनो ! यह लोककी चिकित्सा करके आयुष्यको वृथा मत क्षीण करो आत्मज्ञानरूपी औषधोंकरके परलोककी चिकित्साको जल्दी करो ॥४१॥ यह आयुष्य पवन करके हलाये पीपलके पत्रके अग्रमें लगे जलबिंदुकी समान चंचल है इस कारणसे परलोककी नरकरूपी व्याधि हरने वास्ते यत्न करके जल्दी चिकित्सा करो ॥४२॥ परलोककी महाव्याधिकी यत्न करके चिकित्सा किये संते इहलोककी व्याधि आपही जल्दी नाशको प्राप्त होती है ॥४३॥ हे रामजी ! यह आत्मा भोगरूपी कीचडके समुद्रमें मग्न भया है

सो अपने पौरुषके चमत्कार करके नहीं तारा जावे तो तिसके तरनेका और उपाय कोई नहीं है ॥४४॥ हे रामजी ! जो पुरुष अपने मनको नहीं जीते है और आत्मज्ञानसे रहित है और भोगरूपी कीचडमें मग्न भया है ऐसा मूढ है सो आपदोंका पात्र होता है जैसे जलोंका पात्र समुद्र है ॥४५॥ हे रामजी ! जैसे जीवनेका पहिला भाग भोगपदार्थोंका त्याग है कैसा है वह त्याग राग, द्वेषकी शांतिको देनेवाला है॥४६॥हे रामजी ! अनेक सुखदुःखोंकी प्राप्तिमें जो पुरुष आत्मस्वरूपके विचारसे नष्ट नहीं होता है सो कदाचित्‌भी नष्ट नहीं होता है जो सुख दुःखोंकी प्राप्तिमें नष्ट होता है सो स्वरूप करके नष्ट होता है और शास्त्रोंके उपदेश करके क्या प्रयोजन है ॥४७॥ हे रामजी ! जिसको भोगोंमें इच्छाका उदय भया है तिसको सुख दुःखादिक वन है इच्छा करके फिर चिकित्सा नहीं बनती है पहिले इच्छा दूर करने वास्ते चित्तकी चिकित्सा करनी॥४८॥हे रामजी ! जो पुरुष भोगरसरूपी विषयको खाकरके तिसके स्वादमें दिनों दिन प्रीति करता है सो विनाशरूपी अग्नि प्रज्वलित भईमें अपने स्वरूपको अक्षय तृण बना करके तिसके बधावने वास्ते गेरता है ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! चित्तके समाधान करनेको इच्छाका त्याग करना कहा है जैसे इच्छा त्यागनेसे चित्त शांत होता है तैसे सैकडों उपदेशों करके नहीं होता है ॥५०॥ हे रामजी ! इच्छाका उदय होना जैसा दुःख है तैसा नरकमेंभी नहीं है इच्छाकी शांतिमें जैसा सुख है तैसा ब्रह्मलोकमेंभी नहीं॥५१॥ हे रामजी ! इच्छाके उदय होनेको चित्त नाम करके कहते हैं. इच्छाकी शांतिको मोक्ष कहते हैं इतनेमेंही शास्त्र हैं और तप और नियम और इसमेंही संपूर्ण होते हैं ॥५२॥ हे रामजी ! जो पुरुष इच्छाको शांत करनेमें यत्न नहीं करता है सो नरोंमें नीच

है अपने आत्माको आपही दिनों दिन दिन अंधकूपमें गेरता है ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! यह लोक अपने तरने वास्ते शास्त्रोंको और गुरुओंके उपदेशको क्यों चाहते हैं वृथाही चाहते हैं क्यों तिन्होंको इच्छाके त्यागनेसे विना आत्मचिंतनकी समाधि नहीं प्राप्त होती है ॥५४॥ हे रामजी ! जिसकी बुद्धि केवल इच्छा मात्र त्यागनेमें असाध्य भई है तिसको गुरुओंका शास्त्रोंका उपदेश व्यर्थ है॥५५॥ हे रामजी ! इच्छा त्याग विना एक क्षणभी जावे तिसके वास्ते चौरों करके लूटे पुरुषकी समान मेरी चोरी भई है ऐसे कहलावने योग्य है ॥५६॥ हे रामजी ! विवेकरहित आत्माकी जो इच्छाका पूर्ण करना सोही संसाररूपी वृक्षके पोषण वास्ते अखंड जलों करके सिंचन बना है ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! तत्त्वविवेकी पुरुष शास्त्रके विधिनिषेधोंका पात्र नहीं है जिसकी सर्व पदार्थोंकी इच्छा शांत भई है तिसको विधिनिषेधसे क्या प्रयोजन है॥५८॥ हे रामजी ! तत्वज्ञका यही लक्षण है जो इच्छाकी शांति होवे सो इच्छात्याग कैसा है सर्व लोकोंको आनंद करता है और अपनेको आत्माके स्वरूपके अनुभवको करता है ॥५९॥ हे रामजी ! जब दृश्य पदार्थको रसरहित जाना तब चित्त नहीं फुरता है तबही इच्छात्याग प्रकट होता है सोही मुक्तिका रूप है ॥६०॥ हे रामजी ! जो दुःखको सुखकी भावना होवे तो विषभी अमृतरूप होता है धीरबुद्धि पुरुष ऐसा निश्चय करके बोधको प्राप्त भया प्रसिद्ध कहा है ॥६१॥ हे रामजी ! तत्ववेत्ता पुरुषको इच्छा और अनिच्छा दोनों समान भई हैं और शांत भई हैं तौभी अनिच्छाके उदयको मैं परम कल्याणके उदय वास्ते मानता हूं ॥६२ ॥ हे रामजी ! चित्तका विषय भोगोंके चेतनेके सन्मुख होनाही रूप है तिसको चित्त कहते हैं सोही संसार है अथवा सोही इच्छाहै तिससेरहित होनाही मुक्ति है ऐसे जान

करके इच्छाकी शांतिको धारण करो ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! इच्छा- रूपी छुरी करके वेधे हुए हृदयमें शूल जैसी पीडा होती है जिसमें मणि मंत्र और औषध यह कुछ नहीं कर सकते हैं ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! योगीश्वर जो जन हैं सो आत्मज्ञानके फुरनेसे जगत्को आकाशकी समान शून्य करते हैं फिर आकाशकोही सत्ताके फुरने करके त्रैलोक्य करते हैं ॥६५॥ हे रामजी ! जैसे आकाशमें सिद्धोंके संकलपरचनाके अनेक नगर हैं तैसे चैतन्यरूपी आका- शमें हजारों सृष्टियां हैं ॥६६॥ हे रामजी ! तत्त्वज्ञ पुरुष अहंतासे रहित भया चैतन्यसत्ताकी एकतामें वर्तमान भया तिसको अणि- मादि अष्ट सिद्धियां सूखे हुए पत्रके बरोबर तुच्छही भासती हैं ॥६७॥ हे रामजी ! देवता असुर मनुष्यों करके सहित त्रैलोक्यमें सो वस्तु मेरेको दृष्ट नहीं होती है जो वस्तु पुरुषको लोभका एक रोममात्रभी अंशको करें ॥६८॥ हे रामजी ! अविचार करके अह- मस्मि अहंभाव है विचार करके अहमस्मि ऐसा अहंभाव नहीं है हे रामजी ! अहंभावको अभाव भये संते जगत् कहां है और संसार कहां है ॥६९ ॥ हे रामजी ! बुद्धिसे आदि लेकरके जगत् जिसके फुरनेमें नहीं है सो आकाशकी समान फुरनेसे शांत भया है उत्तम पुरुष तिसको मुक्त भया कहते हैं ॥ ७० ॥ हे रामजी ! संपूर्ण अर्थोंसे जिसका मन रहित भया सर्वात्मारूप होकरके जो स्थित भया है तिसको सर्व प्रकार करके सर्व कालमें निश्च शिवरूप चारों तरफ बना है ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष वासनारहित भया है भोगपदार्थोंके रससे रहित भया है और सर्व प्रकारकी इहलोक परलोककी इच्छासे रहित भया है तिसको वेदांतशास्त्र विना और विनोदके कारण निमित्त कौन हैं तिससे शास्त्रार्थका विचार सज्जनोंका सत्संग मुक्त भया है और निर्मल अंतःकरणवाले पुरुषको पदार्थोंके फुरनेका संबंध नहीं है यही

तत्त्वज्ञोंका स्वरूप हम लोकोंने माना है ॥ ७२ ॥ हे रामजी ! तत्त्वज्ञ पुरुषका स्वभावरूपी सूर्य जैसे २ स्थिर होता है तैसे तैसे भोगवासनाका अंधकार गलित होता है सत्य है असत्य है ऐसी प्रतीतिमें नहीं होता है ॥७३॥ हे रामजी ! यह जगत् विवेक और अविवेक करके प्रकाशमान और असत्यरूप है अविवेक करकेभी समान है और विवेक करके असत्य है ॥७४॥ हे रामजी ! विवेक करके पूजित किया यह आत्मा तत्काल महावरको देता है जिसके वरप्रदानमें विष्णु रुद्र इंद्रादिकोंकी पूजाके फल सूखे तृणके तुल्य भी नहीं होते हैं ॥७५॥ आत्माही परम देवता है सो विचार और सत्संग और शमादिक पुष्पोंकरके पूजन किया हुआ तत्काल मोक्षरूपी वरको देता है तिससे अपना आत्माही परमेश्वर है ॥ ७६॥ हे रामजी ! महात्मा पुरुषोंकोभी देवतापूजन, तप,तीर्थ और दान किये हुए अविवेकसे भस्ममें होमके समान वृथा होते हैं ॥ ७७ ॥ हे रामजी ! और जो विवेक देवपूजादिके श्रेष्ठ फलको करते हैं तो विवेककोही अंतःकरणमें सिद्ध क्यों नहीं करिये ॥७८॥ हे रामजी ! जिस तिस प्रकार करके विवेक अंतःकरणमें दृढताको प्राप्त करना जैसे जैसे फिर अनेक भ्रमोंकरके नाशको प्राप्त नहीं होवे है ॥७९॥ हे रामजी ! विचारवान् पुरुष जैसे मिले तैसे स्थित होते हैं जैसे बने तैसे जाते हैं जैसा बने तैसा कर्माकर्म करते मोक्षसिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ८० ॥ हे रामजी ! अथवा संतजन जो हैं सो सर्व त्याग करके शांत और उज्ज्वल भये हैं अंतःकरण जिन्होंका एक एकांतमें ही स्थित होवे चित्रमें लिखे जैसे आत्मचिंतनकी समाधिमें स्थित होवे ॥८१॥ हे रामजी ! जैसे जन्मसे अंधा पुरुष लोकोंसे सुन करके नेत्रसहित पुरुषके रूपके अनुभवको वर्णन करता है आप नहीं जानता है और अंतःकरणमें संतापको प्राप्त

होता है जसे अज्ञानी पुरुष निर्वाणको वर्णन करता हुआ आप नहीं जानता है संतापको प्राप्त होता है ॥ ८२ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष अज्ञानरूपी ज्वरसे मुक्त भया है बोध करके जिसका अंतःकरण शीतल भया है यही तिसका प्रकट लक्षण होता है जो भोगरूपी जल उसको रुचि नहीं करता है ॥ ८३ ॥ हे रामजी ! तुम चैतन्यसत्ताके आकाश बन जाओ परमानंदरसका पान करो संपूर्ण शंका त्याग करके स्थित हो जाओ और निर्वाण नाम आनंदवनमें स्थित हो जाओ ॥८४॥ हे रामजी ! चित्तरूपी भूमिकामें समाधिका बीज जो है सो संसारके निर्वाणसुख करके पडता है सो चित्त भूमिका कैसी है विवेकसहित है और जहां विवेकी जनोंका बन है तहां सो चित्तरूपी निर्वाणबीजको गाडने वास्ते शुद्ध और पुष्ट तरोतर करनेवाला और मधुर और अपनेको हित करनेवाला ऐसा बोधका अभ्यासरूपी अमृतजलों करके सिंचन करने योग्य है ॥८५॥ सो कौन है अमृतजल सत्संगरूपी नया क्षीर है चन्द्रमाके किरणोंकी समान शीतल है अंतःकरणसे संसारकी शून्यताको कर देते हैं और आनंद करके पूर्ण हैं और निर्मल हैं और अमृतकी समान शीतल हैं अमृतरूपी नहरसे प्रकट भये हैं ऐसे शास्त्रार्थरूपी उत्तम जल है और संसारकी निर्वाणशांतिको करते हैं ऐसे ध्यानरूपी रस है सो यत्न करके सेवने योग्य है ॥८६॥ हे रामजी ! उसका तपरूपी कमर कोट देना है और पदार्थ चितारूपी कांटे तोडने योग्य हैं और तीर्थोंमें विश्राम करनेरूपी वायु देने योग्य है ऐसे करनेसे निर्वाणका अंकुर उठ खडा होता है ॥८७॥ हे रामजी ! इसकी रक्षा करनेवाला माली गुरु शास्त्रको उपदेशवाला शीतल अंतःकरणवाला मुमुक्षु पुरुष है सो सतोष नामवाला आत्मतुष्टिको देनेवाली मुदिता नाम्नी स्त्री करके युक्त है ॥८८॥ हे रामजी ! और संपदारूप जो स्त्री

है सो तरंगोंकी फुरनेके समान चंचल है सोही पापकर्मरूपी घन-मंडलसे प्रकट भई भोगतृष्णारूपी बिजुली पडती है तिन करके निर्वाणवृक्ष दग्ध होजाता है॥८९॥ हे रामजी! निर्वाणवृक्षको सुखावनेवाले संसारकी आपदा और संपदा विघ्न हैं तिन्होंको दूर करने वास्ते धीरता और उदारता और जप स्नान दान ओंकारादि मंत्र और शिवजीके ध्यान करने करके विघ्न हटावने और निर्वाणवृक्षकी रक्षा करनी ॥९०॥ हे रामजी! इस प्रकार करके रक्षण किये ध्यान बीजमें विवेकरूपी अंकुर होता है सो अपनी शोभा करके प्रसिद्ध होता है समृद्धियुक्त होता है तिस अंकुरसे दो पत्र निकसते हैं एक शास्त्रविचार दूसरा सत्संग होता है, अंतःकरणकी स्थिरतारूपी इसका पेड निकसता है, संतोष करके विस्तारको प्राप्त होता है वैराग्यरस करके पूर्ण होता है शास्त्रार्थ और सत्संग और वैराग्यरस करके स्थूल होता है रागद्वेषरूपी वानरोंके शोभा करकेभी किंचिन्मात्रभी कंपायमान नहीं होता है ॥ ९१ ॥ हे रामजी! प्रकट वचन कहना और सत्य बोलना और सत्यरूप भासना और धीरता और निर्विकल्पता और समता और शांतता और मैत्री और करुणा और कीर्ति और विशालता और अधीनता ऐसे उत्तम गुणोंवाले पत्र जिन्होंकी ऐसी लता हैं जिन्होंका यश पुष्प है तिन करके युक्त होता है जैसे कल्पवृक्ष कल्पलतायुक्त होता है ॥ ९२॥ हे रामजी! ऐसे निर्वाणवृक्षको मुमुक्षुरूपी मुसाफिर छायामें आन बैठते हैं जिन्होंको दैवयोगसे पिछले प्रारब्ध कर्मरूपी यात्राकी मजल पूरी होती है और पुण्यकर्मों करके भोगोंविषैं विरक्तता होती है जैसे मुसाफिर मारवाडके स्थलोंमें विरक्त होता है॥ ९३ ॥ हे रामजी! अंतःकरणमें तत्त्वविचार करके पूर्ण भया है व्यवहारमें क्षीण भया कैसा है संसारकी वृत्तियोंमें सोया जैसा है अंतःकरणमें आनंद करके पूर्ण मन भया और इन्द्रियोंकी

विषयवासनामें मौनको प्राप्त भया ऐसा पुरुष विवेकवृक्षकी छाया-में स्थिति करनेको जाता है, विषयोंमें परम वितृष्णाको समाधान कहते हैं सो जिसने धारण किया है सो मनुष्यरूप करके परब्रह्म है तिसको नमस्कार करते हैं ॥ ९४ ॥ हे रामजी ! विषयोंसे अत्यंत तृष्णा जो त्यागनी है सो वज्रके समान अभेद्य और संपूर्ण वासना जालको पूर्ण करनेवाला वज्र नाम ध्यान कहा है तिस ध्यान करके और तत्त्वज्ञान करके भेद गलित भये संते तृण समान और ध्यान करके क्या कार्य है ॥ ९५ ॥ हे रामजी ! तत्त्व विवेकी पुरुष शास्त्रश्रवण पाठ करना जप करनेको अंतमें समाधिमें तत्पर होवे समाधिके अंतमें शास्त्र श्रवण पाठ जपोंको वृथा करे और कृत्यमें आसक्त नहीं हो ॥ ९६ ॥ हे रामजी ! बागबगीचोंमें पुष्प समूह करके शोभायमान वृक्ष लताके कुंज वनमें धूप गरमी रहित आनं-दयुक्त ऐसा विश्राम नहीं प्राप्त होता है जैसा संतजनोंके समाग-ममें होता है ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! वसंत ऋतु और नंदनवन और शरदृतुका पूर्ण चंद्रमा और स्वर्गकी अप्सरा इन सबका आनंद एक तर्फ होवे और संतोषरूपी अमृतका आनंद एक तर्फ होवे तोभी संतोषामृतके आनंद समान नहीं होता है ॥ ९८ ॥ हे रामजी ! द्रव्यका उपार्जन और रक्षा करनेमें महाकृपणता और दीनताको जानता भी है तोभी जो मूढ पुरुष द्रव्यमें इच्छाको धारण करता है सो मनुष्योंमें पशु है तिसको स्पर्श नहीं करना ॥ ९९ ॥ हे रामजी ! हे महाबुद्ध !! जो कोई परमेश्वरको चिरकालकी भक्ति करके दिनरात्र प्रसन्न करे तिसको परमेश्वर निर्वाणको देता है ॥२००॥ हे रामजी ! जो पुरुष मनके बाहिरके प्रारंभको और अंदरके आरंभको तृष्णात्यागरूपी शस्त्र करके छेदन करता है तिसको खेती छेदनेसे जैसे खेतीका क्षेत्र प्रकट देखा

जाता है तैसे इच्छा-द्वेष सुख-दुःख बुद्धि धृति महाभूत और अहंकार चित्त महातत्त्व इस प्रकारका क्षेत्र तत्त्वज्ञान करके प्रकट प्रतीति द्वारा प्रकाशमान होता है तिससे सो पुरुष क्षेत्रज्ञ होता है ॥१॥ हे महाबुद्धे ! हे श्रीरामचंद्रजी ! ईश्वर दूर नहीं है और दुर्लभ नहीं है महातत्त्वबोधही तिसका रूप है ऐसा अपना आत्माही परमेश्वर है ॥२॥ हे रामजी ! सो महात्मा प्रसन्न होता है सोही महादेव है सोही परमेश्वर है प्रसन्न होकरके विवेकरूपी दूतको प्रेरण करता है शुभ चरित्रों करके पवित्र जानता है ॥३॥ सो विवेकरूपी दूत इसको शुद्ध जान करके इसके हृदयरूपी मंदिरमें आत्मारूपी परमेश्वरको प्राप्त करता है तब आत्मा हृदयमें आनंद करके निवास करता है जैसे निर्मल आकाशमें चंद्रमा शोभता है ॥४॥ हे रामजी ! इस तत्त्ववेत्ता विवेकी पुरुषको विवेकके बलसे आत्माको हृदयमें स्थित करना और मोहनिद्राको त्यागना और वासनासमूहका मिल दूर करना और संसारकी वासनाका घन पिंजरा बोधमुद्गर करके तोड करके अपने स्वरूपानंदके उदयमें सावधान रहना अज्ञानी पुरुषकी समान जड नहीं होना उचित है ॥५॥ हे रामजी ! यह जो दश दिशाओंमें दृष्ट होता है मनुष्य और नाग और देवता असुर पर्वत गंधर्वादि नाम करके प्रसिद्ध हैं सो केते स्वप्न जागरणवाले हैं केते संकल्प जागरणमें हैं केते केवल जागरणमें हैं केते चिरकालसेजागरणमें हैं केते घने जागरणमें हैं केते जाग्रत स्वप्नमें हैं केते क्षीण जागरणमें हैं इसप्रकारके सातप्रकारके जीव हैं ॥६॥ हे रामजी ! कोई किसी कल्पमें किसी सृष्टिमें भये कोई किसी जगत्में भये केते पिछले कल्पमें सोये हैं अबलग जागे नहीं हैं ॥७॥ जो इस जगत्को स्वप्न जानते हैं तिन्होंको यह जगत् स्वप्न है तिन जीवोंको तू स्वप्न जाग्रत्‌में जान जीवनके कथाप्रसंगकी समान जीवते

हैं जीवनेका अभिमान जिन्होंको नहीं है सो जीवनेको स्वप्ना जानते हैं ॥ ८ ॥ जो पुरुष कहीं कल्पमें सो गये हैं और तिस सृष्टिमें तिन्होंको जो स्वप्ना भया है सो यह हमारी सृष्टिका व्यवहार है उन्होंके स्वप्नके मनुष्य हम हैं ॥ ९ ॥ हे रामजी ! किसी पिछले कल्पमें किसी लोकमें किसी देशमें कोई प्राणी निद्रारहित है केवल मनके संकल्पमें तत्पर है फिर तिस संकल्पके अतमें और संकल्पको करते हैं तिन्होंके संकल्पके पुरुष यह हम लोक स्थित भये हैं ॥ १० ॥ हे रामजी ! केते ज्ञानके अथवा योगके आदि सृष्टिमें सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माके साथ अवतारको प्राप्त भये हैं और ब्रह्माके दिनरूपी कल्पके आदि अंतमें उत्पत्ति विनाशरहित हैं और सृष्टिके प्रवाह करके जगत्में अरहटकी घडी सरीखे आय प्राप्त होते हैं पहिली सृष्टिके जन्मवाले हैं सो केवल जाग्रत अवस्थावाले हैं ॥११॥ हे रामजी ! जो जीव जन्मजन्मांतरको प्राप्त भये हैं अपने स्वभावके संस्कार करके पिछले जन्मजन्मांतरोंके ज्ञान करके सहित भये हैं किसी कार्य कारण करके संसारमें प्राप्त भये हैं आत्मज्ञानके प्रकाशको प्राप्त हैं सो चिरकालके जाग्रत्में हैं ॥१२॥ हे रामजी ! कोई प्राणी ज्ञानको प्राप्त भये हैं परंतु कोई दुष्ट कर्मके वेगसे वृक्षादिक जड-भावको प्राप्त भये हैं तौ भी अंतःकरणमें ज्ञान करके घनी जाग्रत् जैसी जिन्होंकी अवस्था है सो घन जाग्रत्में है ॥ १३ ॥ हे रामजी ! जो जीव शास्त्रार्थका विचार करके सत्संग करके बोधको प्राप्त भये हैं ऐसे तत्त्ववेत्ता हैं सो जाग्रत्को स्वप्नके समान देखते हैं सो जाग्रत् स्वप्नमें हैं और ज्ञानकी छठी भूमिकामें हैं ॥१४॥ हे रामजी ! जो बोधको भली तरहसे पा रहे हैं और परमपदमें विश्रामको प्राप्त भये हैं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिसे रहित हैं सो तुरीयावस्थामें हैं सो जीवन्मुक्त हैं ॥१५॥ हे रामजी ! यह सात प्रकार जीवोंका

भेद मैंने तुम्हारे प्रति कहा है कैसा है समुद्रोंके समान कहने जानेमें अगाध है इसको जानकरके अपने कल्याणमें सावधान रहो ॥१६॥ हे रामजी ! जितना स्थावर जंगम जड चैतन्य जगत्के पदार्थोंका समूह है और जैसे जाग्रत् अवस्थामें प्रतीत होता है जैसे स्वप्नमें नगरादिक असत्य प्रतीत होते हैं संपूर्ण केवल स्वप्नमात्र हैं तैसे यह केवल चैतन्यही परमाकाशरूप है ॥१७॥ हे रामजी ! इस प्रसंगमें एक मेरेसे पाषाणाख्यान कथाप्रसंगको श्रवण करो वह कैसा है कथाके रसवाला है पहिले मैंने देखा है आश्चर्यरूप है और प्रसंगके योग्य है ॥१८॥ हे रामजी ! मैं किसी कालमें अत्यंत विरक्त भया त्रिलोकीमें अनेक प्रकारके विक्षेपोंकरके व्याकुल भया मनमें चिंतन करता हुआ दूर देशमें विक्षेपरहित स्थानमें आकाशके कोणमें सुंदर कुटियां बना करके दृढ समाधिमें स्थित भया ॥१९॥ शत वर्षसे उपरांत समाधिसे जाग्रत् भया तिस कालमें प्राणायाम उतार करके जाग्रत् अवस्थाके ज्ञानके अंशको मैं प्राप्त भया तब अहंकार नामा प्रसिद्ध पिशाच इच्छारूपी अंगना करके सहित देहरूपी घरमें आय प्राप्त भया. ज्ञानके अंशके लयको प्राप्त करता भया जैसे उग्र पवन वृक्षको उखाड देता है ॥ २० ॥

श्रीरामजीका प्रश्न—हे ब्रह्मन् ! तुम सदा निर्वाणके उदयसहित हो ऐसे तुमकोभी अहंकार नाम पिशाच बाधा करता है यह मेरेको संदेह भया है तिसको शांत करो ॥ २१ ॥

श्रीवसिष्ठजीका वचन—हे रामजी! अहंभाव विना ज्ञानीकी क्या अज्ञानीकी देहस्थिति आधार विना नहीं बनती है ॥ २२ ॥ हे रामजी ! अज्ञानीसे विश्रांत चित्तवाले ज्ञानीके इस विशेषको तू श्रवण कर जिसको श्रवण करके तेरा अहंभाव पिशाच शांत

होवेगा ॥२३॥ हे रामजी ! यह अहंकार पिशाच असत्य है तोभी अज्ञानरूपी बालकने कल्पित किया है तिसकरके स्थित रहाहै॥२४॥ हे रामजी ! अज्ञानभी सत्य नहीं है विचारवाले पुरुषको देखने मात्रसे क्षीण होता है जैसे दीपवालेसे अंधेरा दूर होता है॥२५॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी पिशाचनी जैसे जैसे विचारपूर्वक देखी है तैसे तैसे लीन होती है ॥२६॥ हे रामजी ! यह अज्ञान छठे मनसहित पांच इंद्रियोंके स्वरूपवाला है और इंद्रियोंकरके प्रत्यक्ष स्वरूपकरके साकार प्रतीत होता है तिस साकारका निराकार किस प्रकारकरके कारण होता है कैसा है निराकार छठे मनसहित पांच इंद्रियोंकी गोचरतासे परे है ॥२७॥ हे रामजी ! संकल्परूपी आकाशमें जो कुछ वृक्षादिक अथवा संपूर्ण आकाशादिक दृष्ट होता है सो संकल्पही तिस रूपकरके प्रतीत भया है तिस संकल्पके पदार्थमें पदार्थसत्ता नहीं है॥२८॥ हे रामजी ! इसी प्रकार करके चैतन्यरूपी आकाशमें जो सृष्टिसे आदि जगत्का अनुभव होता है सो शून्यरूपी आकाशमें सृष्टिकी अखंड स्थिति संकल्पसेही भासती है वास्तव नहीं है ॥२९॥ हे रामजी ! ऐसी भावना स्थित भये संते सृष्टि कहां है और अविद्या कहां है और अज्ञानकी मूढता कहां है ॥३०॥हे रामजी ! मैंने आत्मविचारकरके संपूण प्रशांत और चित्तसत्ता करके परिपूर्ण और आनंदघन ब्रह्म जाना है तहां अहंकारादिक कहां है इस प्रकार करके संपूर्ण निष्फल जाना है तिससे अहंकार वर्त्तमान है तोभी शरदृतुके घनघटाकी समान निष्फल जाना है ॥३१॥ हे रामजी ! जब मैं सौ वर्ष समाधि करता भया तिस कालमें प्राणायामके वेगकरके एक शब्द होता भया तिस शब्दके करनेवालेको जाननेवास्ते चिदाकाशकी धारणामें स्थित होकरके तिस चिदाकाशकी धारणामें अनेक सृष्टि आपसमें भिन्न भिन्नलक्षणवा-

लियोंको देखता भया तिनोंमें एक सुंदरीको आर्याछन्द पढतीको देखता भया ॥३२॥ हे मुने ! यह संसारकी प्रतीति असत्यही प्रतीत है और चैतन्यतासे रहितही मोहवालेको व्याप्त होती है इसको अवलंबन करके जैसे कोई आकाशमें नृत्य करे तैसे भ्रमती भई तुम्हारेको बुलावती हूं ॥३३॥ हे रामजी ! ऐसे कहती तिस स्त्रीका अनादर करके मैं फिर चिदाकाशकी धारणा करता भया तहां चिदाकाशकीसत्तामें मैं प्रलयादिकको देखता भया ॥३४॥ तिस चिदाकाशमें रुद्रोंके अनेक सहस्र और ब्रह्माकी अनेक शतकोटी और विष्णुके अनेक लक्षोंको और कल्पोंकी कोटि पद्माको प्रलयको प्राप्त भयेको देखता भया ॥३५॥ तिसको कहीं सूर्य विनाही दिन रात्रि ज्ञानसे रहित भूलोकमें कल्प युग वर्ष मर्यादारहित जगत्के उदय अस्तको देखता भया ॥३६॥ तिसमें मेरे समान वसिष्ठ नामवाले ब्रह्माके पुत्र अनेक मुनीश्वर मेरेसे भी उत्तम मैंने देखे हैं॥३७॥ तहां अनेक ब्रह्माण्डोंमें जगत्के लक्षोंमें अनेक नामरूपको धारण करते अनेक प्राणी देखे हैं ॥३८॥ तहां मैंने चंद्रमाके बिंब गरमी सहित देखे हैं और सूर्यबिंब शीतल देखे हैं और विष खानेकरके जीवते देखे हैं और अमृत पान करके मृत होते देखे हैं और पत्र पुष्पोंकरके शोभितवृक्षोंके वन आकाशमें देखे हैं और रेतियोंके पीडनेसे तैल घृत निकसते देखे हैं और पाषाण शिलामें कमल उदय होते देखे हैं ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! चिदाकाश कैसा है अंतरसे रहित है आकाशकाभी परम आकाश है अंतसे रहित है उदयसे रहित है जिसमें अनेक चिंताओंकी संख्यासे रहित है और अनेक जगत सृष्टिओंसे रहित है ॥४०॥ हे रामजी ! तहां एक एक आकाश प्रति अनेक संसारोंके मंडल हैं तिन संसारमंडलमें अनेक लोक हैं और तिन्होंमें अनेक द्वीप हैं

तिन द्वीपोंमें अनेक पर्वत हैं और तिन पर्वतोंमें अनेक देश हैं तिन देशोंमें अनेक ग्राम और नगर हैं ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! तिन्होंमें एक एक प्रति अनेक और अनेकोंमें और अनेक कल्प और अनेक युगोंके सहस्र देखे हैं ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! जेते जीवतत्त्व ज्ञानसे रहित हैं और मोक्षको प्राप्त नहीं भये हैं सो सबही जो जो मृतभये हैं सो तिन सृष्टियोंम सबही अनेकप्रकारके वर्त्तमान हैं ॥४३॥हे रामजी ! इस कारणसे सो संपूर्ण संसार आपसमें भिन्न भिन्न हैं और अपने अपने प्रवाहरूप करके अखंड वर्त्तमान है ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! तिन्होंके अंदर जो जीव हैं तिन्होंमें एक एक प्रति एक एक मन है और एक एक मन प्रति एक एक जगत् है और एक एक जगत् प्रति अनेक अनेक मन हैं ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! इस प्रकार करके यह जगत्का भ्रम आदिअंतसे रहित है सो ब्रह्मवेत्ता जनोंके पक्षमें संपूर्ण ब्रह्महीं है इसकी संख्याकी मर्यादा नहीं है ॥ ४६ ॥ हे रामजी! इस प्रकार करके मैं चिदाकाशमें अनेक प्रकार करके संसारके भ्रमको देखता रहा हूं सो विद्याधरी स्त्री मेरे पास स्थित रही है तिसको देखकरके मैंने कहा तू कौन है यहां क्यों आई है और कहां तेरा स्थान है सो कहो ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! तब सो विद्याधरी कहती भई हे मुने! लोकालोकपर्वतकी उत्तर दिशाके किनारे पहिले शृंगकी शिलामें संसार है तिसमें एक ब्राह्मण है तिसकी मनसे कल्पना करी मैं स्त्री हूं सिद्धियुक्त हूं सर्व और सर्वसिद्धि मती मेरा नाम है तिस ब्राह्मणने मेरे विषे विरक्ति करी है तिसको विरक्त भयेको देखकरके मैंभी विरक्त भई हूं तेरे पास प्राप्त भई हूं ॥ ४८ ॥ हे मुने ! सो मेरा भर्त्ता वेदोंके अर्थको एकांतमें चिंतन करता है संपूर्ण विषयभावनासे रहित भया है कालकरके जगत्के आने जानेको नहीं जानता है ॥४९॥ हे मुने ! तिससे मेरा भर्त्ता

तत्त्ववेत्ताभी है परंतु केवल वेदोंके अर्थ मात्रही विचारता है आत्मचिंतनसे रहित है इससे परमपदको प्राप्त नहीं भया है तिससे मैं और मेरा भर्त्ताभी हम दोनोंही यत्न करके परमपदको चाहते हैं ॥५०॥ हे मुने ! ब्रह्मन् ! तिससे मैं तुम्हारी प्रार्थना करती हूं तिसको तुम सफल करनेको योग्य हो महात्मा पुरुषोंविषे प्रार्थना निष्फल नहीं होती है ॥५१॥ हे मानको देनेवाले ! मैं अनेक सिद्धोंकी मंडलियोंमें भ्रमती भई तुम्हारे पास आई हूं तेरे विना संसारदुःखको निवारण करनेवाला मेरेको प्रतीत कोई नहीं भया ॥५२॥ हे मुने ! संतजन अपने कार्यके निमित्त विनाही अर्थिजनोंकी वांछाको पूर्ण करते हैं तिससे मैंभी शरणागत भई हूं मेरा अनादर करनेको तुम योग्य नहीं हो ॥ ५३ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी ! शिलामें संसार कैसे होवे इस आश्चर्यकरके व्याकुल भया मैं तिस विद्याधरीके साथही इस संसारको लंघ करके लोकालोकाचलके शिखरकी शिलाको प्राप्त होकरके विद्याधरीको मैंने पूछा यहां संसार कहां है ॥५४॥ विद्याधरी कहती है हे मुने ! यह हमारेको जगत् पहिले बना है सो मेरेको प्रकट प्रतीत होता है जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब होता है तैसे अंतःकरणमें प्रतीत होता है ॥५५॥ हे मुने ! यह अंतःकरणमें संकल्पकी कथारूपी चिरकालसे पीडा वृथा ही उदय भई है इस करके आत्मसुख निर्मलभी है और विशालभी है तोभी विस्मृत भया है ॥५६॥ हे मुने ! तिससे यह संसार भ्रम जडरूपी अन्तःकरणमें संकल्पके अभ्याससे प्रतीत भया है और जो शुद्ध चैतन्यमात्र आकाशरूपी है तिसके चिंतनका जो अभ्यास है तिसके आनंदका जो रस है तिसकरके पुरुष तद्रूप होता है तो संकल्प फुरनेकी अवधि हो जाती है॥५७॥ हे मुने ! जो शुद्ध चैतन्य सत्ता

करके आनंदरस नहीं होवे तो शास्त्रोंकरके संन्यास करके कुछ नहीं होता है आत्मचिंतन विना जो आनंदरस होता है सो नहीं भये जैसा है तिससे शुद्ध चित्कलाचिंतनके अभ्यासको करे॥५८॥ हे मुने ! तू सबका गुरु है मैं तेरी शिष्या हूं और अबला हूं और बाला हूं मैं तेरेको देखती हूं और तू मेरेको नहीं देखता है तू सर्वज्ञ है तोभी तू मेरेको नहीं देखता है यह अंतःकरण शिला जैसा जड है इसमें संकल्पके अभ्याससे प्रपंच विस्तारको प्राप्त भया है ॥५९॥ हे मुने ! अभ्याससे अज्ञानीभी तत्त्ववेत्ता होता है और जडभी कार्यको करता है जैसे बाण भी अभ्यासे निशानेको जाय लगता है यह संपूर्ण अभ्यासका विलास है ॥ ६० ॥ हे मुने ! पुण्यभी अभ्यास विना निष्फल होता है और संपूर्ण कलाभी अभ्यास विना निष्फल होती हैं भाग्यभी निष्फल होते हैं तिससे अभ्यास कदाचित् निष्फल नहीं है ॥ ६१ ॥ हे मुने ! जिसने अभ्यास त्याग दिया है सो इष्टवस्तुको कदाचित्भी नहीं प्राप्त होता है, जैसे वंध्या स्त्री अपने पुत्रको नहीं प्राप्त होती है ॥ ६२ ॥ हे मुने ! अभ्याससे असाध्यभी सिद्ध होते हैं शत्रुभी मित्र होते हैं विषभी अमृत होता है यह अभ्यास नामा सूर्य लोकमें प्रकाश भये संत वनम समुद्रम क्या दूर देशांतरमें स्वर्गादिकमें नहीं है जो अभ्यास करनेवाले महावीर पुरुषको सिद्ध नहीं होवे ऐसा कोई नहीं है अभ्याससे लोकमें भयभी अभयरूप होता है अभ्याससेही संपूर्ण पर्वताकी निर्जन कंदरामें निर्भय निवास होता है ॥ ६३ ॥ हे मुने ! तिससे प्राचीन संस्कारसे बोधकी धारणाका अभ्यास करनेसे जगत् तेरेको शिलाम कमलकी समान असंभववाला प्रतीत होवेगा ॥ ६४ ॥ हे मुने ! प्राचीन वासनाके अभ्याससे यह जगत् शिलामें कमल जैसा प्रतीत होता है और

बोधके अभ्यास विना असत्य प्रतीत नहीं होता है तिसके बोधका अभ्यास अवश्य करने योग्य है ॥ ६५ ॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी ! तिस विद्याधरीने ऐसा युक्तियुक्त वचन कहे संते तिससे उपरांत मैं पद्मासन बांधकरके समाधिके अभ्यासमें उद्यत होता भाया ॥६६॥ हे रामजी ! केवल चैतन्यमात्रकी एकांतभावना करके संपूर्ण पदार्थोंकी भावनाको त्यागनेसे जितना जो नाममात्र अहंभाव था तिस अहंभावके अभ्यासको मैं त्यागन करता भया ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! तिसको सत्यरूप एक आत्माकी एकांत दृढ भावनाके अभ्याससे समाधि स्थिर होती भई अहंभावकी भ्रांति अस्त होती भई ॥ ६८ ॥ इससे उपरांत जब मैंने अपने आत्माका निर्मल प्रकाश देखा तब मेरेको आकाश और अहंभाव शिलामें कमलकी भ्रांति जैसा लयको प्राप्त होता भया केवल परम ब्रह्मस्वरूप प्रतीत होता भया ॥६९॥ जैसे स्वप्नेमें अपने घरमें महाशिला दृढ होती है सो केवल अपने अंतःकरणका चैतन्यही तद्रूप भया है शिला तहां कोई नहीं है तैसे यह संपूर्ण विश्व शुद्ध चैतन्यही है सो तद्रूप प्रतीत भया है ॥७०॥ हे रामजी ! अपने संकल्पका फुरनाही आतिवाहिक शरीरकरके प्रत्यक्ष पहिले कहा है सोही मायाकरके सत्यरूप सर्वत्र व्याप्त होता है तिसकोही तू आधिभौतिक शरीररूप भयेको जान ॥७१॥ हे रामजी ! यह आधिभौतिक देह आत्मविचारकरके कुछ नहीं प्रतीत होता है जैसे मारवाडके थलमें सूर्यकी किरणोंकरके समुद्र जो प्रतीत होता है सो अपने चित्तकी भ्रांतिही तद्रूप प्रतीत होती है वास्तव विचारसे मिथ्या प्रतीत भई है ॥७२॥ हे रामजी ! सबका आदि और सत्य और प्रत्यक्ष प्रतीत ऐसे आत्मविचारके सुखकोत्यागकरके जो कोई असत्यरूप औरभ्रमकरकेमध्यमेंही प्रतीत भये कल्पनामात्र सुखको दृढता मानकरके मग्न भया

है सो प्रत्यक्ष प्राप्त भये शीतल जलको त्याग करके रेतीकी चमकमें भ्रांतिकरके प्रतीत भये जलकरके तृप्तिको चाहता है॥७३॥हे रामजी! जो सुख क्षणमें नष्ट होवे और क्षणमात्रही अनुभव होवे है सो दुःखरूपही है जो सुख स्वभावकरके है और आदिअंतमें एक जैसा है सोही सुख कहा है ॥७४॥ हे रामजी!जिसमें प्रत्यक्षही असत्यता प्रतीत होवे तिसमें सत्यता और अखंड आनंदता कहांसे होवेगी जो वस्तु असत्य सामग्रीकरके सिद्ध होवे सो सत्य कहांसे होवे॥७५॥ हे रामजी!जहां प्रत्यक्षही स्वभाव प्रतीत होवे है तहां अखंड सुखकी क्या वार्त्ता है जहां हाथी वहि जाते हैं तहां भेंढके बहिनेकीक्यागिनती है ॥७६॥ हे रामजी ! यह परमात्मा सर्वत्र एक जैसा निरंतर व्याप्त भया है और बोधरूप है और चैतन्यरूप है तिसको जानने विना जो कोई असत्यरूप और तुच्छ सुखवाले पदार्थमें दृढ मान रहे हैं सो मूढ पुरुष हैं और तृण समान रूप हैं और कपटी हैं तिन्होंकी संगति नहीं करनी ॥७७॥ हे रामजी ! ऐसा विचार करनेके उपरांत चैतन्यमें प्रतिबिंबित भये जगत्में विद्याधरीके साथही मैं प्रवेश करता भया तब विद्याधरी ब्रह्मलोकमें प्राप्त होकरके मेरेको कहती भई ॥ ७८ ॥

विद्याधरीका वचन—हे मुने! यह ब्रह्मा मेरेको विवाह करने वास्ते प्रकट करता भया. मैं वृद्ध भी हो गई तोभी नहीं व्याही गई इस कारणसे मैं विरक्त भई हूं तिससे तू मेरे व्याहके कारण ब्रह्माको बोधन कर ॥ ७९ ॥

श्रीवसिष्ठजीका वचन—हे रामजी ! सो विद्याधरी ऐसा कहकरके ब्रह्माको कहती भई हे स्वामिन् ! वसिष्ठ मुनि तुम्हारे घर आया है इसका आदरसत्कार करो ऐसा कहकरके ब्रह्माको समाधिसे उठाकरके सावधान करती भई ॥ ८० ॥

तब श्रीब्रह्माजीका वचन—हे वसिष्ठजी ! तुमने इस विश्वको हाथमें आमलक फल जैसा साररहित देखा है और तुम बोधरूपी अमृतके समुद्र हो तुम्हारेको यहां आनेसे सुख होवे तुमको कुशल है ॥८१॥ हे वसिष्ठजी ! तुम बहुत दूर मार्गसे चलकरके आये हो और तुम मार्गके खेदको विश्रामकरके दूर करो और यहां आसनपर बैठो ॥८२॥

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रामजी ! तिससे अनंतर मैं आसन ऊपर बैठा ब्रह्माजीने देवगणोंकरके मेरी पाद्यादिक पूजा कराई तब मैंने ब्रह्माजीको प्रश्न किया हे भगवन् ! तुम भूत भविष्यत् वर्त्तमान कालज्ञानके स्वामी हो यह विद्याधरी तुम्हारेको बोध करनेवास्ते मेरेको क्यों प्रेरणा करती है और कहती है हे वसिष्ठजी ! तुम अपनी वाणी करके ज्ञानकरके ब्रह्माजीको बोधन करो ॥८३॥ हे महाराज ! तुम सब भूतोंकेईश्वर हो संपूर्ण ज्ञानकेपारकोदेखनेवाले हो तुमने यह विद्याधरी विवाह वास्ते प्रकट करी ऐसा यह कहती है तो तुमने व्याही कैसे नहीं है यह विरक्त भई कैसे भ्रमती है इसका कारण कहो ॥८४॥

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—हे मुने ! जैसा वृत्तांत भया है तिसको तू सुन मैं सबही कहता हूं जिससे संतजनोंके आगे सबही सत्य कहने योग्य होता है ॥८५॥ हे मुने ! आदि सबका एक परब्रह्म है सो जन्मसे रहित है और शांत है जीर्ण होनेसे रहित है किंचिन्मात्र है कहनेमें चिंतन करनेमें श्रवण करनेमें देखनेमें नहीं आवे है और सत्तामात्ररूप है और चैतन्यमात्र है तिस चिन्मात्रस्वरूपका एक चैतन्यका अंशमात्ररूप मैं जगत्में कथन मात्रही हूं ८६॥ सो मैं भी पहिले आकाशरूपी हूं अपनी स्वरूपसत्तामें सदा रहता हूं मेरे आगे सृष्टि होती है तो मेरेको स्वयंभू कहते हैं ॥ ८७ ॥

वास्तव विचारसे मैं उत्पन्न नहीं भया न कुछ देखता हूं चिदाकाशरूपी मैं चिदाकाशमेंही रहता हूं ॥८८॥ जो कुछ हम हैं तुम हो ऐसा जो आपसमें कहना है सो जैसे तरंगके आगे और तरंग कहा जाता है तैसे वृथा कहना मात्र है वास्तव नहीं है ऐसी मेरी मतिका विचारना है ॥ ८९ ॥ हे मुने ! ऐसे रूपवाले शुद्ध चैतन्यरूपको कालके वेगसे मैं हूं यह मेरी है ऐसी वासना उदय भई है परंतु आत्मस्वरूप विचारनेसे नहीं उदय भई जैसी है ॥९०॥ हे मुने! सो अहंभावकी वासना है तिसकी भ्रांति जगत्की स्थिति करके सिद्ध भई है तिसका स्वरूप यह विद्याधरी है यह विद्याधरी अपनी वासनाके वेगसे मैं ब्रह्माकी घरवाली हूं ऐसे भावको प्राप्त भई है यह आपही अपने भावकरके वृथा दुःखको प्राप्त भई है जिस कारणसे यही मेरे अंतःकरणकी वासना है ॥९१॥ हे मुने ! अब मैं चिदाकाशरूप भया हूं तिससे अब चिदाकाशरूपकी स्थितिको ग्रहण करना चाहता हूं तिससे अब विश्वके क्षयका काल प्राप्त भया है ॥९२॥ हे मुनींद्र ! अब महाप्रलयका समय प्राप्त भया है अब मैंने वासनारूपी इस विद्याधरीको त्यागनेका प्रारंभ किया है तिससे यह मेरे विचारसे रसकरके वर्जित भई है अब इसको मैं नहीं चाहता हूं ॥९३॥ हे मुने ! अबही कल्पका अंत प्राप्त भया है और महाकल्प ब्रह्माका प्रलयकाल सोभी प्राप्त भया है अब मेरी वासनाका अंत प्राप्त भया है और मेरा देह आकाशमें लय होवेगा ॥९४॥ हे वसिष्ठ ! तिससे अब तूभी अपने आसनमें अपने ब्रह्मांडको चला जा और शांतिको प्राप्त हो और जैसे अहंकार बुद्धि आदि मनसहित इंद्रियां हैं सो सबही अपने अपने स्थानको जावें हम अब ब्रह्मपदको जाते हैं ॥९५॥ हे रामजी ! सो ब्रह्मा भगवन् ऐसा कहके ब्रह्मलोकवासी जनोंकरके सहित पद्मासनको

बांधकरके समाधिमें स्थित होता भया ॥९६॥ हे रामजी ! ओंकारकी तीन मात्रा हैं उदात्त अनुदात्त स्वरित नामवाली हैं. चौथी अर्द्ध मात्रा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिवाली है और अर्द्धमात्रा तुरीया अवस्था है सृष्टिस्थितिलयरूप है आनंदरूप है ब्रह्मा, विष्णु रुद्र जिन्होंके देवता हैं, चौथीकी देवता ईश्वर है ॥ ९७ ॥ सो ब्रह्मा तीन मात्रासे परे चौथी अर्द्धमात्राके अंतमें ध्यानावस्था करके स्थित होता भया संपूर्ण मनकी वासना मनसहित लीन होती भई जैसे चित्र लिखा होता है तैसे निश्चल होता भया और अहंभावकी वेदना शांत होती भई ॥ ९८ ॥ हे रामजी ! सो वासनारूपी विद्याधरी तिसके ध्यानमें शांत होती भई संपूर्ण अंशोंकरके सहित आकाशकी समान शून्य होकरके शांत होती भई ॥९९ ॥ हे रामजी ! जब संकल्प करके ब्रह्मा रहित होता भया तब मैंभी सर्वव्यापी अनंत चैतन्याकाशरूप होकरके पृथिवीको देखता भया ॥२००॥ तब पृथिवीमें मनुष्यलोक अपने वर्णाश्रम धर्मसे रहित भये केवल अन्नकी उपजीविका वास्ते खेती व्यापार सेवाको करने लगे और देश नगर ग्राम सबही संपदासे रहित भये शृगाल और चोर भयकरके उजाड हो गये ॥१॥ और स्त्रियां अपने कुलकी मर्यादाको और पतिव्रताधर्मको त्यागकरके केशोंका शृंगार करके वेश्याके धर्ममें वर्तमान होती भई और राजे लोग प्रजापालनरूपी राजधर्मको त्याग करके केवल द्रव्यके संग्रहमें प्रवृत्त होते भये ॥२॥ हे रामजी ! सबका आचार शूलकी समान दुःखको बधावनेवाला होता भया और प्रजाके राजोंकी बिगाड करके पीडित भई जैसी दुःखरूपी शूलकरके व्याकुल होती भई और स्त्रियां शूलकी समान महा कठिन अधर्म मर्यादामें वर्त्तमान होती भई और राजे शूलकी समान महा उग्र दंड करने और अभिमान

करके संतजनोंके अनादरमें प्रवृत्त होते भये ॥ ३ ॥ हे रामजी ! इस प्रकारके औरभी जगत्के नाश होनेके निमित्त महा उत्पात होते भये मैंने देखे हैं ॥४॥ हे रामजी ! तिससे उपरांत संहारभैरव संपूर्ण ब्रह्मांडको निगलकरके महाविशाल आकाशमें कालरात्रिके साथ नृत्य करता भया और डिम डिम करके डमरू बजावता भया॥५॥ हे रामजी ! तिससे उपरांत कालरात्रि महाभैरवमें लीन होती भई सो महाभैरव परमात्मामें लीन होता भया ॥६॥ हे रामजी ! तिससे उपरांत मैंने सूक्ष्म दृष्टिकरके तिस अहंकाररूपी शिलामें अनेक वृक्षोंमें एक एक प्रति अनेक पत्र देखे तिन वासनारूपी पत्रोंमें अनेक संकल्परूपी तृण देखे तिन तृणोंमें अनेक जगत् देखे हैं ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जो कुछ निर्मल शुद्ध सात्त्विक बुद्धिकरके दृष्ट होता है तिसको तीन नेत्रोंकरके शिव देखनेको भी समर्थ नहीं होता है और इंद्र सहस्र नेत्रोंकरके देखनेको समर्थ नहीं है ॥ ८ ॥ हे रामजी ! इससे उपरांत तिस संसारका प्रलय देखकरके अपने चित्तके फुरणोंकरके यत्नसे मैं पिछले संसारमें हठकरके चला आया तहां आकरके तिस संसारमें आकाशकोणकी कुटियाको प्राप्त भया ॥९॥ हे रामजी ! तहां अपने देहको ध्यानावस्थाकरके जड भयेको जब देखने लगा तबही तहां एक शुद्धस्वरूप एकांत बैठे और समाधिमें स्थित भये सिद्धको देखता भया सो सिद्ध मेरे हठ करके आवनेको चिंतन करता भया और मृत भये अपने शरीरको त्यागकरके स्थिति करता है तिससे उपरांत जब मैं तहां रहनेके संकल्पको त्यागकरके अपने स्थान प्राप्त होनेको प्रवृत्त भया तब मेरी कल्पना करी कुटिया नष्ट भई सो सिद्धभी आश्रय विना सात समुद्रसे परे दिव्य पृथिवीमें पतित भया तब मैंने तिसकी समाधि उतारने वास्ते अहिनकी वर्षा करनेवाले बादलकी समान

गर्जना करी तब तिसकी समाधि उतरी फिर मैंने तिसको प्रश्न किया ॥ १० ॥ हे सिद्ध ! तू कौन है और कहांसे आया है ऐसा वचन सुनके तिस सिद्धने ध्यानकरके संपूर्ण वृत्तांत जानकरके मेरे प्रति वचन कहा ॥ ११ ॥

सिद्धजीका वचन–हे मुने ! मैंने अब तुमको पहिचाना है मैं तुमको वंदना करता हूं तुम्हारेको पहिले नहीं जाननेका अपराध मेरेसे भया है तिस अपराधको आप क्षमा करो संतोंका क्षमाही स्वभाव है ॥ १२ ॥ हे मुने ! मैं देवताजनके नगरके बागबगीचेमें बहुत भ्रमा हूं तिन्होंमें भोगवासना मोहित करती है जैसे भ्रमर कमलवनमें भ्रमण करता है तैसे मैंभी भोगवासनाके तिन्होंमें बहुत काल भ्रमण करता भया परंतु शांति नहीं भई ॥ १३ ॥ हे मुने ! संसारसमुद्रमें दृश्य पदार्थोंकी वासनारूपी तरंगोंकरके मैं बहुत व्याकुल भया कालके वेगकरके दुःखी भया जैसे चातक वर्षाके विना व्याकुल होकरके दुःखी होता है॥१४॥इस संसारमें शब्दमात्रा रूपमात्रा रसमात्रा स्पर्शमात्रा गन्धमात्रा परे और कुछ पदार्थ नहीं हैं एतन्मात्रमें मैं क्यों प्रीतियुक्त विलास करूं ॥ १५ ॥ इस सबही चित्कलामात्र आकाशमें हैं अथवा चित्कलारूप हैं चिन्मात्रा विना संपूर्ण असत्यरूप है इसमें नष्टबुद्धि पुरुषकी समान किस अर्थके वास्ते प्रीतिको करता हूं ॥ १६ ॥ इसमें जो विषय हैं सो विषके बरोबर विपरीत रसवाले हैं और स्त्रियां कामके मोह देनेवाली हैं इसके संपूर्ण रस अन्तकालमें उलटे दुःखरूपी रसको देते हैं इनमें आसक्त भया कौन पुरुष नहीं मरा है ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह देह कैसा है समुद्रमें बुदबुदेकी समान जल्दी नष्ट होनेवाला है इसके आगे पीछे मृत्यु रहता है जैसे दीपकी शिखाके साथ पवन रहता

है ॥१८॥ इसमें बडे चतुर विषयवासनारूपी महाशत्रु चौर रहते हैं सो सबही इसकी आयुषरूपी सर्वस्वको हरते हैं इसवास्ते मैं सदा जागरणको करता हूं मोहरूपी निद्राकरके सो नहीं रहता हूं ॥१९॥ हे मुने! दिन दिनकरके इसकी आयुषाके भाग कालकरके चले जाते हैं तिनको वारंवार चले जातेको कोई पुरुष नहीं जानता है ॥२०॥ यह मेरेको आज प्राप्त भया है यह फिर मेरेको आज मिलेगा ऐसी कल्पनामें लगा भया लोग गत भयेको प्राप्त भये कालके वेगको नहीं जानता है ॥ २१ ॥ भोगोंके समूह भोगे हैं सो चले जाते हैं तिन्होंकी अनित्यताको नहीं जानता है इसमें शांति प्राप्त कहींभी नहीं होती है ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं विक्षिप्त पुरुषकी समान सुमेरुपर्वतके बगीचेकी पृथ्वीपर्यंत भ्रमा हूं और इंद्रादिक दश लोकपालोंकी पुरियोंमें अच्छी तरहसे फिरा हूं मेरेको अखंड सुख कहीं नहीं मिला है ॥२३॥ हे मुने! जहां देखे तहां सर्वत्र काष्ठके वृक्ष हैं और प्राणी सर्वत्र मांस रक्तके देखे हैं पृथ्वी सर्वत्र मृत्तिकाकी देखी है और सर्वत्र दुःख और अनित्यता देखी है यह कहो किसमें स्थिरताका विश्वास बने है॥ २४ ॥ हे मुने! कालकरके व्याकुल भये लोकको धन मित्र, और बांधव रक्षा करनेको समर्थ नहीं हैं ॥२५॥ हे मुने! मेरेको सुंदर स्त्रियांभी प्रिय नहीं हैं और उत्तम संपदाभी प्रीति नहीं करती है और स्त्रीके चतुर कटाक्षकी समान चंचल जीवनाभी रुचिको नहीं करता है ॥ २६ ॥ हे मुने! यह शरीर पुराने पत्तोंके बरोबर गिरनेवाला है और तिसका जीवना सूखे हुए पत्तोंके बरोबर गिरनेवाला है और बुद्धि अधीरताकरके ग्रहण करी है और विषयरस सबही रसकरके रहित हैं॥२७॥ हे मुने! तिससे आज मेरा मोह भया है और देह पुराने मंदिर जैसा उदासीनताको प्राप्त भया है अब इन्होंकी अवस्था जो करनी सोही

उत्तम अवस्था है और इन देहादिकोंकी अवस्था करनीही नीचली अवस्था है ॥२८॥ हे मुने ! इस संसारमें ऐसा मानना आपदा यह आ भई है वह आपदा कैसी है महामोहको बढावनेवाली है और नित्यप्रति ऐसाही मानने योग्य है और संसारमें आसक्त नहीं होना ॥२९॥ हे मुने ! यह विषयरूपी विषके पवन हैं वह कैसे हैं चित्त-रूपी कमलपुष्पसे विवेकरूपी सुगंधीको हरकरके मूर्च्छाको कर देते हैं ॥३०॥ हे मुने ! चित्तरूपी बाण हृदयसे छूट करके विषयरूपी निशानेको धायकरके प्राप्त होते हैं और उत्तम गुणोंको स्पर्श नहीं करते हैं जैसे कृतघ्न पुरुष उत्तम गुणोंको स्पर्श नहीं करते हैं और दोषोंको ही ग्रहण करते हैं ॥३१॥ हे मुने ! आयुष उत्पात पवनके समान चली जाती है जो मित्र हैं सो शत्रुरूप हैं और भाई बंधुलोक बंधनरूप हैं और धनही मृत्युका रूप है ॥३२॥ हे मुने ! संसारके सुख दुःखदरूप हैं संसारकी संपदा परम आपदा है और संसारके भोग महारोगोंके रूप हैं और प्रीति जो है सो अप्रीति करनेवाली है ॥३३॥ हे मुने ! कालके अनेक प्रकारके उलट पलट होते हैं और इष्ट जो हैं सो अनिष्ट होकरके प्राप्त होते हैं और प्रेमवाले जनोंके वि-योगोंको देखकरके मेरा मन जजर जैसा होता है ॥३४॥ हे मुने ! ये जो भोग हैं सो विषयोंके भोगनेसे हैं जसे सर्पोंकी फणा हैं किंचित् मात्र स्पर्श करनेसेभी दंश करके मारते हैं और भली तरह विचारयुक्त देखनेसे नष्ट होते हैं ॥३५॥ हे मुने ! भोगोंकी आशाकरके जो पुरुष बांधे गये हैं तिन्होंका पद पदमें अनुमान होता है जैसे वनके कामक-रके मत्त हाथी हथनीको देखतेही बांधे जाते हैं तिन्होंको कामभो-गतृष्णाकरके बंधन होता है॥३६॥हे मुने! संपदा और स्त्रियां तरंगोंके संग बराबर क्षणभंगुर हैं ऐसा कौन चतुर पंडित पुरुष है जो सर्पके

फणकी छायामें प्रीति करता है ॥३७॥ हे मुने ! ये विषय कैसे हैं देखनेमें अच्छे हैं परंतु देहविनाशसमयमें दुःख देते हैं जैसे अपक्वअन्न भोजन करके लोक पीडाको प्राप्त होते हैं तैसे भोगोंसे नरकको प्राप्त होते हैं ॥३८॥ हे मुने ! धन कैसे हैं सुख दुःखके मूल हैं और क्षयको प्राप्त होनेवाले हैं ज्ञानरहित मूढ पुरुषोंकरके सेव्यमान हैं यह मेरेको प्रीति नहीं करते हैं ॥३९॥ हे मुने ! और यौवनकी संपदा कैसी है शरदृतुके बादलके समान जल्दी जानेवाली है अंतमें दुःख देनेवाली है चिरकाल संताप करनेवाली है ॥४०॥ हे मुने ! यह मनुष्यके जीवनेकी आयुष हाथ लिये जलके समान क्षणमें अंश अंशमात्र चलनेकरके गलती जाती है फिर नदीमें वहे जल सरीखी फिरती नहीं है ॥४१॥ हे मुने ! मन शांत भये संते आत्मस्वरूपमें विश्रांत होनेसे जो सुख होता है सो पाताल स्वर्ग पृथिवी लोकके भोगोंमें नहीं होता है ॥ ४२ ॥ हे मुने ! बहुत दीर्घ काल करके अहंकाररहित होनेसे अपनी शुद्ध भई बुद्धिकरके स्वर्ग और मोक्षकी तृष्णाका त्याग मैंने धारण किया है॥४३॥हे मुने ! यह वृत्तांत मैंने तुमको वर्णन करके सुनाया है जो मैं हूं और जैसी मेरी स्थिति है सो मैंने कहा है अब जैसा तुम जानते हो तैसा करो ॥४४॥ हे मुने ! सिद्ध पुरुषने आत्मविचारमें तत्पर होकरके और उत्तम बुद्धि करके वास्तव वस्तुका विचार जबलग प्रमाण नहीं करा तब लग त्रिकाल ज्ञानीभी हैं तौभी दृढ निश्चयको नहीं करते हैं यह ब्रह्मादिदेवताजनोंके मनका स्वभाव है ॥४५॥ हे रामजी ! तब मैंने कहा है—हे सिद्ध मुने ! निश्चय दृढ हृदयमें नहीं होना यह अविचारका अपराध है केवल तुमकोही नहीं है यह अविचारका अपराध स्वभावमें भी तुल्य है जिस कारणसे यह कुटिआ मेरी है तेरे चिरकाल रहने

वास्ते नहीं स्थिर करी है ऐसा अविचार मेरेमेंभी है ॥ ४६ ॥ हे रामजी! इसके उपरांत मैंभी और वह सिद्धभी अपने अपने चाहे देशको चले जाते भये॥ ४७॥ हे रामजी ! यह महारामायणमात्र शास्त्रके केवल देखनेसे अंतःकरणमें सब पदार्थोंमें शीतलता उदय होती है जैसे बर्फमें शीतलता होवे है ॥४८॥ हे रामजी ! चित्तकी शीतलता मोक्ष है चित्तकी संतप्तता बंधन है जिसको इतना भी अर्थका ज्ञान नहीं है यह लोकोंकी मूढता महा आश्चर्यरूप है ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! यह लोक अपनी प्रकृतिकरके विषयोंके वश हैं परस्त्री परधनमें लोभसहित हैं इनको ससारके पदार्थोंका उपदेश नहीं करना यह यथायोग्य अर्थ विचारसे सुखी होता है और मुक्त होना चाहे तो सत्संग शास्त्रविचारसे सदा सुखी होवे॥५०॥

इति पाषाणोपाख्यानम्।

वसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी ! जो पुरुष इस प्रकार दृढ निश्चय करता है कि मैं चिदाकाशमात्र हूं ऐसी भावना स्थिर होत संते भावे वज्रपात होवे भावे प्रलयकी अग्नि लगे तिन्होंका दाह पुष्पवृष्टिके कमलवनकी समान शीतल होता है ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! मैं चिन्मात्र नहीं और मैं अमर नहीं मैं नष्ट होता हू ऐसा जो रोवे है तिसको पहिला किया उपदेश सब भस्मके बिखेरने तुल्य है ॥५२॥ हे रामजी ! मैं चिन्मात्र हू और अमर हू मैं नष्ट नहीं होता हूं ऐसे भाववाले पुरुषको उपदेश किया अमृतकी वर्षाके तुल्य होता है ॥५३॥ हे रामजी ! सो वस्तु नहीं है जो सत्य नहीं है, सो वस्तु नहीं है जो संसारमें वृथा नहीं है जैसे जिसको निर्णय भया है तिसको तैसाही दृढ भाव होता है ॥५४॥ हे रामजी ! नष्टबुद्धि पुरुष जो है सो भोगरूपी अग्निमें भले प्रकार दग्ध होते हैं जैसे दैवयोगसे पर्वतमें अग्नि लगनेसे पर्वतके वृक्ष

दग्ध होते हैं ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! भोगी पुरुष जो हैं सो खान-पानादिक भोगपदार्थोंके कीचडमें पडे हैं जैसे विक्षिप्त पुरुष दुर्गंधि मलमूत्रवाले कुंडमें पड जाते हैं ॥ ५६ ॥ हे रामजी ! यह पुरुष केवल अन्नके कणके खातर दिन रात्रि पडे भ्रमते हैं, पुरुष पिपीलिका समान तुच्छ वृत्तिवाले हैं ॥५७॥ हे रामजी ! सबही दिशाओंमें अनेक प्रकारके प्राणी हैं परंतु तत्त्वबोधकरके युक्त कोई विरले प्राणी हैं जैसे वृक्ष सबही फलपुष्पों करके अनेक पृथिवीमें देखे हैं और कल्पवृक्ष कहीं विरले हैं ॥५८॥ हे रामजी ! पराया चित्तरूपी महासमुद्र है सो अनेक तर्क वितर्करूपी तरंगों-करके चंचल है तिसके ठहरानेको किनारेमें स्थितपर्वतके समान संतजन समर्थ होते हैं ॥५९॥ हे रामजी ! बुद्धिको नाश करनेवाली महाआपदामें और चित्तके अनेक तर्क कुतर्कोंकी व्याकुलतामें और महादुस्तर संकटोंम संतजनोंको तारनेकी गति संतजन ही हैं ॥ ६० ॥ हे रामजी ! ऐसा मनमें दृढ नहीं करना कैसा है मेरेको विचार करके क्या अर्थ है जो होना है सो मेरेको होवे ऐसी कल्प-नाधार करके गढेमें कीडेके समान उद्यम पुरुषार्थसे रहित नहीं होना ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! गुणोंके और दोषोंके समझनेके अर्थ बालपनेसे लेकर जैसे बने तैसे ही शास्त्रके प्रसंग करके बुद्धिको बढ़ावे ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! दोषक्लेशको त्याग करके सज्जनोंकी संगतिको करे जिन करके निर्वाणपदकी प्राप्ति नहीं होवे ऐसे दोषोंको और गुणाकोभी यत्न करके क्रमसे त्याग देवे॥६३॥ हे रामजी! नीचसंगति करके उत्तम वस्तु पदार्थ अधमरूपको प्राप्त होता है और स्थिर पदार्थ चंचलताको प्राप्त होता है जैसा प्रसंगमिले तैसाही स्वभाव होता है और साधुजन असाधुजनके स्वभावको प्राप्त होता है ॥६४॥ हे रामजी ! यह महाआश्चर्य है जो साधुजन

दुष्टजन जैसा होवे देशकालके वशसे पापी पुरुषोंके संगसे पुण्यात्माभी पापी पुरुष होता है जैसे देशकालके प्रभावसे लोकोंमें आश्चर्यरूपी उत्पात भी होते हैं ॥६५॥ हे रामजी ! सब ही काम त्याग करके सज्जनोंकी संगति करे यही दुःखदायी कर्मोंको दूर करनेका उपाय है इस सत्संग करके इहलोक और परलोकको सिद्ध करनेका साधन करने योग्य है ॥६६॥ हे रामजी ! सज्जन पुरुषसे कदाचित् दूर नहीं रहे बहुत प्रेम विनंति करके सज्जन पुरुषकी सेवा करे सज्जन पुरुष और वृक्ष एक स्वभाववाले होते हैं जैसे उत्तम वृक्षके पुष्पोंकी रेणु जिसको लगे तिसको सुगंधियुक्त करती है तैसे सज्जन पुरुषकी संगति करके नीच पुरुषको भी सज्जनता होती है ॥६७॥ हे रामजी! सत्संगवाला पुरुष समाधि करने विनाभी समाधानको प्राप्त होता है महादुःख होवे तोभी महा सुखको प्राप्त होता है और व्यवहार करे तोभी मौन धारनेके फलको प्राप्त होता है कर्म करे तोभी कर्मबंधनसे रहित होता है ॥६८॥ हे रामजी ! जो पुरुष ज्ञेय वस्तु परमात्माको जानते हैं सो निर्मलचित्त होते हैं सोही संतजनोंके भावको जानते हैं जैसे सर्पके चरणोंको सर्पही जानते हैं ॥६९॥ हे रामजी ! जो उत्तम पुरुष हैं सो अपने अंतःकरणके भावको गुप्त करते हैं चिह्नको उत्तमसेभी उत्तम जानना जिस कारणसे चिंतामणि पाषाणकी कीमत बजारके लोकोंसे नहीं होती है तैसेही उत्तमजनोंके भावको जाननेवाले कोई विरले उत्तम जन हैं ॥७०॥ हे रामजी ! एकांतमें रहना और अभिमानरहित होना और पदार्थ संग्रहसे रहित होना और लोकोंकी स्तुति विनतीसे रहित होना यह उत्तम जनोंके गुण उत्तमजनोंको जैसा आनंद करे हैं तैसे जगत्की आप संपदा आनंद नहीं करती है॥७१॥हे रामजी!

अहंकारवाले पुरुषोंको यह इच्छा रहे है कि लोक मेरे उत्तम गुणोंको जाने और लोक मेरी पूजाको करे ऐसी वासना निरंतर रहती है जो अहंकाररहित हैं तिन्होंको यह वासना नहीं होती है इससे वे अपने भावको छिपा रखते हैं॥७२॥हे रामजी ! जिसको संपूर्ण जगत तृणसमान होता है किंचित् गर्दके किणके समानभी प्रीति करती है तिसको जगत्के पदार्थ करनेकी इच्छा कहांसे होवेगी ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! तत्त्ववेत्ता पुरुष अपने देहमें प्राप्त भये शीतवातादिक दुःखोंको पराये देहके समान अनादरसे देखता है ॥७४॥ हे रामजी ! जो पुरुष तत्त्ववेत्ता है सो निर्मल सात्त्विक बुद्धिरूपी ऊंचे शिखरपर चढा है आपसे कैसे रहता है और शोच करने योग्य अज्ञानी पुरुषोंको संसार समुद्रमें मग्न भयेको देख करके दया करके शोच करता है जैसे पर्वतमें स्थित भया पुरुष पृथिवीमें स्थित जनोंको नीचे स्थानमें देखता है सो उनको तुच्छ जानता है तैसे तत्त्ववेत्ता पुरुष संसारी लोकोंको देखता है तृणसमान तुच्छ जानता है ॥७५॥ हे रामजी ! तत्त्ववेत्ता पुरुष शांतिको प्राप्त होनेसे आत्मयोगसे प्राप्त भई अष्ट सिद्धिको मानता नहीं है ॥ ७६ ॥ हे रामजी ! आठ प्रकारकी योगसिद्धियां हैं सो कौन हैं—अणिमा १ महिमा २ गरिमा ३ लघिमा ४ प्राप्ति ५ प्राकाम्य ६ ईशित्व ७ वशित्व ८ यह आठ प्रकारका ऐश्वर्य है। अणुरूप हो १ पर्वतसमान विशाल होना २ पर्वतसमान भारी होना ३ रुई समान हलका होना ४ सर्व देशमें प्राप्त होना ५ अपनी कामनाका स्वरूप और पदार्थको प्राप्त होना ६ त्रैलोक्यका ईश्वर होना ७ सबको अपने वश करना ८ सो तत्त्ववेत्ताको तृण समान होती है दूसरे पुरुषमें देख करके मनमें आश्चर्य नहीं मानता है ॥ ७७ ॥ हे रामजी ! इस प्रकारकी और भी सिद्धियां हैं। कोई पर्वतकी कंदरामें सिद्ध हैं कोई पवित्र आश्रमोंमें सिद्ध हैं

और कोई गृहस्थाश्रममें सिद्ध हैं कोई बहुत भ्रमनेमें सिद्ध हैं कोई भिक्षाटन करके सिद्ध हैं कोई केवल जपसे सिद्ध हैं कोई मौनसे सिद्ध हैं कोई ध्यानसे सिद्ध हैं कोई पंडिताईसे सिद्ध हैं कोई शास्त्र-श्रवणसे सिद्ध हैं कोई राज्य करके सिद्ध हैं कोई मूढवृत्तिके समान सिद्ध हैं कोई गुटिका करके सिद्ध हैं कोई आकाशमें उडनेसे सिद्ध हैं कोई कलाशास्त्रसे सिद्ध हैं कोई दीनरूप करके सिद्ध हैं कोई आचार त्यागनेसे सिद्ध हैं कोई वेदपाठ करके सिद्ध हैं कोई विक्षिप्त होयकरके सिद्ध हैं कोई संन्यास धारण करके सिद्ध हैं परंतु अविद्याकी शांति किसीको नहीं होती है ॥७८॥ हे रामजी ! तुमको महारामायण श्रवण करके अविद्याकी शांति भई है तो भी निरंतर अभ्यास करने विना भली तरहसे नहीं होती है ॥७९॥ हे रामजी ! तिससे असत्य शास्त्रोंके विचारसे निवृत्त होना उत्तम शास्त्रके विचारसे शांति प्राप्त होवेगी जैसे रणलीला करनेसे जीत प्राप्त होती है ॥ ८० ॥ हे रामजी ! इस शास्त्रके विना कल्याणको देनेवाला और उपाय न भया है और न होवेगा तिससे परम उत्तम बोधके वास्ते इसी शास्त्रको विचारण करो ॥८१ ॥ हे रामजी ! वासनाके त्यागके विना आत्माका उद्धार करनेको कोई और उपाय समर्थ नहीं है तिससे यत्न करके वासनाका त्याग करना ॥ ८२ ॥ हे रामजी ! जो जगत्‌के भाव सत्य विद्यमान होवे तो नाशसे रहित होवे तिससे सब जगत्‌के भाव ससेकी शृङ्गके समान असत्य ही हैं ॥८३॥ हे रामजी ! संपूर्ण भावोंकी तृष्णा त्यागनेसे संपूर्ण साधन करनेकी समाप्ति होती है तिससे समाधान करके चित्त सिद्ध होता है सोही निर्वाणकी प्राप्ति है ॥ ८४ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष शांत इच्छावाले हैं और बोध करके वासनारहित भये हैं तिन्होंको चाहे विनाभी निर्वाण प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ हे रामजी ! बोधकी यही

अवधि है जो तृष्णारहित होना और तृष्णा निवृत्त नहीं होवे तो पंडिताईभी मूर्खताईसी है ॥८६॥ हे रामजी ! हजारोंमेंभी हजारोंसे कोई एक पुरुषार्थके उद्यमको करता है तिससे वासनाके जालबंधनको छेद करके संसारसे मुक्त होता है जैसे पिंजरेको तोड करके शेर निकसता है ॥ ८७॥ हे रामजी ! सोही शास्त्रका श्रवण है जो ज्ञानको देवै सोही ज्ञान है जिससे समदृष्टि होवे सोही समदृष्टि है जिससे सुषुप्ति अवस्थाके समान जगत्‌मेंभी एकाग्रता होवे ॥८८॥ हे रामजी ! समदृष्टि जो पुरुष हैं तिन्होंको महाघोर सुखदुःख विस्तार करके होवे तोभी एकरूप आनंदसे उदासीनता नहीं होती है ॥८९॥ हे रामजी ! राजा शिबि समदृष्टि करके कबूतरकी रक्षाके वास्ते अपना मांस प्रसन्न मन हो करके बाज नामा पक्षीको छेदन कर देता भया ॥ ९० ॥ हे रामजी ! तैसे राजा जनक संपदा करके संयुक्त अपनी नगरी दग्ध भये संते समदृष्टि करके शोकको नहीं करता भया ॥९१ ॥ हे रामजी ! तैसे मातंगनामा समदृष्टि करके परोपकार वास्ते अपना देह त्यागनेसे उत्तम विमानपर चढ करके परमपदको जाता भया ॥९२ ॥ हे रामजी ! तैसे बालचंद्रनामा मुनि समदृष्टि करके गुडके लड्डूके समान प्राप्त भई अग्निको खा लेता भया ॥ ९३ ॥ हे रामजी ! तिससे समदृष्टिवाला तत्त्ववेत्ता पुरुष मरणको और जीवनको नहीं चाहता है जैसा मिले तैसा आचरण करता हुआ रागद्वेषसे रहित विहार करे ॥९४॥ हे रामजी ! जबलग आरबला है तबलग देह सावधान विचारता है तिससे ऐसे विचार करके जैसे बने तैसे एकाग्र वृत्ति करके विचरते रहना और किसीसे प्रयोजन क्यों करता है ॥ ९५॥ हे रामजी ! जो कोई अपने वर्णाश्रमके कर्म क्रियाके क्रममें त्यागकरके तूष्णींभावको धारण करे तो यह देह कर्मसे खाली नहीं रहता

है तिससे स्वतंत्रता करके विपरीत कर्ममें प्रवृत्त होवेगा तब लोकमर्यादा क्षीण होवेगी तिस कारणसे सत्कर्म करनेमें दोष नहीं मानना ॥ ९६॥ हे रामजी! कर्म त्यागनेवाले लोकोंके समाजमें नहीं रहते हैं जहां स्वप्नमेंभी लोक देखनेमें न आवे ऐसे महामूढ मृग जहां रहते हैं ऐसे वनमें लगे रहते हैं ॥ ९७ ॥ हे रामजी! केते पुरुष आधा ज्ञान पाकरके आधे मार्गको करके जैसे आधी सोई आधि जाग्रत् बुद्धिवाले ज्ञानके और ध्यानके गर्व करके कर्मको त्याग देते हैं सो पुरुष इहलोक परलोकसे भ्रष्ट होते हैं ॥९८॥ हे रामजी! चित्तको चिंतवनसे रहित कर केवल आत्मसत्ताके चिंतनमें प्राप्त करके समान वृत्ति करके सुखसे स्थित होकरके परब्रह्मरूपी परम आकाश रूपको धारण कर ॥९९॥ हे रामजी! तुम परमार्थको प्राप्त भये हो और रागद्वेषादि दोषोंसे रहित भये हो ऐसे समबुद्धि भये हो और आनंद करके उदितमन भये हो ऐसे तुम महात्माजनोंकेभी महात्मा हो अब शोकसे रहित हो और निःशंक हो और एक आत्मस्वरूप भयेहो और जन्ममरणसे रहित ऐसे परम पवित्र परम निर्वाणपदमें स्थित हो जाओ ॥४००॥ हे रामजी! अब तुमको ज्ञानके बोध वास्ते और अधिक वचन विस्तार करके क्या प्रयोजन है यह हमने तुमको सब ज्ञानशास्त्रका आदि शिरोमणि सार ज्ञान उपदेश किया है इस करके तू सववेत्ता भया है और पूर्णज्ञानी भया है ॥ १ ॥

श्रीवाल्मीकिजीका वचन–हे मुनिश्रेष्ठ! वसिष्ठजीने ऐसा वचन कह करके तूष्णीं भये संते श्रीरामचंद्र सर्व प्रकारकी इच्छासे रहित होते संते संपूर्ण सभाके जनभी ध्यानमें एकाग्र होते भये सबही विशालबुद्धि करके ब्रह्मपदमें विश्रांत होते भये जैसे भ्रमर गुंजार शब्द करके कमलपुष्पके वनमें रसपान करनेमें प्रवृत्त होता

है ॥२॥ हे भरद्वाज ! मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी निर्वाणप्रकरणकी कथा समाप्तिका मंगलाचरण करते भये तब संपूर्ण सभाके लोक शांतवृत्ति भये और निर्मल अंतःकरण होते भये और निर्विकल्प समाधिकी अवस्थाको प्राप्त होते भये ॥ ३ ॥ हे भरद्वाज ! तिस कालमें संपूर्ण आकाशचारी और स्वर्गवासी सिद्धजनोंके मुखसे जयशब्द और स्तुतिशब्द होते भये और सभामें स्थित विश्वामित्रादि मुनियोंके मुखसे भी पूर्ण भावनासे स्तुति शब्दवाली वाणियां प्रकट होती भई ॥ ४ ॥ हे भरद्वाज ! तिस कालमें महा उत्सवके कोलाहल शब्दकरके संपूर्ण दिशा पूर्ण होती भई, परदेका प्रतिशब्द अत्यंत मधुर होता भया जैसे पवनकरके छिद्रद्वारकरके पूर्ण भये कीचक जातीके बांसोंसे मधुर शब्द होते हैं ॥ ५ ॥ और आकाशमें स्थित भये सिद्धजनोंके जयशब्द होते भये और देवतोंके नगारेके शब्द होते भये और पुष्पोंकी वर्षाको देवता करते भये ॥ ६ ॥

सिद्ध स्तुति करते हैं-हे मुने ! ब्रह्माके कल्पके प्रारंभसे लेकरके सिद्धोंके समाजोंमें हजारों मोक्षके उपाय सुने हैं और कहेभी हैं परंतु महारामायणरूपी मोक्षके उपाय बरोबर कोई नहीं है ॥७॥ वसिष्ठमुनिजीके वचनके विलासकरके प्रकट भये इस महारामायणरूपी मोक्षके उपाय करके पशु पक्षी स्त्रियां बालक और सर्पकीटादिक सबही परमानंदको प्राप्त भये हैं॥८॥श्रीवसिष्ठजीने युक्ति करके और दृष्टांतोंकरके और न्यायकरके जैसे श्रीरामचंद्रजीको बोध करा है तैसा साक्षात् निकटवर्ती अपनी स्त्री अरुंधतीकोभी बोध नहीं करा है ॥ ९ ॥ इस मोक्षोपाय कथा करके पशुयोनिभी निर्विकार स्थितिको पाकरके मुक्त होवेगा और अधिकारी जो मनुष्य हैं सो कैसे मुक्त नहीं होवेंगे ॥ १० ॥ इस ज्ञानरूपी अमृतको कर्णरूपी

अंजलियोंकरके पान करनेसे संपूर्ण लोक नई सिद्धिकी संपदाको प्राप्त भये हैं ॥११॥

विश्वामित्रजीका वचन–अहो इति महा आनंद भया है वसिष्ठमुनिजीके मुखसे परम पवित्र ज्ञान हमने सुना है इसके श्रवण-से हम हजार गंगास्नानके फलको प्राप्त भये हैं ॥१२॥

नारदजीका वचन–जो हमने ब्रह्मलोकमें नहीं सुना है और स्वर्गमें और मनुष्यलोकमें नहीं सुना है सो ज्ञान आज हमने सुना है आज हमारे कर्ण पवित्रताको प्राप्त भये हैं ॥१३॥

राजा दशरथजीका वचन–हे वसिष्ठ ! मैं अपने शरीर-करके स्त्रियोंके संयुक्त और इहलोकमें और परलोकमें सुख देनेवाले पुण्यकरके और राजकरके अपने भृत्यलोकसहित संपदाके देनेकरके तुम्हारी पूजा करता हूं ॥१४॥

श्रीवसिष्ठजीका वचन–हे राजन् ! हम ब्राह्मण लोक केवल प्रणाम मात्रसे प्रसन्न होते हैं सो तुमने हमको प्रणाम करी है और पूजाकी वांछा नहीं है ॥ १५ ॥

श्रीरामजीका वचन–हे मुने ! पूजा करनेमें तुमने हमको निरुत्तर किया है तिससे मेरेमें भी प्रणाममात्र सार है इससे तुम्हारे चरणकमलोंको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १६ ॥ श्रीरामचंद्रजी ऐसा कहकरके पुष्पोंकी अंजली लेकरके वसिष्ठजीके चरणकमलोंपर चढावते भये जैसे हिमाचलके वनमें बर्फ शोभती है तैसे वसिष्ठजी-के चरणकमलोंमें चढे हुए पुष्प शोभते भये ॥ १७ ॥ सो नीतिको जाननेवाले श्रीरामचंद्रजी आनंदके अश्रुजल करके पूर्ण नेत्र भये गुरुजीके चरणकमलोंको बारंबार प्रणाम करते भये ॥ १८ ॥

श्रीवसिष्ठजीका वचन–हे राजन्! हे रामजी ! तुम रघुकुलके चंद्रमा हो जो मैं कहता हूं तिसको करो इतिहासकथाकी समाप्तिमें ब्राह्मण अवश्यमेव दक्षिणा भोजन वस्त्र भूषण गोदान और पृथिवी-दानादिकोंकरके पूजने योग्य हैं ॥१९॥ तिससे आज सर्व प्रकार करके श्रद्धा-भक्ति-विधिसहित ब्राह्मणोंको प्रसन्न करो तब तुमको मोक्षोपाय वेदांतशास्त्र श्रवण करनेका सांग फल प्राप्त होवेगा२०॥ इस मोक्षोपायकथाकी समाप्तिमें निर्धन पुरुषको भी अपनी यथा-शक्ति ब्राह्मणोंकी पूजा करनी योग्य है और राजाकी क्यों नहीं पूजा करनी ॥२१ ॥

श्रीवाल्मीकिजीका वचन–हे भरद्वाज ! राजा दशरथ मोक्षोपायकथा श्रवणसे संसारकी मोहनिद्राके अंत होनेके हर्षमें सात दिनरात महा उत्सवको करता भया जिसमें स्वर्गकी संपदाभी तुच्छ होती भई॥२२॥ हे भरद्वाज ! तू महाबुद्धि है मेरे शिष्योंमें श्रेष्ठ है श्रीरामचंद्रसे आदि श्रोता तत्त्व वस्तुको जानकरके शोकमोहादिसे रहित भये परमानंदमें मग्न होते भये ॥ २३ ॥ हे भरद्वाज ! इसी ज्ञानदृष्टिको धारणकरके तूभी रागद्वेषरहित भया और संशयरहित भया और शांतमति भया अब जीवन्मुक्तदशाको प्राप्त हो जा२४॥ हे भरद्वाज ! जो महात्मापुरुष मोक्षोपायकथाके भावको जानेंगे सो तत्त्ववेत्ताजनोंमें श्रेष्ठ होते हैं फिर संसारबंधनको नहीं प्राप्त होते हैं और बहुत वचन विस्तार कहनेकरके क्या अर्थ बने है ॥२५॥ जो कोई पुरुष शास्त्र श्रवण करनेवाले हैं तिनके आगे भली प्रकार करके आगे फिर व्याख्यान करेंगे सो फिर बालभावको नहीं पावेंगे और कहनेसे क्या अर्थ है ॥२६॥ जो पुरुष इसका अर्थ जानने विनाभी इच्छासे और श्रद्धासे रहित भये भी इस कथाको वाचेंगे और लिखेंगे और लिखावेंगे और श्रवण करेंगे और लोगोंको

पढावेंगे उत्तम देश पुण्य तीर्थमें संतजनोंके आगे देवताके आगे कथा लगावेंगे सोभी पापसे रहित होवेंगे ॥२७॥ जो पुरुष इस कथाके संबंधको करेंगे सो राजसूय अश्वमेधादि यज्ञके फलकरके युक्त होवेंगे और बहुत स्वर्गम निवास करेंगे सो मोक्षको प्राप्त होवेंगे ॥२८॥ हे भरद्वाज ! इस मोक्षोपायकथाको ब्रह्माजी पहिले आपही अनुभवसहित विचारण करके लोगोंके उपकारके वास्ते रचना करते भये और ब्रह्माजीसे वसिष्ठजी प्राप्त होते भये. श्रीवसिष्ठजी श्रीरामचंद्रजीकी सभामें प्रकट करके कहते और तहांसे सुन करके मैंने तुमको प्रेमभक्तिसे कही है ॥२९॥ हे भरद्वाज ! जिसका इस कथामें मन लगे तिसके माता पिता संपूर्ण कुल देश पवित्र होता है इस कारणसे इसमें श्रद्धाभक्तिसहित मन स्थिर करना योग्य है॥४३०॥

इति श्रीमहारामायणे मोक्षोपायकथायां वासिष्ठसारे निर्वाणप्रकरणस्य उत्तरार्द्धसारोद्धारः समाप्तः ॥

सवैया–ग्रंथ वसिष्ठ रचो मुनि आतमतत्त्व निरूपणाख्यात सुभावे ।
जोहि पढे नर विश्वसमस्त अतीत भजे पद नाक विहावे ॥
जंबुसतीसरआदिहुंको नृप श्रीरणवीर नरेश सुभावे ।
सो अनुवादन लोकहुंके उपकारक अर्थन गूढ दिखावे ॥१॥

दोहा–शिवशंकर पंडित कियो, जिहि अनुवादन सार ॥
लेखक तुलसीदास लिपि, छपवायो जु विचार ॥ २ ॥
चन्द्रबाणनवइंदुमित, संवत् विक्रम जान ॥
मुद्रित इह पूरण भयो, वासिष्ठी व्याख्यान ॥ ३ ॥

समाप्त ।

क्रय्य पुस्तकें (वेदान्तग्रन्थाः)।

नाम.	की० रु० आ०
अमृतधारा—भगवानदास निरंजनीकृत । इसमें वेदान्तकी प्रक्रिया छन्दोंमें लिखी गयी है.	०—१२
अर्जुनगीता—श्रीकृष्णजी और अर्जुनका संवाद. ...	०—४
आत्मपुराण—भाषामें, दशोपनिषद्का भावार्थ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य चिद्घनानन्दस्वामिकृत. ...	१६—०
आत्मरामायण भाषा—सातोंकाण्ड रामायणका वेदान्त पक्षमें वर्णन	०—८
आनन्दामृतवर्षिणी—आनन्दगिरि स्वामिकृत गीताके कठिन शब्दोंका प्रतिपादन, अर्थात् यह वेदान्तका अपूर्व ग्रन्थ है.	०—१४
एकादशस्कन्ध—चतुरदासजीकृत भागवतके एकादशस्कन्धकी वेदान्तरसमय कथा सरल भाषामें सुगम रीतिसे वर्णित है	१—०
कर्मपट—ज्ञान चौपडका खेल (चित्र) अर्थात् संस्कृतकी श्रेणीसे 'ज्ञानचौपड'	०—१
कर्ममूलवृक्ष—इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरुषार्थके खेल खेलनेके उपाय और अनिष्ट कष्टोंसे नरकादि अनिष्ट फलोंका सचित्र दर्शन है, अंगरेजीमें भी सब विषय लिखा है.	०—१
कल्याणकल्पद्रुम—इसमें संक्षिप्त रामायणकी विचित्र लीला ज्ञानमार्गमें वर्णित है.	०—४

नाम.	की० रु० आ०
गर्भगीता-भाषा । श्रीकृष्णार्जुनसंवाद.	०-१
गीतामाहात्म्य-चौपाई, दोहा, सोरठा आदि भाषा छन्दोंमें	०-१॥
गीतासतसई-वै० वा० पं० सुदर्शनाचार्यकृत । इसमें प्रत्येक श्लोकका अर्थ दोहोंमें वर्णित है. ...	०-४
गुरुगीताभाषाव्याख्या-स्कन्दपुराणान्तर्गत गुरुगीताकी टीका श्लोकांक लगाकर सरल हिन्दी भाषामें की गयी है	०-२
गुरुचरितामृत-भाषा	०-६
गुप्तनाद-भाषा मिसेस एनीबिसेण्टकृत । फ्रीमेशन, थियोसोफी, भैरवी इत्यादिका सार.	०-२
गोविन्दनामगीता-इसमें गोविन्द भगवान्के 'राधाकृष्ण' नामकी संख्या २१६०० और १०८ नामोंके हिसाबसे नाम माला संख्या २०० दो सौ लिखी गयी है । नामोपासक जापकजनोंको इसका संग्रह अवश्य करना चाहिये	०-८
चन्द्रवतीज्ञानोपमहासिन्धु-इसमें वेद वेदान्तका सार मुमुक्षुओंके ज्ञानार्थ गद्य, पद्य तथा राग रागिनियोंमें अच्छे प्रकारसे वर्णित है.	०-८
चतुर्विंशत्युपनिषत्सारसंग्रह-भाषा । चौवीस उपनिषदोंका सार सरल भाषामें वर्णित है.	३-०